

ॐ

जैनधर्म प्रकाश

लेखक—

जैनधर्मभूषण, धर्मदिवाकर,
ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी

प्रकाशक—

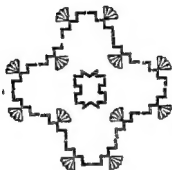
परिपट्ट पब्लिशिंग हाउस, विजनौर ।

तृतीय
संस्करण

सन् १९३६ ई०

न्यूझावर
आठ आना

प्रकाशक—
परिपट्ट पब्लिशिंग हाउस,
बिजनौर (यू० पी०)



मुद्रक—
“चेतय” प्रिन्टिंग प्रेस,
बिजनौर (यू० पी०)

निवेदन

यह पुस्तक भारत दि० जैन परिषद् के प्रस्ताव नं० तीन मुख्यफलनगर अधिवेशन (सन् १९२४) के अनुसार अपनी सुचक्ष्म शक्ति से संकलन की है। इस पुस्तक में पंडित माणिक चन्द न्यायाचार्य जी ने कृपा करके अच्छी तरह पढ़कर जो अशुद्धियाँ बताईं, उनको यथास्थान ठीक कर दिया गया है। इस पुस्तक पर उन्होंने जो अपनी सम्मति दी है वह नीचे लिखी जाती है —

“जैसी समझ में यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। जैनधर्म के सिद्धांत को वर्तमान पद्धति से समझाने में लैब्रर महोदय ने कसर नहीं रखी। उनको, जैनधर्म का प्रसार और मन्त्र मार्ग पर लोगों के आने की पवित्र भावना, पुस्तक में पृ० ७ पर प्रतीत होती है। ऐसी पुस्तकों के प्रचार से वास्तव में जैनधर्म का ठोस प्रचार होगा। मैं इस पुस्तक का हृदय से अभ्युदय चाहता हूँ।”

आर्यभट्ट कृष्णा १५
सम्बन्ध १९८२

}

माणिकचन्द जैन,
मोरेना (ग्वालियर)

इसका बहुत सा भाग राय बहादुर जगमन्दर लाल जैनी एम० ए० लॉ मेम्बर इन्दौर व कुछ भाग विद्यावारिधि चम्पतराय

जो ने भी सुना है और पसंद किया है। उन्होंने जो धुटिया
 बतलाई, उनको भी ठोक कर दिया गया है। ५० जुगलकिशोर जी
 को पुस्तक भेजी गई थी, परंतु आपको रचना पसंद न आई,
 इससे आपने गिना शुद्ध किये वापिस करदो तथा न्यायाचार्य
 पादत गणेशप्रसाद जी ने समयोपाय से देखना स्वीकार न
 किया है। हमने अपने हार्दिक भाव से पुस्तक का सङ्ग्रह
 जैन सिद्धान्तानुसार किया है। इस तीसरे संस्करण में यथासंभव
 सुधार कर दिया गया है। सब भी जहा कहीं भूल हो, विद्वज्जन
 समाचार धारण करके सूचित करें, जिससे आगामी संस्करण
 में शुद्धि हो जावे।

अमरावती
 कागुन सुदी ६
 धीर सम्बत् २४५५

}

जैन समाज का सचक—
 म० शीतलप्रसाद

* भूमिका *

भारतवर्ष में जैन लोग, किसी समय सर्वत्र व्यापक थे। इनकी बहुत बड़ी संख्या थी जिसके प्रमाण के लिये पूर्व परिचय दक्षिण उत्तर चहुँ ओर, हर एक प्रांत में स्थित जिन मन्दिर और जिन प्रतिमा तथा शिलालेख के रूप में जैन स्मारक मौजूद हैं। सरकार के पुरातत्व विभाग ने जो खोज की है उस से भी जैनियों का विस्तार व महत्त्व समझता है यद्यपि अभी रुपये में दो आने से कम खर्चे हुई है। यदि हजारों टोलों को अहिच्छत्र, कौसाम्बी, उड़ीसा आदि में बिना खोदे हुए पते हैं सुरक्षित जायें तो बहुत कुछ मसाला मिल सकता है।

पुरातत्व विभाग ने बौद्धों के स्मारकों को भी बहुत विस्तार के साथ प्राप्त किया है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि किसी समय भारत में बौद्धों का भी प्रभुत्व रहा था और उनके मानने वालों की एक बहुत बड़ी संख्या थी। परन्तु आज देखने हैं तो मगधा क्षेत्र को छोड़कर पञ्जाब, युक्तप्रान्त, बम्बई, मालवा, मध्य-प्रदेश, बंगाल, बिहार, उड़ीसा में, जहाँ बौद्धों के स्मारक बहुत अधिक हैं, अब बौद्ध मत के माननेवाले एक समुदाय रूप में नहीं दिखलाई पड़ते। न उनकी मूर्तियों की पूजा हो होती है। किन्तु अब भी भारतमें जैनी सर्वत्र फैले हुए हैं। शास्त्र की संख्या में हैं व जिनके दर्शनीय मन्दिर अजोध्या, इन्दौर, कोजूर,

सिवनो, जयलपुर, नागपुर, देहली, आगरा, कानपुर, लखनऊ, बनारस, प्रयाग, आरा, भागलपुर, गिया, हजारीबाग, फल गत्ता, मुशिदाबाद, कोमोजपुर, सद्धारनपुर, हाथरस, मथुरा, कोटा, झालरापाटन, बड़ौदा, अहमदाबाद, सूरत, धम्पई, रोगापुर, कोल्हापुर, बेलगाव, मैसूर, बङ्गलौर, अवणवेलगोल, हेलविड, मूलवट्टी, वाची, गिरनार, पारोताना, आबू आदि हजारों स्थानों पर मौजूद हैं। यहाँ ये जैन लोग नित्य भक्ति करते और धर्म साधन करते हैं।

बौद्धों का भारत में न रहना और जैनियों का बने रहना, इस प्रश्न पर यदि ध्यान से विचार किया जाय तो सिद्ध होगा कि दोनों को हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध प्रचारकों शंकर, रामानुज, चैतन्य आदि का मुख्यबल करना पड़ा था। इस मुख्यबले में बहुत स्थलों पर बौद्धमत की हार हुई, क्योंकि उनके सिद्धान्त में आत्मा को स्पष्ट रूप से नित्य अप्रिनाशी नहीं माना है। जैनमत की विजय हुई, क्योंकि जैन सिद्धान्त ने आत्मा की सत्ता को नित्य मानकर उसकी अवस्थाओं को मात्र क्षणिक या अनित्य माना है। हिन्दुओं के राजकीय बल के प्रभाव से बहुत से मौद्ध हिन्दुओं में शामिल होगए—कुत्र धारे धीरे नष्ट होगए। यह राजकीय बल जैनियों की तरफ भी बहुत वेग से प्रयाग किया गया था, परन्तु जैनिया में अहिसामयी नीतिपूर्ण बर्तन व व्यापार कुरालता का इतना प्रभुत्व था कि जनता ने इन का सम्बन्ध नहीं छोड़ा व इनके सिद्धान्त इतने मनमोहनीय

थे कि निम्नज, विद्वान् जनका आदर करते रहे तथा जैनधर्म के मानने वाले राजा लोग भी १७ वीं शताब्दी तक अपना महत्त्व जमाए रहे। इस कारण जैनी भारतवर्ष में बराबर बढ़ते रहे। सौ भी प्रभावशाली हिन्दू नेताओं के द्वारा लाखों जैनी जैनधर्म छोड़ देते। जैसे वासुदेवचार्य ने धादवाड़, बेरगाव को तरक लाखों जैनियों को लिगायत बना डाला।

हिन्दुओं का इतना विषय बौद्ध और जैनियों से इस कारण रहा कि ये दोनों वर्तमान प्रचलित श्रवणेशदि वेश को नहीं मानते हैं और न ईश्वर को जगत् का कर्ता मानते हैं तथा दोनों हिंसा का निषेध करते हैं। पशुओं की बलि का, जो हिन्दू मत के प्राध्याय यज्ञों द्वारा करते थे व जो अब भी देवी देवताओं का सामने करते हैं, जैन और बौद्ध दोनों ही इसका घोर विरोध करते रहे तथा जिस द्वाज में हिन्दू प्राध्याय ने करोड़ों देवी देवताओं की स्थापना कर रखी है, उस का भी विरोध करते रहे। प्राध्यायों की अवस्था बहुत काल पहिले ही बहुत सख्त रूप सात्त्विक रही तथा तब इनमें से अनेक जैनधर्म के पालन वाले थे। अब भी मैसूर प्रान्त में २००० से अधिक जैन प्राध्याय हैं। परन्तु पीछे लोभ की मात्रा बढ़ने से उनका जिवन ही इच्छा जैसे कमाने की हुई, स्वर्ग की इच्छा धर्मप्रचार की न रही। तब प्राध्यायों ने जैनियों को नास्तिक प्रसिद्ध करना प्रारम्भ किया और यह श्लोक धन्यकर प्रचार किया कि—

“नपठेयावर्नी भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि ।

इस्तिनापादयमानोपि न गच्छेज्जनमन्दिरम् ॥”

अर्थान्—म्लेच्छ भाषा पढ़ने और जैनधर्म के विरोध में यह शिक्षा फैलाइ कि ‘प्राण भी जाते हैं तो भी म्लेच्छों की भाषा न पढ़ो और हाथों से पोड़ित होन पर भी जैन मन्दिर में (प्राण रक्षार्थ) न जाओ।’ इस विरोधा भाव के प्रचार का असर अब भी करोड़ों हिन्दुओं में मौजूद है जो अब भी जैनमन्दिरों में पग रखते हुए डरते हैं और जैनियों को नास्तिक मान कर उन को नास्तिक कहते हैं व कहा २ कभी २ उनके श्रोतव्यादि धर्म-कार्यों, तक का बहुत बड़ा विरोध कर देते हैं।

हुज्र अहमरेज लोगों ने जब भारत का इतिहास लिखना प्रारम्भ किया, तब महा ग्रासणों से यह जानकर कि बौद्ध और जैन नास्तिक हैं व हिंसा के विरोधी हैं व वेद को नहीं मानते हैं, दोनों को एक कोटि में रख दिया और इस कारण से कि बौद्धों के साहित्य का बहुत प्रचार था तथा भारत के बाहर बौद्धमत के अनुयायी करोड़ों हैं, इसलिये उन्होंने बिना परीक्षा किए फिर दिया कि जैनमत बौद्धमत की शाखा है। किसी ने फिर दिया कि यह जैनमत ६०० सन् ई० से चला है जब कि बौद्धमत घटने लगा था, इत्यादि ।

इस पुस्तक के लिखने का मतलब यह है कि ‘जैनधर्म क्या बरसु है?’ इसका यथार्थ ज्ञान मनुष्यसमाज को होजावे और वे समझ जावें कि इसका सम्बन्ध बिना पुराने समान ने बौद्धमत

स है न हिन्दूमत से है, किन्तु यह एक स्वतन्त्र प्राचीन धर्म है जिसके सिद्धांत भी नीचे ही भिन्न हैं।

— साहित्य प्रचार के इस वर्तमानयुग में भी अब तक जैन धर्म का ज्ञान और उसका वास्तविक रहस्य साधारण जनता को न हुआ, इसके निम्नोक्त दो मुख्य कारण हैं —

(१) वैश्याचार्यो हिंदुओं का सैकड़ों वर्षों या सैकड़ों पीढ़ियों से यह मानते चले आते कि जैनधर्म नास्तिकों अर्थात् ईश्वर को न मानने वालों, वेदविरोधियों और पृथितकर्म करने वालों का एक पृथित मत है, उसमें तथ्य कुछ नहीं है, उनके मंदिरों में जाना व उनके नास्तिकतापूर्ण ग्रन्थों का पढ़ना या उनका उपदेश सुनना और उनकी अशलाह नगी मूर्तियों का दंडना महापाप है, इत्यादि।

(२) श्री शङ्कराचार्य व श्री रामानुजाचार्यो के समय में तथा भट्टमुद्र गणेशना आदि के आक्रमण काल में धर्म-विरोधियों की द्वेषाग्नि ने बहुतसा जैन साहित्य नष्ट किया। तब जैनियों ने अपने बचे हुए साहित्य की रक्षा अपने ग्रन्थों को तहखानों व भंडारों में द्रिपा कर रखा। उस समय उन्होंने यह ठाक हा किया, परंतु सैकड़ों वर्षों तक उन भंडारों को न खोलने से व ग्रन्थों को धूप न दिवाने से हजारों ग्रन्थ क्षीमकों के भक्ष्य बन गये। इसमें जैनों की कुछ तो अदूरदर्शिता, कुछ प्रमाद और कुछ वर्तमान समय की लोकस्थिति की अनभिज्ञता, ये तीन मुख्य कारण हैं। इसी से जैन साहित्य का बहुत भाग आज तक भी अप्रकाशित पड़ा रहने से और जैनधर्म का रहस्य जानने की

अभिलाषा रखनेवालों तक के हाथोंम जैन दार्शनिक ग्रन्थ पहुँचार जाने का कोई सुभोता न होने से जैन साहित्य का यथेष्ट प्रचार नहीं हो पाता । यद्यपि जैन ग्रन्थों में जैन दर्शन बहुतायत में निश्चिन्त है, तथापि यह इतना विस्ताररूप में अनेक ग्रन्थों में है कि जब तक भिन्न २ विषय के १०—२० ग्रन्थ पढ़े जायें तब तक जैनदर्शन का आभास नहीं बन सकता । माधारण जनताके लिये जो जैनधर्म की सुवृत्त, नास्तिक व अगारवरवादा समझ रही है, बहुत से ग्रन्थों का परिश्रम करके पढ़ना, सम्भव नहीं है । इसलिये इस छोटीसी पुस्तक में सर्व माधारण के लाभ के लिये जैन दर्शन की जानने योग्य बहुतसा बातों को बना दिया गया है और यह आशा की जाती है कि जो इस पुस्तक को आदि में अन्तु तक पढ़ जायेंगे उनको स्वयं यह कबि पैदा हो जायगी कि हम जैन ग्रन्थों को देखें और लाभ उठावें ।

कोई समय ऐसा था कि जब भारत में परस्पर भिन्न २ धर्मों में घृणा न थी । सब प्रेम से बैठकर बातचीत करते थे व जिसको जो रुचता था वह उसी को पाने लगता था । पिता पुत्र, पति पत्नी व भाई २ का धर्म भिन्न २ रहता था, ती भी सामाजिक प्रेम व आपस के बताने में कोई अंतर नहीं पड़ता था । तब एक धर्मवाले दूसरे धर्म के सम्बन्ध में मिथ्या आरोप नहीं लगाते थे । जिसको जो २ मायता थी, व ही मान्यताओं को लेकर और उन पर सदा स तर्क वितर्क करके खण्डन या भण्डन किया करते थे ।

वर्तमान में मा प्रायः सत्य खोज का भाव लोगों में बढ़ा है और लोग मिथ्या आरोपों से घृणा करने लगे हैं तथा वेद्वान् लोग सर हो धर्मों के सिद्धांतों को सुनना व जानना चाहते हैं । ऐसे समय में जैनियों का वर्तव्य है कि वे अनेक धर्मों की पुस्तकों से तथा व्याख्यानों में अपने जैनधर्म का सच्चा स्वरूप जनता को बतलावें । इसमें आशंका को लेकर यह पुस्तक संक्षेप में लिखी गई है । उन लोगों के लिये जिनके पास में जैनधर्म से अज्ञान है, हम उनके अज्ञानभाव को हटाने के लिये इस भूमिका में थोड़ा सा प्रयास इसलिये करते हैं कि वे भाई भी हमारी भूमिका पढ़कर अज्ञान छोड़कर जैनधर्म को जानने के शर्तुक हो जावें ।

जैनी नास्तिक हैं—क्योंकि हमारे वैश्व को नहीं मानते, यह कहना तो वैसा ही है जैसा जैनी या ईसाई या मुसलमान कह सकते हैं कि जो हमारे शास्त्र को न माने—वही नास्तिक या क्राफिर है । जब भिन्न २ मत हैं तब एक मत के धारी दूसरे के मत के शास्त्र को अपनी मान्यता की कोटि में किस तरह रख सकते हैं ? जैनी नास्तिक हैं, क्योंकि वे ईश्वर को नहीं मानते हैं, यह बात विचारणीय है । जैन लोग परमात्मा को या ईश्वर को मानते हैं, परंतु वे किसो एक ईश्वर को कर्ता व, दुःख सुख का फलदाता नहीं मानते, जैसा भीमासक व, माक्य ईश्वर को जगत् का कर्ता नहीं मानते । भगवद्गीता में ही एक स्थल में (अध्याय १ श्लोक १४, १५ में) कहा है कि—

न वर्तन्व न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु ।
 न कर्म फल सयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥
 नादत्ते कस्य चित्पाप न चैव सुकृत विभु ।
 अज्ञानेनावृत ज्ञान तेन मृयन्ति जन्तरः ॥

अर्थात्—ईश्वर जगत् क कतापने को या कर्मों को नहीं बनाता है और न कर्म फल के संयोग का व्यवस्था ही करता है, मात्र स्वभाव काम करता है—परमात्मा न किसी को पाप का फल देता है न पुण्य का, अज्ञान से ज्ञान ढका है इसा स जगत् क प्राणी माहो हा रहे हैं ।

यस वही मान्यता जैनियों की भी है । वे कहते हैं कि ये जीव आपही अपने भावों स पाप पुण्य कर्म बाध लेते हैं व आप ही वनका फल भोग लेते हैं, जैसे कोई प्राणी आप ही मदिरा पीता है, आपही उसका दुःख फल भोगता है । परमात्मा इन प्रपञ्च जाला में नहीं पड़ता—अदि यह जगत् के प्रपञ्च में बुद्धि लगावे तो नित्य सुखी व तृप्त व कृतार्थ नहीं रह सकता है । जैन लोग जगत् को अनादि अनन्त मानते हैं और करते हैं कि यह जगत् चेतन अचेतन पदार्थों का समुदाय है । जब यह पदार्थ मूल में सदा स हैं व सदा रहेंगे तब यह जगत् भी सदा स है व सदा रहेगा—सत् का विनाश नहीं, अमनकों 'ज'म नहीं । कहा है कि—Nothing is destroyed nothing is created अर्थात्—न कुछ नष्ट होता है न बनता है—कवल अवस्था में निरुपगत (Scientific view) है,

यही जैनियों का मत है। परमात्मा या परमपद का धारी परम आत्मा, इच्छारहित, कृतकृत्य, शरीररहित व करने पशुन के विकल्पो से रहित है। इसम वइ न जगत् को बनाता है न बिगाड़ता है। जगत् में बहुत से काम तो बिना चेतन के निमित्त बने हुये केवन योंहा जइ निमित्तों के मिल जाने से होरे हैं, जैम मैय बनन, पानी बरसना आदि। बहुत म कामों का समारा भगुद जाव भिर तर किया करते हैं। जैत घोंमला बनाना आदि। गुद प्रभु इन भावों में नहीं पड़ता है।

जैन लोग परमात्मा को मानत हैं, इसीलिये ये पूजा व भक्ति अनेक प्रकार स करते हैं। उनका जो प्रमिय मन्त्र है वम का पहला पद हा परमात्मा का उमस्कार बाधक है, जैसे "यमो अर्हंशय"। जैन लोग आत्मा, परमात्मा, पुण्य, पाप, यह लोक, परलोक, पुण्य-पाप का फल, सुख, दुःख, ससार व मोक्ष मानने हैं। इसलिये उनको नास्तिक कहना बिलकुल अनुचित है। जैनियों के मन्दिरों में कोई ऐसा बात नहीं है, भिमसे कोई हानि हो सके, यदि कोई निर्मल दृष्टि ने देखेगा तो वसको जैन मन्दिरों में बहुत अधिक शांति और वैराग्य का दृश्य मिलेगा।

आप किसो भी जैन मन्दिर में चले जाइये, वहा बेरो पर, उन महान पुरुषों का ध्यानमई मूर्तिया मिलेंगा, जो परमात्मापद पर पहुँचे हैं। इनको सौर्यकर कहते हैं। उनके दर्शन स सिवाय शान्ति और वैराग्य के कोई और भाव दर्शक के बिच में हो ही नहीं सकता है। भगवद् गीता अ० ६ में भिम योगाभ्यास की

ति या वर्णन किया है वैसी ही मूर्ति चैत्र मन्दिरों में होती है।

निरा है कि —

समन्नाय शिरोग्रीव धारयन्चल स्थिर* ।

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्व दिशश्चानवलाक्यन् ॥१३॥

प्रशान्तात्मा विगतभीर्घृणागरित्रतेस्थित ।

मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत् मत्पर ॥१४॥

युञ्जन्नेव सदात्मानं योगो नियत मनसः ।

शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामगिच्छति ॥१५॥

भावार्थ—शरीर मस्तक और गर्दन भीधर रूप, निश्चल हो इधर उधर न देखते हुए, स्थिर मन से नासिका व कमर भाग के ऊपर अच्छा तरह दृष्टि रख, अन्तःकरण को अति निर्मल बनाकर निर्भय हो, प्रक्षयप्रत युक्त रह मन को समग्र में कर, मेरे (प्रभु के) ऊपर विश्रवागाधे, मेरे म लाग हो ज वे । इस तरह जो योगी सदा निश्चल मन हो अपने आत्मा को जोड़ता है, वह परम शांतिरूप निर्वाण को (जो मेरे ही में है) पाता है ।

योगाभ्यास का आदर्श जैनमूर्ति है, जिनके दर्शन से 'ससार बुद्ध व भाव श्रेष्ठ है' ऐसा भाव हो जाता है । इस के सिवाय जैन मन्दिर में इधर उधर माधुओं के व उन महान पुरुषों व रित्रियों व विप्र मिलेंगे जिन्होंने कार्य किया था ।

कार्य किया

की

। बौद्धमत का मिद्धान्त जैनमत के समान स्पष्ट नहीं है । जैनमत का मिद्धान्त है कि पदार्थ स्वभावेन स नित्य है, परन्तु अवस्थाओं को बदलन की अपेक्षा चक्षुर्भगुर है । बौद्धमत व सत्यापक गौतम बुद्ध थे, जो जैनमत के चौवासवें सार्धवर श्री महाधार स्वामी के समय में हुए थे । उस समय दो परस्पर जैन और बौद्धों में सवाद हुये । बुद्ध बौद्ध साधुओं व जैनों के पास जान की भी मनाई की, ऐसा कथन बौद्ध ग्रन्थों में है । बौद्ध स्वयं जैनमत को मिद्धान्त मत कहते हैं । जैन गुरुस्थों का बड़ा आकांक्षा है कि वे किसी भी तरह का मांस का आहार न करें । मांस न खाया उनके चरित्र व आठ मूत्र गुणों में से एक है जब कि बौद्धों के महागुरुस्थों को मांसाहार के त्याग की कड़ी आकांक्षा नहीं है—वे स्वयं मरे हुए पशु का मांस लन में दोष नहीं समझते हैं । इसी से सानोन व प्रजा में कराड़ों बौद्ध मांसाहारी हैं, जब कि जैन कोई भी प्रगटपने से मानाहारी न मिलेगा । इसलिये जैनमत बौद्धमत की शाखा है यह कथन ठीक नहीं है और न यह हिन्दूमत का ही शाखा है । क्योंकि सांख्य मामादि दर्शनों में इसका दार्शनिक मार्ग भिन्न ही प्रकार का है, जो इस पुस्तक के पढ़ने से विदित होगा ।

जैनमत की शिक्षा सीधी और वैराग्यपूर्ण है । हर एक गुरुस्थ को निम्न छः कर्म नित्य करने का उपदेश है —

(१) देवपूजा, (२) गुरु भक्ति, (३) शास्त्र पढ़ना, (४) सयम (Self control or temperance) का अभ्यास,

- (५) तप (मायाविष या सध्या या ध्याना या meditation),
 (६) दान (आहार, औषधि, अमयत ॥ विद्या) ।

उनको निम्न आत्मूत गुणों का वर्णन भी है —

यत्र मास मधु त्यागे सदागुप्तत पचकम् ।

अष्टौ मूलगुणानाहुर्गुहीर्णा अमणोत्तमाः ॥

अर्थात्—यद्यपि मास, मास, मास, मास, मधु
 यानी शहद न खाना, क्योंकि इनमें बहुत से सूक्ष्म अणुओं का
 नाश होता है, साथ साथ ही यचना अर्थात् जान धूमकर घृथा
 पशु पक्षा आदि की हिंसा न करना, मूठ न खोला न खोरी न
 करना, अपना छा में सतोष रक्षा, परिग्रह या सम्पत्ति की
 मर्यादा कर ता जिसमें लुणा घटे । इनका गुरुत्वों के आठ
 मूलगुण उक्त आचार्य न बताया है ।

हमारे जैनवर भाइ दब सक्त हैं कि यह शिखा भी हर
 एक मानव को नितनी उपयोग्य है । यद्यपि और धर्मों में भी
 अहिंसा तथा दया का उपदेश है व मानाहार का निषेध है,
 पर तु उनका आचरण जैनियों के सदृश नहीं है । कारण यही
 है कि कहीं-कहीं के दाकादारों ने इस उपदेश में शिफि
 कता करदी है । हिन्दूमत में मनुस्मृति के कई श्लोकों में मानाहार
 का निषेध है । जैसे—

नामृत्वा प्राणिनां हिंसां मासमुत्पद्यते क्वचित् ।

वर्ग्यस्त्वस्मा मांस विवर्जयेत् ॥

—श्लोक ४८ अ० ५

मुसलमानों ने भी मासाहार का निषेध करने का पवित्र भूमि के लिये तो अग्रगण्य किया है। क्योंकि उनकी पवित्र जगह मक्का में जो फोड़े जाता है उसे मास नहीं खाना होता है। जैनीयों के आचरण का इतना महत्व है कि सरकारी जल की रिपोर्टों में औसत दर्जे सब जातियों से कम जैन अपराधी हैं। सन् १८९१ की बम्बई प्रान्त का जैन रिपोर्ट इस तरह है —

धर्म	कुल आबादी	जेल के कैदी	कितने पक्ष एक
हिन्दू	१४६५७२७९	६७१४	१५०६ में से एक
मुसलमान	३५०१६१०	५७९४	६०४ में से एक
इसाई	१५०७६५	३३३	४७७ में से एक
पारसी	७३९४८	७६	८५०६ में से एक
बुद्ध	९६३९	१०	४६ में से एक
जैन	२४०४३६	३६	११६५ में से एक

सन् १८७०, १९१२, १९२३ के कैदियों का ब्योरा नीचे प्रकार है —

धर्म	१९२०	१९२७	१९३३
हिन्दू	११७७४	९०८२	८१३४
मुसलमान	७१७३	६६८२	७७०५
इसाई	३६७	७७५	३२०
जैन	५१	३४	२५

सन् १९२१ का हिसाब निम्न प्रकार है, जिसमें प्रगट होगा कि सन् १९२१ में जैनों १ लाख में एक ही क्रैदी हुआ है। यह जैन गृहस्थों पर जैनचारित्र की छाप का प्रभाव है —

धर्म	कुल आबादी	जैन के क्रैदा	कितने नीचे एक
हिन्दू	२१०३७०००	११३४८	१८५४ में से एक
मुसलमान	४६१५७७३	७१८२	६४८ में से एक
इमाई	२७,५६४	३४६	७६४ में से एक
जैन	४८१३४२	४	१२०३३३ में से एक

जैनिया के पांच व्रतों में २५ दोष न लगने चाहियें। इस उपदेश को जो मानेगा उसको सरकारी पेन्शनकोड कानून की कोई भी फौजदारी दफा नहीं लग सकती। यह किन्ना सुन्दर उपदेश गृहस्थों के लिये है। ये २५ दोष नीचे लिखे प्रमाण हैं :—

अहिंसाव्रत के पांच—अन्याय न होना, बंदी में डालना, अन्न छेना, अधिक योग लादना, अन्न पान रोक देना।

सत्यव्रत के पांच—मिथ्या उपदेश देना, किसी गृहस्थ या गुप्त रहस्य कहना, झूठा लेख लिखना, अमानत को झूठ कह कर लेना, गुप्त सम्मतियों को इशारों से जानकर प्रगट करना।

अचौर्यव्रत के पांच—चोरी का उपाय बताना, चोरी का माल लेना, राज्यविरुद्ध महसूल चुराना या नीति विरुद्ध लेन देन करना, कमती बढ़ती तौलना मापना, छोटी वस्तु को खरी कहकर बेचना या खरा में छोटी मिलाकर खरी कहना।

साथ दूसरों के विवाह शादी करने की चिंता में पड़ना, बेरिया साथ सम्बन्ध रखना, व्यक्तिचारिणी या दूसरे का ह्वा क साथ करना, कामाके मुख्य अङ्ग को छोड़ अन्य अङ्गों से काम टा करना, काम की मात्र लालसा रखनी ।

परिग्रह प्रमाण व्रत के पाच — गृहस्थ जन्म भर के ये क्षेत्र मकान, धन धान्य, सोना चाँदी, दासी दास, कपड़ा जूतन, इन १० वस्तुओं का प्रमाण करता है—१० के पाच आटे र, हर एक जोड़े में एक का बड़ाकर दूसरे को कम कर लेना, ह दो पाच दोष हैं ।

जो गृहस्थ इन बातों पर ध्यान रखेगा, उसका नैतिक चरित्र राजा प्रजा को विकारो होगा । महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य के नातिपूर्ण राज्य व उसकी आदर्श प्रजा का यखेन यूनानो ध्वानों ने अपनी पुस्तकों में बड़ा प्रशंसा क साथ लिखा है । उन्होंने एक स्थल पर लिखा है कि—

“भारतवासियों का व्यवहार बहुत सरल था । यज्ञ का छोड़कर वे मदिरा कभा नहीं पाते थे । लोगों का व्यय इतना परिमित था कि वे सूद पर ऋण कभी नहीं लेते थे । व्यवहार के वे लोग बहुत सच्चे होने थे—भूँठ से उन लोगों को पूछा थी । आपस में झुठमे बहुत कम होने थे । विवाह एक जोड़े बेल देकर होता था । सब लोग आनंद से अपना जीवन व्यतीत करते थे । शिष्य वाधित्य की अच्छी रजति थी । राजा और

प्रजा में विशेष सद्भाव था। राजा अपनी प्रजा के हित साधन में सदैव तत्पर रहता था। प्रजा भी अपनी भक्ति से राजा को सतुष्ट किये हुए थी।” (चंद्रगुप्त मौर्य पृ० ३५ जयराक्षस प्रमाद)

इस विषय का विशेष कथन *Ancient India by Megasthenes* में इस प्रकार दिया है कि “सोम पवित्र वस्तु वंजल लेते थे, अनक धातुओं का प्लोम से निकाल कर वस्तुयें बनाने थे, किमानों को पवित्र समझा जाता था, युद्ध के समय में भी कोई शत्रु उनको कष्ट न देता था, सब कोई अपने हा 'वर्ण' में विवाह करते थे व अपने पुरुषों का व्यवसाय करते थे। विदेशियों का रक्षा का पूर्ण प्रबंध था। वे अपने-माल का बिना रक्षक छोड़ देते थे। वे यद्यपि सादगी से रहते थे, तथापि जल समय स्वर्ण और रत्नों के पहनने का बहुत विवाज था। सत्य और धर्म की बड़ी ही प्रतिष्ठा करते थे (Truth & Virtue they held alike in esteem)। दान दायन दाने का अधिक विवाज था। विद्वानों और तत्त्वज्ञों को राजद्वार में बड़ी प्रतिष्ठा थी।”

(११) जितियों को यह उपदेश है कि छान कर पानी पिओ, यह बड़ा ही उपयोगी है। इसके द्वारा पानी में जो कीड़े होते हैं उनकी रक्षा होती है और साथ ही अपने शरीर की भी रक्षा होता है अर्थात् जो, रोगा काहे रोग कर सकते थे, वे उदर में नहीं जा सकते हैं।

५. धर्म ने स्वतंत्रता की शिक्षा निम्न श्लोक में दी है —

नयत्यात्मानमात्मैव जन्मनिर्वाणमेव वा ।
गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः ॥ ७ ॥

—ममाधिशतक

भावार्थ—यह आत्मा स्वयं ही आपको धादे ससार में ले जावे व धादे निर्वाण में ले जावे। इसलिये वास्तव में आत्मा का गुरु आत्मा ही है। इस शिक्षा का भाव यह है कि यह आत्मा अपने ही परिणामा में पाप या पुण्य को बाध कर तथा आप अपने छुद्ध भावों से पापों का नाश कर व पुण्य को शीघ्र भोगकर मुक्त हो जाता है। जैसा लोग जो परमात्मा को भक्ति व पूजा यजना करते हैं वह मात्र इमालिये कि अरा भावों को निर्मल किया जावे, न कि इसलिये कि किसी परमात्मा को प्रसन्न किया जावे। जैसा कहा भी है कि—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागो,
न निन्दया नापविशन्तवैरे ।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्न,
पुनातु चित्तं दुरिताननेभ्यः ॥

—(स्वयम्भूतोत्र)

भावार्थ—भगवन् ! आप वीतराग हैं, आपको हमारी पूजा से कोई सरोकार नहीं, आप वैर रहित हैं, आपको हमारी निंदा से कोई दुःख नहीं, तब भी आपके पवित्र गुणों का स्मरण हमारे मन को पाप के मैनों से पवित्र करता है।

जैनसिद्धांत कहता है कि अहिंसा ही परम धर्म है और

अहिंसा व दो भेद हैं—एक भाव अहिंसा, दूसरा द्रव्य अहिंसा । राग, द्वेष, मोहादि भावों का न होना भाव अहिंसा है । जैसा कहा है कि—

अथादुर्भाव खलुरागादीना भवत्यहिमेति ।

तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य सत्तेषां ॥ ४४ ॥

—पुरुषार्थ सिद्ध-युपाय

भावार्थ—निरावय में राग द्वेषादि भावों का न होना अहिंसा है व उनका होना ही हिंसा है, यह जैनशास्त्र का सार है । भावहिंसा होकर अपने या दूसरे के द्रव्य प्राणों (शरीर के अङ्गादिकों) का घात करना सो द्रव्य हिंसा है । इसका पूर्णतया पालन वे साधु ही कर सकते हैं जो वैरागी हैं, जिनके उत्तम ज्ञान है, जो समदर्शी हैं, जिनको कष्ट दिये जाने पर भा द्वेष नहीं होता है, वे पृथ्वा देखकर चलने हैं, सब तरह की घाम आदि को भी कष्ट नहीं पहुँचाते हैं । गृहस्थी लोग “इम आदर्श पर पहुँचना चाहिये” ऐसा ध्यान में रखकर यथाशक्ति अहिंसा का अभ्यास करते हैं । वे अपनी २ पदरी में रहकर वम पदरी के योग्य पार्यों में बाधा न आये, ऐसा ध्यान में रखकर वर्तन करते हैं । इम भेद को समझने के लिये हिंसा के निम्न चार भेद हैं :—

१. सङ्कल्पी (intentional)—जो हिंसा के हा इरादे से की जावे । जो मासाहार के लिये व धर्म के नाम से व शौक से पशु मारते हैं वे सकल्यो हिंसा करते हैं । जैसे शिकार खेलना, पशु को यज्ञि दाना, कसाईखाने में बध करना ।

२. उद्यमी—जो सूत्री, वैश्य, शूद्र के अग्नि (राज्य व दत्त रक्षा), मसि (निरतना), कृषि, वाणिज्य, शिल्प व निशा कर्म म होता है ।

३. आरम्भी—जो गृहस्थ म सकल आदि बनवाने, खान-पानादि क व्यवहार म होता है ।

४. विरोधी—किसी विरोधी या शत्रु के साथ मुकाबला करते हुये जो हिंसा हो ।

इनम से एक साधारण गृहस्थ जैन को संस्था हिंसा छोड़नी आवश्यक है । शेष तान प्रकार की हिंसा तब तक त्याग नहीं कर सकता, जबतक गृहधर्म म लीन है, राज्य करता है, व्यापार करता है, कारीगर करता है, स्त्री बच्चा व धन की रक्षा करता है, बिना न्यायरूप प्रयोजन क, व अत्यंत साधारण के मुद्रादि क्रिया जैन गृहस्थ नहीं करते हैं अर्थात् न्याय क अपन देश धनादि के रक्षार्थ जैन गृहस्थ मुद्रादि कर सकते हैं ।

इस कथन स पाठकगण समझ सकते हैं कि जैनमत ऐसा impractical नहीं है जो पाला न जा सके । इसको नीच ऊँच स्थिति के सर्व हो मनुष्य पाल सकते हैं ।

इस जैनधर्म का साहित्य बहुत विस्तारमय में है इसमें हजारों प्राकृत व संस्कृत क ग्रंथ हैं । जिनमें प्राय सब ही विषय कहे गये हैं । राजनीति, व्याकरण, नाय, गणित, ज्योतिष, दर्शन, वाज्य, अलङ्कार, कव्यशास्त्र, कर्मकाण्ड अध्यात्म आदि अनेक विषयों क बहुत से ग्रंथ हैं । साधारणतया जैनधर्म का

ज्ञान हान व लिये ग्रन्थों के निम्न चार भाग बताये हैं। इनको चार वेद भी कहते हैं —

१. प्रथमानुयोगे—इस विभाग में सन महान् पुरुषों व स्त्रियों के जीवनचरित्र हैं, जिन्होंने आत्मकल्याण किया था व जो आगे करेंगे। इस कल्प में हम भरतक्षेत्र में ६३ महापुरुष हो चुके हैं। उनका सचित्र वर्णन हमन इस पुस्तक में दे दिया है। इन्हीं में श्री ऋषभदेव, श्री अरिष्टनेमि, श्री पार्ष्व, श्री महानोर, श्री रामचन्द्र, श्री हृष्य, आदि, गर्भित हैं। विस्तार से जानने के लिये महापुराण, पद्यपुराण, हरिवंशपुराण, आदि देखने योग्य हैं।

२. करणानुयोग—इस विभाग में हम विश्व का नक्शा क्षमाप व विभाग वर्णित हैं। स्वर्ग, नरक कहा है ? मध्यलोक कहा है ? वहाँ क्या रचना रहा करती है ? हम सम्यन्ध का वर्णन करने के लिये त्रिलोकमार मय, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि पढ़ने योग्य हैं।

३. चरणानुयोग—इसमें यह कथन है कि गृहस्थ व गृहत्यागी साधु को क्या र धर्माचरण पालना चाहिये। इसका दर्शन इस पुस्तक में आवश्यकतानुसार कराया गया है। विशेष जानने वालों को मूलाचार, रत्नमण्डप्राप्तकाचार, चारित्रसार, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय आदि मय देखने चाहिये।

४. द्रव्यानुयोग—इसमें सर्व तत्त्वज्ञान है व अध्यात्म कथन है, जैन लोग हम जगन्-को जिन छ मूल द्रव्या का समु

दाय मानते हैं, जहाँ का विवेचन है । वे छ द्रव्य—[१] जीव (Soul), [२] पुद्गल (matter) [३] धर्मोत्तिकाय (medium of motion), [४] अर्धर्मोत्तिकाय (medium of rest), [५] आकाश (space), [६] काल (time) हैं । जीव और पुद्गल का मेल तो ससार है । इन दोनों का अलग होना तो मोक्ष है । पुद्गल जीव के साथ किस मेलता है व छूटता है, इस विषय को बताने के लिए जैन दर्शन ७ निम्न बातें स्वरूप गिनाए हैं — १ जीव (soul) २. अजीव (non-soul), ३ आस्रव (पुद्गल का आना inflow of matter into soul), ४ बन्ध (पुद्गल का बंधन bondage of matter with soul), ५ स्रव (पुद्गल का आते हुए रुकना check of inflow), ६ निर्जरा (पुद्गल का जीव से छूटना shedding off of matter), ७ मोक्ष (स्वतंत्रता total liberation from matter) ।

इन सात तत्वों का विवेचन में सर्व जैन सिद्धांत आजाता है । इस पुस्तक में छ द्रव्य और सात तत्वों का जानने योग्य वर्णन किया है । विशेष जानने के लिये द्रव्यसमूह, तत्त्वार्थसूत्र, स्वार्थसिद्धि, गोममट्टमार, धर्मोत्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार परमात्मप्रकाश, समाधिशातक, इष्टोपदेश, ज्ञानार्णव आदि ग्रंथ देखने योग्य हैं ।

जिन पाश्चिमात्य विद्वानों ने धोड़ा या जैनमत को और मतों से मुकाबला करते हुए पढ़ा है, उन्होंने इसका सम्बन्ध अपना उच्च विचार प्रकट किये हैं।

पेरिस (प्रास) के बहुत बड़े कोटि के विद्वान् डाक्टर ए० गिरिनोट (Dr A. Giernot) माहव ता० ३ दिगम्बर १९११ के पत्र में कहते हैं —

Concerning the antiquity of Jainism comparatively to Buddhism, the former is truly more ancient than the latter. There is very great ethical value in Jainism for men's improvement. Jainism is a very original, independent & systematical doctrine.

भावार्थ—बौद्ध से जैन की प्राचीनता का मुकाबला करते हुए कहते हैं कि ठीक है कि जैनमत बौद्ध से वास्तव में बहुत प्राचीन है। मानव समाज की उन्नति के लिये जैनमत का मद्दाचार का बहुत बड़ा मूल्य है। जैन दर्शन बहुत ही असन्तो, स्वतन्त्र और नियमित सिद्धांत है।

जर्मनी के महान् विद्वान् डाक्टर जोहानर्टेल एम० ए० (Johannes Hertel M. A. Ph. D.) ता० १७ जून सन् १९०८ के पत्र में कहते हैं —

भावार्थ—मैं अपने दशवासियों को दिखलाऊंगा, कि जैन सत्तम तत्त्व और ऊँचे विचार जैनधर्म और जैन लोगकों में हैं। जैनसाहित्य बौद्धों की अपेक्षा बहुत ही बढ़िया है। मैं जितना अधिक जैनधर्म व जैनसाहित्य का ज्ञान प्राप्त करता जाता हूँ, उतना अधिक मैं उनको अधिक प्यार करता हूँ।

[५]

इस ग्रंथ के लिखने में लोचने लिये चैतन्यों में प्रोत्साहित
हो गये हैं —

श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत (वि० सं० ४६) प्रवचननार,
पञ्चवास्विकार्य, समयसार, द्वादशानुशेषा ।

श्री वमास्वामी कृत (वि० सं० ४१) वरशार्द सूत्र ।

श्री समन्तभद्राचार्य कृत (द्वि० शताब्दि में) आप्त
मीमांसा, स्वयम्भूतोत्र, रत्नेकरण्य आवकाचार ।

श्री वरदेर स्वामी कृत (प्राचीन) मूलाचार ।

श्री योगेश्वराचार्यकृत (प्राचीन) यागनार ।

श्री पुण्डरीक स्वामीकृत (तृ० श०) सर्वार्थसिद्धि,
समाधिशास्त्र ।

श्री विद्यानन्द स्वामीकृत (८ वीं श०) पात्र केशरी स्तव ।

श्री जिनमेलाचार्यकृत (६ वीं श०) महापुराण ।

श्री गुणभद्राचार्यकृत (९ वीं श०) उत्तर पुराण ।

श्री वार्धभद्र कृत (९ वीं श०) छत्र चूडामणि ।

श्री नमिषत्र मिहान चक्रवर्तीकृत (१० वीं श०) द्रव्य
समष्ट, गोमटसार, त्रिलोकसार ।

श्री अमृतचन्द्र आचार्य कृत (१४ वीं श०) पुण्डरीक
सिद्धिपुष्पाय, वरशार्दसार ।

श्री अस्माकं कृत (१० वीं श०) महावीर चरित्र ।

श्री सकल कर्ति कृत (१४ वीं श०) धर्मकुमार चरित्र ।

श्री गुप्त चन्द्र कृत (१७ वीं श०) श्रेष्ठिक चरित्र ।

पोंडे राजमल कृत (१७ वीं श०) पञ्चाध्यायो ।

*** जैनधर्म प्रकाश ***

*** जैनधर्म प्रकाश ***



दांष्ट

ऋषभ आदि महावीरलो चौथीमो जिनशय ।
विघ्नहरण भगल परख यक्षो मन बच काय ॥ १ ॥



१. जैनधर्म का उद्देश्य ।

जैनधर्म का उद्देश्य अर्थात् प्रयोजन ७ सच्चाई आत्मा के पाप पुण्य रूपी कर्म मैल को धोकर उसको ससार के जन्म मरणादि दुर्गति से मुक्त कर स्वाधीन परमानन्द में पहुँचा देना है, जिससे यह अशुद्ध आत्मा शुद्ध होकर परमात्म पद में सदाकाल के लिए स्थिर हो जाये, यह मुख्य उद्देश्य है और गौण उद्देश्य क्षमा, मद्गर्व, परोपकार, अहिंसा आदि गुणों के द्वारा सुख प्राप्त करना है।

❖ देवायामि समोचोनम् घमं कर्म निवहणम् ।

ससार दुःखतः सर्वान्यो धरायुग्मे सुखे ॥ (२०६०५००)

भावाय—मो ससार क दु खों से जीवा की छुड़ाकर उन्नत मुक्त
म धरे ऐमे कर्म नाशक समीचीन धर्म का उपदेश करता है ।

२. यह जगत् अनादि अनन्त है ।

जगत् कोई एक विशेष भिन्न पदार्थ नहीं है, किन्तु चेतन और अचेतन वस्तुओं का समुदाय है । जैसे वन वृक्षों का समूह को, भोज्य मनुष्यों के समूह को, सेना द्वाधो घोड़े रख पयादों का समूह को कहते हैं, वैसे ही यह जगत् या लोक पदार्थों का समुदाय का नाम है । यह बात बाल-बोपाल सब जानते हैं कि जो वस्तु बनती है वह किसी वस्तु से बनती है या जो नाश होते है वह किसी अन्य वस्तु के रूप में परिवर्तित हो जाता है । अकस्मात् बिना किसी उत्पादन कारण के न कोई वस्तु बनता है, न कोई गूढ़ होकर सर्वथा अभावस्थ हो जाती है । दूध से घी रोया मलाई बनती है, कपड़े को जलान से राख बन जाती है, मिट्टी, चूना, पत्थरों के मिलने से मकान बन जाता है, मकान को तोड़ने से मिट्टी टाकड़ों आदि पदार्थ अलग अलग हो जाते हैं । यह सृष्टि का एक बदल और पक्का नियम है कि सन् का सर्वथा नाश और अमन् का उत्पाद कभी नहीं हो सक्ता, अर्थात् जो मूल पदार्थ जड़ या चेतन हैं उनका सर्वथा नाश नहीं होता है, तथा जो मूल पदार्थ नहीं हैं वे कभी पैदा नहीं हो सक्ते । सायस या विज्ञान भी यही मत रखता है ।

किसी वस्तु का नाश नहीं होता है । यह जगत् परिवर्तनशील है, अर्थात् इसके भीतर जो चेतन और जड़ द्रव्य हैं वे सदा अवस्थाओं को बदलते रहते हैं । अवस्थाएं जन्मती और विगड़ती हैं, मूल द्रव्य नहीं । इसलिध यह लोक सदा से है व

सदा चला जायगा तथा अटुत्रिम भी है क्योंकि जो वस्तु आग्नि सहित होती है उसी के लिए कर्ता को आवश्यकता है । अनादि पदार्थ के लिए कर्ता हो नही सकता । यह वगत स्वभाव ७ ॥ सिद्ध है अर्थात् हमके सध पदार्थ अपने स्वभाव में काम करते रहते हैं ।

हर एक कार्य के लिए दो मुख्य कारण होते हैं—एक उपादान, दूसरा निमित्त । जो मूल कारण स्वयं कार्यरूप हो जाता है उस उपादान कारण कहते हैं, उसके कार्य रूप होने में एक व अनेक जो सहायक होते हैं उनको निमित्त कारण कहते हैं । जैसे पानी से भाप का बनना, इसमें पानी उपादान तथा अग्नि आदि निमित्त कारण हैं । जगत में आग, पानी, हवा, मिट्टी एक दूसरे को बिना पुरुषार्थ के अपने अपने परिणामों के अनुसार निमित्त होकर बहुत से कार्यों में बदल जाते हैं । पानी धरतना, बहना, मिट्टी का बह जाना, कहीं जमकर पृथ्वी बनना, बादलों का बनना, सूर्य का प्रकाशताप फैलना, दिन रात होना, ये सब बड़ पदार्थों का विकास है । निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध चिन्तन में नहीं आ सकता, न जाने कौन पदार्थ अपनी

७ छोटी अविट्रिमो बहुत अनादि निहो सहाय निष्पन्नो ।

जीवा जीवेहि अरोणिथो तालरुवस सदागो ॥ २ ॥

—मूल्याचार ४० ८

अर्थ—यह छोटी अटुत्रिम है, अनादि अनन्त है । स्वभाव से ही अपने भाप बना बनाया है, जीव अजीव पदार्थों से अरा है, जित्य है और तादृ पृथ के आकार है ।

परिस्थिति में वरा विधान करना हुआ किम केचित्त विधान का निर्मित हो रहा है। इस अमन्य परिणाम प्रतिष्ठित हो रहे हैं।

यह म से कामों में चेतन जाव मा निर्मित होने हैं जैसे चिद्रियों से योग का बनना, आत्मा से मन्त्र बनना, वरा बनना आदि, तथा कहीं चेतन वार्या म मा अङ्क परार्थ निर्मित बन जाता है, जैसे अक्षराय होने में मय या मय आदि। इस जगत में सदा हा क्रम होता रहता है। वरा चर्चा है कि कमा परमाणु रूप से दीय कान तक पड़ा रह और फिर बने। जहाँ जल और ताप का सम्बन्ध हागा, वहा अतः शुष्क हो भाव बनेहीगा। वही वरा फाई बला बनक हा जाता है, वहा कभी कृतक क्षेत्र बनी हो जाता है। मय जगत में कमा मदा प्रत्य नहीं होता। किमा थोड़े से क्षेत्र में पञ्चदश का साम्राज्य म प्रत्य की अवस्था कुछ कान व लिए हागे है, फिर कहीं बला जमा लगनी है। यों मूर्खता में दगा जाय ता सृष्टि और प्रत्य सर्वदा होने रहते हैं। इस तरह यह जगत अतर्हि होकर अतर्हि तक बना जायगा।

३ जैनधर्म अनादि अनन्त है

जैनधर्म इस जगत में कहीं १ कहीं सदा हो पाया जाता है। यह किसी निराय काल में शुरू नहीं हुआ है। जम्बूद्वीप • के विरह क्षेत्र में (जिसका अभी वर्तमान भूगोल शास्त्रियों को पता नहीं लगा है) यह धर्म सदा जारी रहता है। वहाँ से महान्

• जम्बूद्वीप विरह का वर्णन जगत की रचना में लिखा।

पुरुष सदा हो देह में रहित हा मुक्त होते हैं । इसा कारण उस क्षेत्र को रिदे^२ कहते हैं । इस भरतक्षेत्र में भी यह धर्म, प्रवाद की अपेक्षा अनादिमाल से है।

यद्यपि किमो का में कुछ समय के लिए लुप्त हो जाता है, तो भी फिर तीर्थंकरों या मोक्षगामी वैराज्ञानी महान् आत्माओं के द्वारा प्रसार किया जाता है । जब यह धर्म आत्मा के शुद्ध करने का उपाय है तब जैसे आत्मा और अनात्मा अर्थात् चेतन और जड़ में भरा हुआ यह जगत् अनादि अनन्त है, वैसे ही आत्मा की शुद्धि का उपाय यह धर्म भी अनादि अनन्त है । जगत् में धान्य और धान्य को तुल्य रहित शुद्ध अवस्था प्राप्त तथा धान्यका शुद्ध होने का उपाय दोनों ही अनादि हैं । इसी तरह ससारी आत्मा परमात्मा और परमात्मपद की प्राप्ति के उपाय भी अनादि हैं ।

४ ऐतिहासिक दृष्टि से जैनधर्म की प्राचीनता

जैसा पहिल बताया गया है, यह जैनधर्म अनादि काल से चला आ रहा है । हम यदि वर्तमान योजे हुए इतिहास की ओर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि जहा तक भारत की ऐतिहासिक सामग्री मिलती है वहा तक जैनधर्म पाया जाता है । इस बात के प्रमाण इस पुस्तक में गमून के रूप में निम्न लिखित एक दो ही दिये जाने हैं, जिससे पुस्तक बहुत बड़ी न हो जाये —

मेजर जनरल फार्लॉग साहय (Major General J G R Farlong) अपनी पुस्तक "In his short studies of comparative religions P P 243—4" में कहते हैं —

All Upper, Western, North & Central India was, then say, 1500 to 800 B C and indeed from unknown times, ruled by Turanians, conveniently called Dravids and given to tree, serpent and the like worship...

but there also existed through out Upper India an ancient & highly organised religion, philosophical, ethical & severely ascetical viz Jainism

भावार्थ—सन् ३० से ८०० से १५०० वर्ष पहिले तक तथा वास्तव में अज्ञात समयों से यह कुल भारत तूगरी या द्राविड लोगों द्वारा शासित था, जो वृक्ष सर्प आदि को पूजा करते थे, किन्तु सम्यही ऊपर भारत में एक प्राचीन उत्तम रीति से गँठा हुआ धर्म सत्यज्ञान से पूर्ण महापार रूप तथा कठिन तपस्या सहित धर्म अर्थान् जैनधर्म मौजूद था ।

इस पुस्तक में प्रत्येक ने जैनों के ऐसे भावों का पता अन्य देशों में प्राप्त भावों में पाया; जैसे ग्रीक आदिकों में । इसी से इनका अस्तित्व बहुत पहिले से सिद्ध किया है । दुनियाँ के बहुत से धर्मों पर जैनधर्म का असर पड़ा है, ऐसा बताया है ।

एक अजैन विद्वान् लाला कप्तोमल धियोसोमिस्ट पत्र माम दिसम्बर १९०४ और जनवरी १९०५ में लिखने हैं—“जैनधर्म एक ऐसा प्राचीन मत है कि जिसकी उत्पत्ति तथा इतिहास का पता लगाना बहुत ही दुर्लभ बात है” ।

५. हिन्दुओं के प्राचीन ग्रन्थों में जैनों का संकेत

आनकल के इतिहासकार ऋग्वेद यजुर्वेद आदि को प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं । उनमें भी जैन सार्वक्यों का वर्णन है ।

जैनियों के २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि का नाम नाच के मन्त्रों में है —

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्व वेदा ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्ट नेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
(ऋग्वेद अ० १ अ० ६ वर्ग १६ दयानन्द भाष्य मुद्रित)

भावार्थ—महा कार्तिकवान इन्द्र विश्ववेत्ता पूषा, तार्क्ष्य रूप अरिष्टनेमि व बृहस्पति हमारा कल्याण करें ।

वाजस्य तु प्रसव आ यभूयेमा च विश्वा भुवतानि सर्वत ।
स नेमि राजा परिधाति विद्वान् प्रजा पुष्टिं वर्धयमानो अस्म स्वाहा ॥
(यजुर्वेद अध्याय ६ मन्त्र २५)

भावार्थ—भावयज्ञ को प्रगट करने वाले ध्यान का इस ससार के सर्वमृत जीवों के लिये सर्व प्रकार में यथार्थ रूप कथन करके जो नेमिनाथ अपने को केवलज्ञानादि आत्मचतुष्टय के स्वामी और सगुण प्रगट करते हैं और भिनके दयामय उपदेश स जीवों को आत्म-स्वरूप का पुष्टिता शास्त्र मदती है, उसको आहुति है ।

अर्हन् विमर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजत विश्वरूपम् ।
अर्हन्निद दयस विश्वमर्भ्व नरा ओ जीयो रुद्रत्वदस्ति ॥
(ऋग्वेद अ० २ अ० ७ वर्ग १७)

भावार्थ—हे अर्हन् । आप वस्तु स्वरूप धर्मरूपी वाणों को, उपदेश रूपी धनुष को तथा आत्म चतुष्टय रूप आभूषणों को धारण किए हो । हे अर्हन् । आप विश्वरूप प्रकाशक केवलज्ञान

को प्राप्त हो। हे अर्हन् आप इस समार के मय जीवा का रक्षा करते हो। हे कामादि को ज्ञान वाल आप के मंगा कोइ यलयान् उहाँ है।

नोट—इस मन्त्र में अर्हन् को प्रशंसा है, जो जैतियों के पाँच परमेष्ठा में प्रथम हैं। श्री गन्ध साधु महाश्वीर भगवान का नाम नाथे के मन्त्र में है —

आतिथ्य रूप मासर महावारस्य गन्धु ।

रूप सुपमदा मेगतिस्त्रो रात्रा सुरामुना ॥

(यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र १४)

योग वासिष्ठ अ० १४ श्लोक ८ में श्री रामचन्द्र जी कहते हैं —

नाह रामो न मे बाधा भावेषु च न मे मा ।

शान्ति मास्थालु मिच्छामि स्वामयेव जिनो यमा ॥

भावार्थ—न मैं राम हूँ, न मेरी बाधा पदार्थों में है। मैं तो जिनके समान अपने आत्मामें ही शान्ति स्थापित करना चाहता हूँ।

वाल्मीकि रामायण १४ सर्ग बालकाण्ड श्लोक २२ महा राज दशरथ ने अमणों को भोज दिया । अमण दि० जैन मुनि को कहते हैं—“अमणारचैव भुञ्जते”।

(अमणा दिगम्बरा भूषण टीका)

महाभारत वन पर्व अ० १८३ पृ० ७२७ (छपी १६०७ मरत पन्द सोम)

हेहय वशी करवप गोत्री आदि सब ने महाप्रत धारी
महात्मा अरिष्टनेमि मुनि को प्रणाम किया।

नोट—यहा २२ वें तीर्थंकर का संकेत है, जिनका नाम
ऊपर वेद के मंत्रों में आया है।

मार्कंडेय पुराण अ० ५३ म—ऋषभदेव ने भरत पुत्र को
राज द्धनमें जाकर महासभ्यास ले लिया।

नोट—यहा जैनियों के प्रथम तीर्थंकरका वर्णन है।

भागवत के स्कन्ध ५ अ० ७ पृ० ३६६-७ में जैनियों के
प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेव को महर्षि निम्नकर उनके उपदेश की
बहुत प्रशंसा लिखी है। भागवत के टीकाकार लाला शालिग्राम
जी पृष्ठ ३७२ म इस प्रश्न के उत्तर में कि “गुह्यजनी ने ऋषभ
देव को क्यों प्रणाम किया” लिखते हैं—“ऋषभदेवजी ने जगत
को मोक्ष मार्ग दिखाया और अपने आप भी मोक्ष होने के फल
लिए, इसीलिए गुह्यदेव जी ने ऋषभदेव को नमस्कार किया है”।

६. जैनधर्म हिन्दूधर्म की शाखा नहीं है

जैनधर्म हिन्दूधर्म का शाखा नहीं हो सकता है। क्योंकि
जो जिसकी शाखा होता है उसका मूल भी वही होता है। जो
हिन्दू कर्तावादा हैं उनसे विरुद्ध जैनमत कहता है कि जगत
अनादि अकृत्रिम है, उसका कर्ता ईश्वर नहीं है। जो हिन्दू एक
ही ब्रह्ममय जगत मानते हैं उनसे विरुद्ध जैनमत कहता है कि
लोक में अनन्त परब्रह्म परमात्मा, अनन्त सत्तारी आत्मा, परब्रह्म
आदि जगत् के अनादि सत्तारी आत्मा, अनन्त सत्तारी आत्मा, परब्रह्म

जो हिन्दू आत्मा या पुरुष को कूटस्थ नित्य या अपरिणामी मानते हैं उनसे विरुद्ध जैनधर्म कहता है कि आत्मायें स्थावरा तथा गते हुए भी परिणामनशील हैं, तब ही राग द्वेष भावों को छाड़ बीतराग हो सकती हैं । जैन लोग उन ऋग्वेदादि वेदों को नहीं मानते, जिनको हिन्दू लोग अपना धर्मशास्त्र मानते हैं । प्रोफ़ेसर जैकबी ७ आक्सफ़ोर्ड में जैनधर्म को हिन्दूधर्मों में सुझावला करते हुए कहा है—“जैनधर्म सर्वथा स्वतंत्र है । मेरा विश्वास है कि यह किसी का अनुकरण रूप महा है और इसीलिए प्राचीन भारतवर्ष के तत्त्वज्ञान और धर्म धसृति के अध्ययन करने वालों के लिए यह एक महत्व की वस्तु है ।” (देखो पृष्ठ १४१ गुजराती जैन दर्शन, प्रकाशक अधिपति ‘जैन’, भावनगर ।)

७ जैनधर्म बौद्धधर्म की शाखा नहीं है

बौद्धधर्म पदार्थ का नित्य नहीं मानता है, आत्मा को क्षणिक मानता है, जबकि जैनधर्म आत्मा को द्रव्य की अपेक्षा नित्य, किन्तु अवस्था को अपेक्षा अनित्य मानता है । जैनधर्म में जो छ द्रव्य हैं, उनकी बौद्धों के महा मायता नहीं है । इसके विरुद्ध बौद्धधर्म जैनधर्म की नकल जरूर है । पहले स्वयं गौतम बुद्ध जैन मुनि पिद्दिताश्रय के गिप्य—साधु हुए । फिर उन्होंने “मृतक प्राणी में जाव नहीं होना” ऐसी शका होने पर अपना भिन्न मत स्थापित किया । (देखो जैन दर्शन सार, देवनन्दि कृत)

प्रोफ़ेसर जैकबी भी कहते हैं —

"The Buddhist frequently refer to the Nirgranthas or Jains as a rival sect, but they never, so much as hint this sect was a newly founded one. On the contrary, from the way in which they speak of it, it would seem that this sect of Nirgranthas was at Budhas time already one of long standing, or in other words, it seems probable that Jainism is considerably older than Buddhism
(देखो पृष्ठ ४२ गुजराती जैन दर्शन)

भावार्थ—बौद्ध ने चार २ निग्रन्थ या जैनियों को अपना मुकाबिला करवा धाला कहा है, परन्तु वे किसी स्थल पर कभी भाव नहीं कहते कि यह एक नया स्थापित मत है। इसके विरुद्ध जिस तरह वे वर्णन करने हैं उसमें यही प्रकट होगा कि निग्रन्थों का धर्म बुद्ध के समय में दीर्घकाल से मौजूद था अर्थात् यही सम्भव है कि जैनधर्म बौद्धधर्म से अधिक पुराना है।

जैकोशने आश्रम शब्द को बौद्ध ग्रंथों में पाप के अर्थ में देखकर तथा जैनग्रंथों में जिससे कर्म आते हैं व जो कर्म आत्मा में आता है ऐसे असली अर्थ में देखकर यह निश्चय किया है कि जहा आश्रम के मूल अर्थ हैं वही धर्म प्राचीन है।

Dr Ry Davids डा० राइ डेविड्स ने "Buddhist India P 143" में लिखा है कि—

"The Jains have remained as an organised Community all through the history of India from before the rise of Buddhism down to day "

भावार्थ—जैन लोग भारत क इतिहास १ बौद्धधर्म के बहुत पहिले से अबतक एक सङ्गठित जातिरूप म चले आ रहे हैं ।

लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक केशरी पत्र म १३ दिसम्बर १९०४ मे लिखने हैं कि—

बौद्धधर्म की स्थापना के पूर्व जैनधर्म का प्रमाण फैल रहा था । बौद्ध धर्म पीछे से हुआ, यह बात निश्चित है ।

हटर सादिय अपना पुस्तक इतिहास इम्प्रायर के पृष्ठ २०६ पर लिखने हैं कि—

जैनमत बौद्धधर्म से पहिले का है । ओल्डनबर्ग १ पाली पुस्तकों को देखकर यह बात कही है कि जैन और निर्मल्य एक हैं । इनके रहते हुए बाद म बौद्धमत उत्पन्न हुआ ।

(See Dadha's life & Haey's translation 1882)

जैनधर्म इतना ही बौद्धमत मे भी भिन्न है जितना भिन्न कि हम उसे किता भा और मत से कह सकते हैं :—

८. गौड़ों के ग्रन्थों में जैनों का संकेत

“ऐतिहासिक खोज” (Historical Gleanings) नाम का पुस्तक में, जिसको बानू विमल चरण ला एम० ए० बी० एल० न० २५ मुनिया स्ट्रीट कलकत्ता न मन् १९२२ में सम्पादन कर प्रकाशित कराया है, इस सम्बन्ध में बहुत से प्रमाण लिखे हैं, जिनम स कुछ यहा नाचे दिये जाते हैं —

(१) गौतम बुद्ध राजप्रहो में निर्मथ नातपुत्र (श्री महाभार) के शिष्य चूलसकुल दादी में मिले थे ।

(मज्झिमनिकाय अ० २)

(२) श्री महावीर गौतमबुद्ध से प्रथम निर्वाण हुए ।

(मज्झिम निकाय साम् गाममुत्त व दिग्घनिशाय पातिक्क सुत्त)

(३) बुद्ध ३ अचेलको (नग्न दिग्घन्यर साधुओं) का वर्णन लिखा है । (दिग्घनिशाय ३१ कस्मप सिद्ध नाये)

(४) निर्मथ आत्रको का देवता निर्ग्रन्थ है—“निगन्थ सायकानाम् निगन्थो देवता” ।

(पाली त्रिपिटक निर्देश पत्र १७३-४)

(५) महाभार स्वामी ने कहा है कि शीत जल में जीव होते हैं—“सो विर शीतोदये सत सदा होति” ।

(सुमगल त्रिलासिनी पत्र १६८)

(६) राजप्रहो में एक बड़े बुद्ध ने महात्म का कहा कि “इसिगिनी (अष्टपिगिरि स०) के तट पर कुछ निर्मथ भूमि पर लेटे हुए तप कर रहे थे । तब मैंने उनमें पूछा—क्यों ऐसा करत हो ? उन्होंने जवाब दिया कि उनके नाथपुत्र ने जो सर्पश व सर्वदर्शी हैं उनसे कहा है कि पूर्वजन्म में उन्होंने बहुत पाप किए हैं, उन्हीं क क्षय करने के लिए वे मन वचन काय का निरोध कर रहे हैं” । (मज्झिमनिकाय जिल्द १ पत्र ६२-६३)

(७) निच्छत्रों का सनापति सोह, निर्मथ नातपुत्र का शिष्य था । (विनय पिटक का महावग्ग)

(८) निर्मथ मत्तधारी राना के खजाची के वश में भद्रा को, आयस्ता के मजो के वश में अर्जुन को, शिम्बमार के पुत्र अभय को, आयस्तो के मश्रीगुप्त और गरहदिन को बुद्ध ने मौद्ध बनाया। (धम्मपाल वृत्त प्रमयदापिनी व धम्मपदत्थ कथा जि० १)

(६) धनञ्जय सेठो को पुत्रा विशाल्या निर्मथ मिगार सेठो के पुत्र पुराणषट्क को विवाहा गइ थी। आयस्ती म मिगार सेठो ने ४०० जग्न साधुओं को आहार दान दिया।

(विसाखावस्थु धम्मद कथा जि० १)

६. जैनों की मूल मान्यताएँ

(१) यह लोक अनादि अनन्त अकृत्रिम है। चेतन अचेतन छ द्रव्यों से भरा है। अनन्तानन्त जीव भिन्न ५ हैं। अनन्तानन्त परमाणु जड़ हैं।

(२) लोक के सर्व ही द्रव्य स्वभाव से नित्य हैं, परन्तु अवस्था को बदलने की अपेक्षा अनित्य हैं।

(३) ससारी जीव प्रवाह को अपेक्षा अनादि से जड़, पाप पुण्य मई कर्मों के शरीर में संयोग पाये हुए अशुद्ध हैं।

(४) हर एक ससारी जात स्वतन्त्रता में अपने अशुद्ध भावों द्वारा कर्म बाधता है और वहा अपने शुद्ध भावा में कर्मों का नाश कर मुक्त हो सकता है।

(५) जैसे स्थूल शरीर में लिया हुआ भोजन पान स्वयं रस रुचिर योग्य बन कर अपने फल को दिया करता है, ऐसे ही पाप पुण्य मई सूक्ष्म शरीर में पाप पुण्य स्वयं फल प्रकट करके

आत्मा में क्रोधादि बहुत सुख भवकाया करता है। कोई परमात्मा किसी को दुःख सुख दना नहीं।

(६) मुक्तजीव या परमात्मा अनन्त हैं। उन सबको सत्ता भिन्न २ है। कोई किसी में मिलता नहीं। सब ही निम्न स्वात्मानन्द का भोग किया करते हैं तथा फिर कभी ससार अवस्था में आत नही।

(७) माधव गृहस्थ या माधु जन मुक्ति प्राप्त परमात्मा की भक्ति व आराधना अपने परिणामों का शुद्धि के लिए करते हैं। उनकी प्रमत्त कर उनमें फल पाने के लिए नहीं।

(८) मुक्ति का मात्मान् साधन अपने ही आत्मा को परमात्मा के समान शुद्ध गुण वाला जान कर—भक्तान कर—और मर्त्य प्रकार का राग द्वेष मोह त्याग कर उसा का ध्यान करना है। राग द्वेष मोह से कर्म बँधते हैं। इसके विपरीत वातराग भावमयी आत्मममाधि से कर्म ऋद्ध (नाश हो) जाते हैं।

(९) अहिंसा परम धर्म है। साधु इनका पूर्णता से पालने हैं। गृहस्थ यथा शक्ति अपने २ वर के अनुसार पालने हैं। धर्म के नाम पर, मामाहार, शिकार, शौर आदि व्यर्थ कार्यों के लिये जावों की हत्या नहीं करते हैं।

(१०) भोजन शुद्ध, ताजा, माम मदिरा मधु रहित व पानी द्रव्य हुआ लेना उचित है।

(११) क्रोध, मान, माया, लोभ, यह चार आत्मा के शत्रु हैं, इसलिये इनका सहार करना चाहिये।

(१२) माधु के निम्न छ कर्म ये हैं—सामायिक या ध्यान, प्रतिक्रमण (पित्रलो दोषा की निन्दा), प्रत्याग्न्यान (आगामी के लिए दोष त्याग की भावना), स्तुति, घटना, कायोत्सर्ग (शरीर की ममता त्यागना) ।

(१३) गृहस्था के निम्न छ कर्म ये हैं—देव पूजा, गुरु भक्ति, शास्त्र पठन, सयम, तप और दान ।

(१४) साधु जन्म होते हैं, वे परिग्रह व आरम्भ नहीं रखते । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह-त्याग, इन पांच महाव्रता का पूर्ण रूप से पालने हैं ।

(१५) गृहस्था के आठ मूलगुण ये हैं —मदिरा मास, माधु का त्याग, तथा एक देश यथारक्ति अहिंसा, मत्स्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व परिग्रह प्रमाण, इन पांच अनुव्रता का पालना ।

१० वेदान्तादि अनेन मतों की मान्यताएँ और उनका जैनियों की मान्यताओं से अन्तर

(१) वेदान्त मत—इस मत का सिद्धांत है कि यह दृश्य जगत व दर्शक दोनों एक हैं । ब्रह्मरूप जगत है, ब्रह्म ही ल पैदा हुआ है और ब्रह्म ही म लय हो जायगा । (देखो वेदान्त दर्पण व्यास कृत, भाषा प्रभुदयाल, लषा वेंकटेश्वर स० १९५९)

ब्रह्म का लक्षण है—“ज-माद्यस्य यत इति” ।

(सूत्र २ अ० २)

भावार्थ—ज-म स्थिति नाश उसस होता है ।

“नित्यस्सर्वज्ञस्मर्वगतो निष्कृष्ट शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभावो
विज्ञानमानन्द ब्रह्म” (पृ० ३०)

भावार्थ—ब्रह्म नित्य है, सर्वज्ञ है, सर्व व्यापी है, मग्न
वृत्त है, शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभाव है, विज्ञानमयी है,
आनन्दमय है।

“आकाशस्त्रिंशान्” (मू० २० अ० १)

भावार्थ—आकाश ब्रह्म है—ब्रह्म का चिह्न होने से।

“सुभ्यान्नायतन स्वशब्दान्” (१ पाद ३)

भावार्थ—पृथ्वी जिसके आदि में है, ऐसे जगत का आय
तन है—आत्म वाचक शब्द होने से।

“कार्यो पाधिरथ जीव कारणोपाधिरीश्वर” (वेदात्त
परिभाषा परि० ७)

भावार्थ—यह जीव कार्य रूप उपाधि है, कारणरूप उपाधि
इश्वर है।

जैन सिद्धान्त मुक्तारमा को परब्रह्म, जगत का अकर्त्ता व
ससार स भिन्न मानता है। जीवा की सत्ता भिन्न अनन्त स्वतन्त्र
व परमाणु आदि अचेतन की सत्ता भिन्न मानता है। अद्वैत रूप
एक ब्रह्म मानने में यह दोष देता है।

“कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोकाद्वैतं च नो भवेत् ।

विद्या विद्या द्वयं न स्यात् यद्य मोक्ष द्वय तथा ॥२५॥”

(आप्तमीमांसा)

भावार्थ—यदि ब्रह्म नित्य व वृत्त है, तब उससे कोई कार्य

नहीं हो सक्ता, यदि कोई कार्य हो तो विरोधी पदार्थ नहीं बन सके, अर्थात् शुभ, अशुभकर्म, सुख दुःखरूप फल, यह लोक परलोक, विद्या अधिष्ठा, यद्यपि मोक्ष कुछ नहीं हो सके। आनन्दमय हो। स उसमें अनेक रूप हो जाऊ, यह भाव नहीं हो सकता। हो यन्तु हो। मे हो परस्पर यद्यपि उग्रा छटना या मुक्त हो। बन सक्ता है—एक ही शुद्ध पदार्थ में अमन्भव है।

(२) सांख्य दर्शन और (३) पातञ्जलि दर्शन इनके दो भेद हैं। एक वे, जो ईश्वर को मत्ता नहीं मानते हैं, आत्मा को निर्लेप भक्तता य अङ्ग प्रकृति को ही कर्ता मानते हैं, अहंकार शान्ति, बुद्धि आदि आत्मिक भावों को भी सत्त्व, रज, तम तीन प्रकृति के विकार मानते हैं, परन्तु फल भोक्ता आत्मा को मानते हैं। (देखो माध्यम दर्शन कपिल छापा सं० १९५७)

“अकर्तुर्गपि फलोपभोगो भस्मादि वत्” (१०५ अ० १)

भावार्थ—अकर्ता पुरुष है तो भी फल भोगता है, जैसे किमान अन्न पैदा करता है और राजा भोगता है।

“अहंकार कर्ता न पुरुष” (५४ अ० ६)

अहंकार जो प्रकृति का विकार है वह कर्ता है, आत्मा कर्ता नहीं है।

‘नानन्दाभि व्यक्तिर्गुक्तिर्निघर्मत्वान्’ (७४ अ० ५)

भावार्थ—आत्मा में आनन्द धर्म नहीं है, इससे आनन्द की प्रकटता मोक्ष नहीं है।

जो ईश्वर को भी मानते हैं वेमे पातञ्जलि-ग्रन्थ सारय
इश्वर को ऐसा कहते हैं कि—

“परमेश्वर” क्लेश कर्म निपाताशयैरपरामृष्टः पुरुषः स्वे
च्छया निर्माणमायमधिष्ठाय लौकिक वैदिक सम्प्रदाय प्रवर्तन
ससारगारतप्यमानानां प्राणभूतमनुमादकरचः

(मर्ब दर्शन संग्रह पृ० २५५)

भावार्थ—परमेश्वर क्लेश, कर्म, निपात, आशय से स्पृष्ट
नहीं होता। वह स्वेच्छा से निर्माण शरीर में अधिष्ठान करके
लौकिक और वैदिक सम्प्रदाय की वर्तना करता है, परं ससाररूप
अङ्गार से तथ्यमान प्राणीगण व प्रति अनुग्रह वितरण
करता है।

दोनों ही आत्मा को अपरिणामी मानते हैं—

“पुरुषस्यापरिणामित्वान्”

(१८ पाद ४ योग दर्शन पातञ्जलि १६०७ में छपा)

जैनसिद्धान्त कहता है कि यदि आत्मा अपरिणामी अर्थात्
कूटस्थनित्य हो व कर्ता न हो तो उसका ससार व मोक्ष नही हो
सकता तथा जो करेगा वही भोगेगा। किसान खेतो करके उसका
फला कुटुम्ब पालन भोगना है। राजा किमानों की रक्षा करके
उसका फल राज्य-मुख पाता है। अइ पदार्थ में शक्ति व प्रोपादि
भाव नहीं हो सकते। य सष चेतन के ही भाव हैं। जो शुद्ध
इश्वर आशय रहित है वमम शरीर धार कर छपा करने का भाव
नहीं हो सकता है। कहा है—

निय त्रैकान्त पक्षेऽपि विप्रिया नोपपत्तौ ।

प्रागेव कारकाभावा यद्यप्यभावात् कथतत्फलम् ॥३७॥

(आत्ममीमांसा)

भावार्थ—यदि सर्वथा निश्चय माना जायगा तो इसमें विकार नहीं हो सके। तब कर्ता पना आदि कारक न हागे, न इसमें यथार्थ ज्ञान होगा, न इसका फल होगा कि यह त्यागो और यह ग्रहण करो। जैन दर्शन ईश्वर को महा आनन्दमय और परका अकर्ता मानता है। जीव ही स्वयं पाप पुण्य साधने व स्वयं ही मुक्त होने हैं, किसी ईश्वर की कृपा से नहीं।

(४) नैयायिकदर्शन और (५) वैशेषिकदर्शन ये दोनों प्राय एक में हैं। दोनों ईश्वर को कर्मा का फलदाता मानते हैं।

“ईश्वर कारण पुरुषकर्माफन्य दर्शनान् ॥ १६ ॥”

(न्यायदर्शन प्र० ४१७ सं० १६४६ में छपा)

भावार्थ—पुरुषा के कर्मों का अफल दोनों देखने व जानने से ईश्वर कारण है। ईश्वर के आधीन कर्म का फल है।

“अज्ञो जतुराशोऽयमात्मन सुख दुःखयो ।

ईश्वर प्रेरितो गच्छेत् स्वर्गोऽथ भ्रमेऽथ वा ॥ ६ ॥”

मुक्तात्माना विद्येश्व रादोनाञ्च यद्यपि शिवत्वमस्ति तथापि परमेश्वर पारतज्यात्त्वावर्त्यनास्ति ।

(प्र० १३४—१३६ सर्वदर्शन समग्र)

भावार्थ—यह जतु असजानो है। इनका सुख दुःख स्वा-

धानता रक्षित है। ईश्वर की प्रेरणा से स्वर्ग या नर्क में जाते हैं। मुक्ति प्राप्त जीव व विद्या के ईश्वर शिखर रूप हैं, तथापि परमेश्वर के वश हैं, वे स्वतन्त्र नहीं हैं।

अनच्छिन्न सद्भावस्तु यद्वेशकालतः ।

तन्नित्यं त्रिमुचेन्द्रन्तीत्यात्मनो त्रिमु नित्यतेति ॥

(१९ सर्व दर्शन मग्न पृ० १३९)

भावार्थ—किमी दर्शक काल में आत्मा निरोधरूप नहीं है। आत्मा व्यापक है और नित्य है।

“विभवान् महानाकारास्तथाचात्मा” (२८ अ० ७ वैशेषिकदर्शन पृ० २४७ छपा १६४६)

भावार्थ—यह आकाश महान् त्रिभु है, वैसा ही यह आत्मा है।

जैन दर्शन कहता है कि यदि ससारी जीवों को कर्म का फल देना ईश्वर व आधीन है तो उसका कुमार्गगमन से रोकना भी उसका आधान होना चाहिये। जब ईश्वर सर्वज्ञ, सर्व व्यापक, दयालु व सर्वशक्तिमान् है, तो उसे अपना प्रजा को कुपथ में अवश्य रोक देना चाहिये, जैसे दश का राजा शक्ति के अनुसार शान होने पर दुष्टा का निग्रह करता है, परन्तु जगत में ऐसा नहीं देखा जाता। इससे उसकी प्रेरणा कर्म के फल में आवश्यक नहीं है।

आत्मा यदि सर्वथा निर्विकार हो तो उसमें विकार नहीं हो सकत। विकार बिना राग द्वेष नहीं हो सकत, न रागद्वेष से

छूटकर मुक्त हो सकता है। सर्व व्यापक आत्मा हो तो स्पर्श का ज्ञान सर्वस्थानों का एक काल में होना चाहिये। मो होता नहीं, किन्तु गरोर मात्र के स्पर्श का ज्ञान एक काल में होना है, इससे आत्मा गरोर प्रमाथ है। यदि आत्मा मुक्त हो गया तो फिर उसका ईश्वर के परतत्र होना समभव नहा है। मुक्त का अर्थ स्वाधीन है।

(६) मीमांसा दर्शन—यह दर्शन भी ईश्वर को मत्ता नहीं मानता है। यह शब्द को तथा वेदों को अनादि अपौरुषेय मानता है। यज्ञादि कर्म को हो धर्म मानता है।

‘ वेदस्य अपौरुषेयतया निरस्त समस्त शङ्काः कलकाकुर-
त्वेन स्वतः निवृत्तम् ’। (सर्वदर्शनसमूह पृ० २१८)

भावार्थ—सर्व शंकारूपी कलक के अँधुर नाश होन पर वेद बिना किमी का किया हुआ सिद्ध है।

जैन दर्शन कहता है कि जो शब्द होठ गालु आदिस बोले जाते हैं, उनका रचने वाला कोई पुरुष हो होना चाहिये। बिना रचना के उनका व्यवहार नहीं हो सकता। वे लिखन पढ़ने में आते हैं। ज्ञान को प्रगटरूप अनादि कह सकते हैं, किन्तु प्रगटता किसी पुरुष विरोध से होतो है ऐसा मानना चाहिय। शब्द नित्य नहीं हो सकता, क्योंकि वह दो जड़ पदार्था के संबध से भाषावर्गणानाम जड़ पुद्गल की एक अवस्था विशेष है। अवस्था सत्र क्षणिक हैं। जिन पुद्गला स शब्द बना है, वे मूल में नित्य हैं। अहिंसारूप यज्ञ, पूजा आदि स्वर्ग के कारण हो

सकत हैं, पशु हिमालय नहीं, परन्तु मुक्ति का कारण तो एक शुद्ध आत्मसमाधि है, वही क्रियाकाण्ड का कल्पना ही नहीं रहती है।

(७) बौद्ध दर्शन—बौद्ध भी ईश्वर का जगतकर्ता नहीं मानता तथा किसी पदार्थ का नित्य न मानकर सबको क्षणिक मानता है। "यत् सत् तत् क्षणिक" (सर्वदर्शन समग्र पृ० ३० छापा स० १९६०)।

भावार्थ—जो जो मनुष्य हैं सब क्षणभंगुर हैं। जैन दर्शन कहता है कि सर्वथा क्षणिक मानने से एक आत्मा अपने किये पुण्यपाप के फलका भोक्ता न रहेगा, न वह मोक्ष अवस्था में बना रहेगा। पर्याय बनाने को अपेक्षा क्षणिक मान सकती हैं, किन्तु तिस पर भी वस्तु का मूल स्वरूप नहीं जाता, इससे उसे नित्य भी मानना चाहिये।

नोट—वासी ग्रन्थों में बौद्ध धर्म को भीतर रूप ही कहा है। स्पष्ट कथन नहीं है। निर्वाण को अविनाशी कहा है।

(८) थियोसोफी—एक मत है जो अपने को हिन्दू मत समीप कहता है। यह कहता है कि अङ्ग से उन्नति करते २ मनुष्य होता है। चेतन व अङ्ग दो मूल पदार्थ भिन्न २ नहीं हैं, तथा मनुष्य मरकर कभी पशु नहीं जाता। हर एक प्राणी उन्नति ही करता है।

देखो—First Principles of Theosophy by C. Jinarajdas M. A. 1921 Adyar—Madras इस पुस्तक में लिखा है—

मात्मा के हृत्य है । कर्म बंध के कारण कमी है, उस कमी को जाते ही वह परमात्मा के समान स्वतंत्र हो जायगा । परमात्मा बिना किसी दोष के मुक्त जीव को क्या कभी ससार में भेजता है यदि भेजता है तो जब कर्मबंध सहित रहेगा, मुक्त नहीं कहा जा सकेगा । परमात्मा निर्विचार है, हमम ससार प्रपंच करने का विचार नहीं हो सकता है ।

(१०) पारसी या जराथोरती धर्म—इस मत का मान्यता विदुषों के कम मत से मिलती है जो मात्र एक ईश्वर को ही अनादि अकृत्रिम मानते हैं व हमसे ही सृष्टि का उत्पत्ति मानते हैं । यह मत जड़ और चेतन दोनों को मानता है, पवनकी उत्पत्ति एक ईश्वर से मानता है । जीव पाप पुण्य का फल मरण पाछे भोगता है । अतः में इसी ईश्वर में मग्न जाता है । यह लोग पृथ्वा, जल, अग्नि, वायु को इमति पवित्र मानते हैं कि इनसे सर्व वस्तु बनती हैं । मात्मा मदिरापान से यह विरुद्ध है । वनस्पति में जाय मानते हैं, वृथा को भासताने का मनाइ करते हैं । रजस्वता स्त्री ३ से ९ दिन तक यथा समथ अलग बैठती है । प्रसूत गाली स्त्री ४० दिन तक अलग रहती है । जिससे सब बुद्ध हुआ व जो नयमे बडा उसे शैदान्मौद कहते हैं । जनेऊ के स्थान म यह कर्म में हो बाधते हैं । देखो पुस्तक—“The Parsi religion as contained in Zand Avesta by John Wilson D D (1843 Bombay’

‘The one holy and glorious God, the lord

creation of both worlds has no form, no equal, creation & support of all things is from that lord — — Lofty sky, earth, moon & stars have all been created by him and are subject to him — that lord was the first of all & there was nothing before him & he is always and will always remain 'The names of God are specially three—Dadar (giver or creator), Ahurmazd (wise Lord), Aso (holy)'

(Ch II, P 106—7 in Manja Zati Zartusht by Edal Dara)

भाषा—एक पवित्र और पेरन्यमान प्रभु है। यह दोनों दुनियाँ की सृष्टि का स्वामी है। उसकी सूरत नशा है, न उसके समान कोई है। सर्व पदार्थों की उत्पत्ति और रक्षा उसी प्रभु से है। वह आकाश, पृथ्वी, चंद्र व सितारे सब उससे पैदा हुए हैं व उसके आधीन हैं। वह ईश्वर सदा पहले था। उसके पहिले कुछ नहीं था। वह हमेशा है और हमेशा रहेगा।

ईश्वर के विरोध नाम तीन हैं—दादर (देने वाला या पैदा करने वाला), अहुरमज्द (बुद्धिमान प्रभु), असो (पवित्र)।

They worship fire, sun, moon, earth : winds & water (P 191)

"Whatever God has created in the world we worship to it" (P 212) ।

भाषार्थ—ये लोग अग्नि, सूर्य, चंद्र, पृथ्वी, वायु और जल को पूजते हैं। जो कुछ ईश्वर ने दुनिया में पैदा किया है उसे हम पूजते हैं।

Woman who bears a child must observe restriction 40 days She must remain in seclusion (P 213)

भावार्थ—बच्चे वाली स्त्री को चालीस दिन रुकावट रखनी व पनात न रदना चाहिये ।

'He will not be acceptable to God who shall thus kill any animal Angel Asandarmad says "O holy man, such is the command of God that the face of the earth be kept clean from blood, filth & Carrion '

Angel asandarmad says about vegetable "It is not right to destroy it uselessly or to remove it without a purpose"

Let every one bind his waist with sacred girdle, since the kushu is the sign of pure faith (See Zart usht-namah p 495)

भावार्थ—जो इस तरह किसी पशु को मारेगा उसको ईश्वर नहीं स्नाकार करेगा । जरिस्ता अस्फन्दार्मेद ने कहा है कि "वे पवित्र मनुष्य । ईश्वर की यह आज्ञा है कि पृथ्वी का मुल रुधिर, मेल तथा मुदा मांस से पवित्र रक्खा जावे । अमरदाद जरिस्ता बनस्पतिया क लिए कहता है कि "इस धृया नष्ट कराना व वृया हटाना ठाक नहीं है । हर एक को अपनी पसर में पवित्र कमरबन्द पहाना चाहिये । यह कुरानी पवित्र धर्म का बिन्दु है" ।

'According to thy state of mind so will thou

suffer or enjoy —From good, thou wilt find a good result, and none ever reaped honour from evil action" (P 517)

भावार्थ—अपन मत की स्थिति के अनुसार तुम दुःख या सुख भोगोगे । भलाई से अच्छा फल पाओगे । किसी ने दुरे काम में सम्मान नहीं पाया है ।

“जो कोई जानवरों को मारने की भलायत करता है उसको होरमजद गुरा ममकले हैं” (अवस्ता गाथा ३२-१० ट्रेक्ट न० १२ पारसी बेजीटेरियन टेम्परेन्स सौसायटी न० २४-३८ पारसी बाजार स्ट्रीट फोर्ट बम्बई)

“दाना और अन्नज मनुष्यों की खुराक है, घास चारा जानवरों के लिये खुराक है” (अवस्ता बन्दीवाद ५ २० ऊपर का ट्रेक्ट)

नोट—जैनधर्म में जगत अनादि अनन्त अकृत्रिम माना है । जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकारा, यह छ मूल द्रव्य अनादि अनन्त हैं । परमात्मा निर्विकार ज्ञानानन्दमय है, वह न पैदा करता है और न नष्ट करता है । अमूर्तीक परमात्मा में मूर्तीक जगत बिना समान उपादान कारण के नहीं हो सकता, यही बड़ा भारी अन्तर है ।

ईसाई व मुसलमान मत कर्तावाद में गर्भित हैं । इस तरह दुनिया के प्रचलित मतों से जैन दर्शन की भिन्नता है जो आगे के कथन में पाठकों को भली प्रकार प्रगट हो जायेगा । यहाँ तो सचेप में बताई गई है ।

११. मोक्ष का स्वरूप व महत्व

“बन्ध हेत्व माननिर्जराभ्या वृत्तन कर्म विप्र मोक्षोमोक्ष ”

(सत्यार्थसूत्र अध्याय १०।७)

भाषार्थ—कर्म-बन्ध व मय कारणा क भिड़ जाने पर तथा पूर्व में पाये हुए पाप पुण्य मई कर्मों की निर्जरा या त्याग हो जाने पर सर्व प्रकार व कर्मों में जो छूट जाना है, वही मोक्ष है।

मोक्ष प्राप्त आत्मायें भिन्न कहलाती हैं। उनमें आत्मा के अनन्त गुण सब प्रकट हो जाने हैं। उनका नियाम लोक के अग्रभाग में रहता है। वे अपने अन्तिम शरीर के आकार प्रमाण निश्चल आत्मस्थ रहते हैं ॥

॥ भाट कर्म ससारी जीवों के थे, उनके चल जाने पर नाथ लहने भाट गुण प्रकट हो जाते हैं —

ज्ञानावरण हानात् केवलज्ञान शार्दिन ।

दर्शनावरणच्छदा दुष्टलक्षण वृत्तान ॥ १० ॥

वेदनीय समुच्छेदाद व्यावाच्य भाषिता ।

मोदनीय समुच्छेदात्सम्यक्त्व मफलभिता ॥ १८ ॥

भामकर्म समुच्छेदात्परम सौम्यभाषिता ।

भायु कम समुच्छेदादवगाहन शार्दिनः ॥ १९ ॥

गोत्र कम समुच्छेदात्सदाभौतय लाववा ।

भन्तराय समुच्छेदादनन्तवीय भाषिता ॥ ४० ॥

दग्ध भोजे यथात्यन्त प्रादुर्भवति नाकुर ।

कम धीव तथा दग्धे न रोहति भवाकुर ॥ ७ ॥

मुक्तावस्था में आत्माएँ निरंतर परम आनंद में मग्न रहती हैं। उनके कोई चिन्ता, रागादिभाव नहीं होते हैं। एक योगी जैम मसार के प्रपञ्च में हटा हुआ एकांत में स्वरूप की समाधि में गुप्त रह कर स्वामीानन्द का लाभ करता है उसी तरह वे निरंतर म्यांजा में लीन रहते हुए आत्माानन्द का लाभ करते हैं।

वे परम पवित्र, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा परम निराहुत हैं। वे किसी को न बनाते, न विगाड़ते, न किसी को सुखी व दुखी करते हैं। कहा है—

अद्वैतविय कम्मा विपत्ता मोक्षोमूढा विरपणा पिधा ।

अद्वैत गुण विदकिधा लोचग्गाणिवासिणो सिद्धा ॥

(गोष्मटसार जीवकाण्ड)

भावार्थ—मिद्ध आत्माएँ आठ कर्म रहित, परमशीतल,

भाकार भावनापुमावो व चैतस्व प्रसज्यत ।

अनन्तर परित्यक्त गरीशकार धारिण ॥ १५ ॥

(सभाषमार—मोगतन्त्र)

भावार्थ—ज्ञानावरणाव कर्मों के नाश से भवन्त ज्ञान, दर्शना वगीय के नाश से अनन्त दर्शन, वेदवीय के नाश से वाचा रहित ज्ञान, मोक्षवीय के नाश से अक्षय सम्पत्ति या अक्षयान, वरम कर्म के नाश से परम सुरमता, आयुर्कर्म के नाश से अवगाहन गुण, गोत्र कर्म के नाश से इष्टक मारीपने से रहितपना और अन्तराय के नाश से अनन्तवास, यह सब गुण मिद्धा के जगद हो जाते हैं। जैसे जला हुआ बोझ फिर नहीं उगता है वैसे कर्म वध के कारणों के मिट जाने पर मिद्ध जीव के फिर उत्सार नहीं होता है। शरीर के टूट जाने पर वनका भाकार बना रहता है, वह छोड़ दूजे शरीर के प्रमाण होता है।

निर्मल, अविनाशी, आठ गुण महित, वृत्तवृत्त तथा लोक के अग्रभाग में रहने वाले होते हैं ।

१२. मोक्ष का मार्ग रत्नत्रय है

ऊपर कहे हुए मोक्ष के पात्रों का उपाय सम्यग्दर्शन (मर्यादा विश्वास), सम्यग्ज्ञान (सत्त्वाज्ञान) और सम्यक् चारित्र्य (मर्यादा आचरण) इन तीनों की एकता होने है छ । इसी को रत्नत्रय धर्म कहते हैं । बिना रुचि के ज्ञान पक्का नहीं होता । बिना पक्के ज्ञान के पक्का आचरण नहीं होता । पर्यंत के शिखर पर जाने के मार्ग का अस्तान व ज्ञान होना पर जब उस पर चढ़ेंगे तबही शिखर पर पहुँच सकेंगे । तीनों के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता है तब मोक्ष की निधि भी नहीं हो सकती है ।

इस रत्नत्रय के दो भेद हैं—(१) निश्चय रत्नत्रय (२) व्यवहार रत्नत्रय । अपने ही आत्मा के असली स्वभाव का अज्ञान, ज्ञान तथा वसम लीनता निश्चय रत्नत्रय है तथा जीवार्थ सात तत्त्वों का व सत्ये देव, गुरु, धर्म का अज्ञान व ज्ञान तथा साधु या आर्यक गृहस्थ का हिंसादि पापों से छूटना व्यवहार रत्नत्रय है । मोक्ष के लिए साक्षात् साधन निश्चय रत्नत्रय है जब कि उसका निमित्त या सहायक साधन व्यवहार रत्नत्रय है † ।

ॐ सम्यग्ज्ञान ज्ञान चारित्र्याणि मोक्ष मार्ग ॥ १ ॥

(तत्त्वाध्याय १ म०)

† आचार्यादीं ज्ञान जीवार्थी वसम व विज्ञेय ।

१ छम्बोवार्थ रत्ना अर्थात् चारण तु व्यवहारो ॥ २९४ ॥

१३. निश्चयनय व्यवहारनय †

जब तक हम अपने आत्मा को न पहिचानेंगे तब तक हम आत्मा का ज्ञान व विश्वास नहीं कर सकते । आत्मा का ज्ञान निश्चयनय और व्यवहारनय दोनों से करना चाहिए । जो पदार्थ का असली स्वभाव वर्णन करे वह निश्चयनय है । जो पदार्थ को किसी कारण में भेद रूप कहे या उसकी अशुद्ध अवस्था का वर्णन करे वह व्यवहारनय है । एक रुई का बना हुआ रुमाल मैला हो गया है । जो निश्चयनय से यह जानता है कि रुमाल रुई का बना स्वभाव से सफेद है और व्यवहारनय से जानता है कि यह मैल खदने से मैला है

भादास्तु मञ्जुषार्णे भादा मे दमणे परिपेय ।

भादा पञ्चवक्त्राणे भादा मे सखरे जोगे ॥ २९५ ॥

(समवसार)

भावार्थ—जीवादि का अधुधान, आचारांगादि का ज्ञान व पृथ्वी आदि छः कार्यों को रखा, व्यवहार रत्नत्रय है । आत्मा ही का ज्ञान, अधुधान, चारित्र्य व वही स्वभाव रूप है, सवर रूप है, योग रूप है, ऐसा स्वानुभव निश्चय रत्नत्रय है ।

† निश्चयमिह भूतार्थः व्यवहार वर्णयन्त्यभूताथम् ।

भूतार्थं बोध विमुक्तं प्राप्य सर्वोर्जस्य ससार ॥

व्यवहार निश्चयीयं प्रतुष्य सत्त्वेन भवति मप्यस्य ।

प्राप्नोति देशनाया सपुष्पक मविकल सिष्य ॥

(पुरुषार्थ सिद्धयुपाय ८)

भावार्थ—निश्चयनय सत्य असली पदार्थ को व व्यवहारनय

वही रुमाल को धोकर मार कर सकता है । उमा तरह से जो निश्चयनय से अपना आत्मा क स्वभाव को परमात्मा के समान गुण भानानन्दमय अमूर्तीक चरित्र जानता है और व्यवहारनय से पाप पुण्यमय कर्मा क बन्धन के कारण "मेरा आत्मा अशुद्ध है" ऐसा जानता है वही आत्मा की शुद्धि का प्रयत्न कर सकता है । इस लिए यह दोनों नय या अपेक्षा जरूरी हैं । ताकि मैं एक ब्राह्मण का पुत्र राजा का पार्ट खेनने हुए व्यवहारनय से अपने को राजा तथा निश्चयनय से अपने को ब्राह्मण जान रहा है, तब ही वह पार्ट होने क पाछे राजपना छोड़ असली ब्राह्मण क समान आचरण करने लगता है ।

१४. प्रमाण, नय और स्याद्वाद

जिस ज्ञान से पदार्थ को पूर्ण जान वह प्रमाण है व जिस ज्ञान से हम के कुछ अंश को जाने वह नय है ।

प्रमाण सम्यग्ज्ञान अथानुसंग्य, विपर्यय (छन्दे) व अतन्मयसाय (बेपरवाही) रहित ज्ञान को कहने हैं, हमके निम्न पांच भेद हैं —

(१) मतिज्ञान — जो स्पर्शन रसन, घ्राण, चक्षु और

भभूताय स्वरूप को बनाती है—अर्थात् जो दूसरे निमित्तों से द्रव्य का विभाव परलणम हुआ है, उसको व्यवहारनय बनाती है । ये ससारा प्राणी प्रायः सत्त्व भमली वस्तु क स्वरूप को नहीं जानते हैं । जो कोई व्यवहार निश्चय दोनों को ठीक ठीक समझ कर पीतरागी हो जाता है वही निश्चय विनयागी क पूर्ण फल को पाता है ।

कर्ण तथा मन से सीधा पदार्थ को जाने । जैसे कान से शब्द सुनना, रसना से रोटी को चखना आदि ।

(२) श्रुतज्ञान—मतिज्ञान पूर्वक जो जाना है उसक द्वारा अन्य पदार्थ को जानना श्रुतज्ञान है । जैसे रोटी शब्द से आटे की बनी हुई रोटी का ज्ञान ।

ये दोनों ज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं क्योंकि इंद्रियों का तथा मन की सहायता ■ होते हैं ।

(३) अवधिज्ञान—जिससे आत्मा स्वयं द्रव्य क्षेत्रादि की मयादा से रूपी पदार्थों और समस्त जीवों को, भूत और भविष्य के व दूर क्षेत्र को जान लेता है ।

(४) मनःपर्ययज्ञान—जिससे आत्मा स्वयं दूसरे के मन में तिष्ठे, किन्हा भी सूक्ष्म रूपी पदार्थों को जान लेता है ।

(५) केवलज्ञान—जिससे सर्व पदार्थों की सर्व पर्याया को एक समय में बिना प्रम के आत्मा जानता है ।

ये विद्वय तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं, अर्थात् आत्मा बिना पर का सहायता के जानता है । ❀

नयों के बहुत भेद हैं । लोक में व्यवहार चलाने के लिये मात्र नय प्रसिद्ध हैं—

(१) नैगमनय—जो भूत भविष्यत का वात को सक-

हय करके धर्तमान में कहे। जैसे कहना कि आज श्री महावीर स्वामी मोक्ष गये।

(२) समग्रहनय—जो एक शब्द में सम जाति के बहुत स पदार्थों का ज्ञान कराव। जैसे जीव चेतना मय है, इस में सर्व जीवों का कथन हो गया।

(३) व्यवहारनय—समग्रहनय स जो कहा उसके भेदा का कहना जिससे हो। जैसे जीव संमारी और मुक्त दो तरह क हैं।

(४) शब्दभूतनय—जो वचमान अवस्था को कहे। जैसे राजा को राजा कहना।

(५) शब्दनय—जो व्याकरण की रीति से शब्द को कहे। जैसे पुस्तिका द्वारा शब्द को रीति के अर्थ से कहना।

(६) समभिरुद्धनय—जो शब्द का अर्थ न पटत हुए भी किसी पदार्थ के लिये ही किसी शब्द को लोक मयादा के अनुमार प्रयोग करे। जैसे गाय को गौ कहना।

(७) एवभूतनय—जिस पदार्थ के लिये जितने शब्द हों उनमें से जब वह जिस शब्द के अर्थ के अनुमार किया करता हो तब वह ही कहना। जैसे दुकली स्त्री को शब्द अया कहना। †

स्याद्वाद—स्यात् अर्थात् किसी अपेक्षा से बाद अर्थात् कहना सो स्याद्वाद है। एक पदार्थमें बहुतसे विरोधा सरीखे

स्वभाव भी होते हैं। इन सबका वर्णन एक समय में हो नहीं सकता। एक २ ही स्वभावका होसकता है। तब जिस स्वभाव को कहना हो उमम स्यात् यागे कथंचित् या किसी अपेक्षा से (from some point of view) यह ऐसा है कहना सो स्याद्वाद है। जैसे एकपुरुष एक ही समय में पिता, पुत्र, भाई, भानजा, मामा आदि अनेक रूप है, तब कहना कि स्यात् पिता है अर्थात् किसी अपेक्षा से (अपने पुत्र की दृष्टि से पिता है, स्यात्पुत्रः, किसी अपेक्षा से (अपने पिता की दृष्टि से) पुत्र है। स्यात् भ्राता, अपने भाई की अपेक्षा भाई है, इत्यादि।

इसी तरह यह आत्मा अस्ति स्वभाव, नास्ति स्वभाव, नित्य स्वभाव, अनित्य स्वभाव, एक स्वभाव, अनेक स्वभाव आदि विरोधा सरीखे स्वभावा का धारक है। इनमें से हर एक दो स्वभावों को ममकाने के लिये इस तरह कहेंगे—

स्यात् अस्ति स्वभाव —अर्थात् किसी अपेक्षा से (अपने आत्मामई द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव या स्वरूप की दृष्टि से) आत्मा में अपनी सत्ता या मौजूदगी है।

स्यात् नास्ति स्वभाव.—अर्थात् किसी अपेक्षा से (पर द्रव्यों के द्रव्य क्षेत्रादि की दृष्टि से) आत्मा में पर द्रव्या की असत्ता यानी शून्य मौजूदगी है।

स्यात् नित्य स्वभाव.—अर्थात् किसी अपेक्षा से (अपने द्रव्यपक्ष और गुणों के सदापने रहने के कारण) आत्मा नित्य या अविनाशी स्वभाव है।

स्यात् अनित्य स्वभाव —अर्थात् अपनी अवस्थाओं के बदलने को अपेक्षा आत्मा अनित्य या क्षणिक स्वभाव है ।

स्यात् एक स्वभाव—अर्थात् आत्मा एक अवस्था है, इसमें एक स्वभाव है ।

स्यात् अनेक स्वभाव —अर्थात् आत्मा अनन्तगुणों को सर्वादा रक्षता है, इसमें अनेक स्वभाव है ।

इन्हीं दो स्वभावों को सममान के लिये सातभाग कहे जाते हैं, जो शिष्य के मान प्रदर्शों पर उतार हैं । जैसा —

(१) क्या आत्मा नित्य है ? उत्तर—हाँ । आत्मा मग्यना रहता है इसमें नित्य है ।

(२) क्या आत्मा अनित्य है ? उत्तर—हाँ । आत्मा अवस्थाओं को बदलना रहता है, इससे अनित्य भी है ।

(३) क्या आत्मा नित्य अनित्य दोनों है ? उत्तर—हाँ । आत्मा एक समय में नित्य अनित्य दोनों स्वभावों को रक्षता है । जैसे—सोना की अगूठी तोड़ कर बाली बनाई जाये, तब कर्णोक्ति सोना बही है, इससे वह नित्य है परन्तु अगूठी पदल कर बाली बन गई, इससे अवस्था क्षणिक है । यहाँ दानों भाते एक समय में ही मौजूद हैं ।

(४) क्या हम दोनों को एक माय नहीं कह सकते ? उत्तर—हाँ, शब्दों में शक्ति न होने से दोनों एक साथ नहीं कह सकते, इसी से आत्मा अवच्छेद्य स्वरूप है ।

(५) क्या अवस्तव्य होने हुए नित्य है ?—उत्तर हा, जिस समय अवस्तव्य है उसी समय नित्य भी है ।

(६) क्या अवस्तव्य होने हुए अनित्य है ? उत्तर—हां, जिस समय अवस्तव्य है वही समय अनित्य भी है ।

(७) क्या जिस समय अवस्तव्य है उसी समय नित्य अनित्य दोनों है ? उत्तर—हां, जिस समय अवस्तव्य है उसी समय नित्य अनित्य भी है ।

इसी को इन शब्दों में कहेंगे—

(१) स्यात् आत्मा नित्य स्वभावात् (२) स्यात् अनित्य स्वभावात् (३) स्यात् नित्यानित्य स्वभावात् (४) स्यात् अवस्तव्य स्वभावात् (५) स्यात् नित्य अवस्तव्य स्वभावात् (६) स्यात् अनित्य अवस्तव्य स्वभावात् (७) स्यात् नित्यानित्य अवस्तव्य स्वभावात् । ❀

* वाक्येष्वनेकान्तघोती गम्यप्रतिविशेषक ।

स्यान्निपातोऽर्थं धीगित्याद्य वेचलिनामपि ॥ १०३ ॥

स्वाशाद' सर्वथैकान्तस्यागार्हिकवृत्तचिद्विधि ।

सप्त, भग नयापक्षो ह्यभादेय विशेषक ॥ १०४ ॥

(आप्तमीमांसा)

भावार्थ—स्यात् एक अव्यय है जिसके अर्थ 'किन्नी भवता से' है । यह स्यात् शब्द वाक्यों में जोड़ने से यह दिखलाता है कि हम पदार्थ में अनेक धर्म या स्वभाव हैं तथा वह वाक्य से जिस स्वभाव को कहता है उसकी मुख्यता करता है और स्वभाव को गौण करता है ऐसा आप्त—कवली—महाराजों का मत है । यह स्वाशाद विद्वान्त सर्वथा एकान्त का स्थापन करने वाला है अर्थात् वस्तु अनेक धर्म स्वभाव है,

जब तक श्याद्वाद से पन्थ को न समझेंगे, तब तक हम पदार्थ को ठीक नहीं समझ सकते। यदि हम ऐसा कहें कि आत्मा विनशुल नित्य ही है, तब वह जैसा का तैसा रहेगा, रागद्वेषी न होगा। न कर्मों को चाहेगा, न भस्मार न भ्रमण करेगा, न मुक्त होगा और यदि कह कि आत्मा विनशुल अनित्य ही है तब क्षणमात्र में नष्ट होने से उसका पाप पुण्य भी नष्ट होगा, वह अपने पार्य व फल को नहीं पा सकेगा, फिर यह ज्ञान भी न रहेगा कि मैं बालक था—सो ही मैं अजान हूँ। इसलिये जब ऐसा माना जायगा कि आत्मा द्रव्य व गुणों की दृष्टि से नित्य है परन्तु अवस्था बदलने की अपेक्षा अनित्य है, तब कोई विरोध नहीं आ सकता है।

तब ही यह कहना होगा, कि यद्यपि मैं बालकपन को छोड़कर युवा हो गया हूँ, तथापि मैं हूँ वही, जो बालक था। ऐसा मानन से ही यह आत्मा रागद्वेषी होता हुआ जब रागद्वेष अवस्था को छोड़ता है तब योगरही होकर, आप स्वयं अशुद्ध भावों से शुद्धभाव में बदल कर मुक्त हो जाता है। नित्यानिरव मानने से ही यह कह सकते हैं कि श्रीमहावीर स्वामी का आत्मा जो गृहस्थ अवस्था में राजी नाथवशा था, सो अब सिद्ध पर

ऐसा न मानकर एक रूप ही है, इस गिण्याभाव को हराने वाला है। इसी से किसी अवस्था से ऐसा है, ऐसी जांच करने वाला है तथा मुख्य गौण की अवस्था से सात भग से कहने वाला है। जिस बात को उस समय जरूरी समझता है उसको ग्रहण करता है, दूसरी बातों को उस समय छोड़ देता है।

आत्मा हो गया है। इसी तरह यदि पदार्थ में अपना भावपना तथा दूसरों का अभावपना न हो तो हम उस पदार्थ को दूसरों से भिन्न समझ ही नहीं सकते। हम जानते हैं कि हम अमरचंद हैं किन्तु सुशालचंद, दीनानाथ, कृष्णचंद्र, लक्ष्मणलाल आदि नहीं हैं—अर्थात् हमारे में अमरचंदपने का भाव है, किन्तु सुशालचंद आदि का अभाव है इसमें हम भाव अभाव या अस्ति नास्ति स्वरूप एक ही काल में हैं। “हम आत्मा हैं” ऐसा तब ही कह सकते हैं, जब यह ज्ञान हो कि हमारे आत्मा में हमारी आत्मापने का अस्तित्व है, किन्तु अपनी आत्मा के सिवाय अन्य सर्व आत्माओं का व अनात्माओं का हम में नास्तित्व है। पदार्थ का सच्चा ज्ञान कराने के लिये यह सिद्धान्त दर्पण के समान है। जैसा श्री राजवार्तिक में कहा है—

“स्वपरादानापोदन व्यवस्था पाचाल्लु वस्तुनो वस्तुत्वम्”

भावार्थ—वस्तु का वस्तुपना यही है जो अपनेपने को प्रदण किये हुए है और तब ही परपने से रहित है।

१५. स्याद्वाद पर अजैन विद्वानों का मत

कुछ अजैन शास्त्रों में स्याद्वाद का ठीक स्वरूप न बता कर और उसे रुशयवाद व विपरातवाद कह कर खराबन किया गया है, परन्तु जिन आधुनिक अजैन विद्वानों ने इस पर मनन किया है उन्होंने इसकी बहुत प्रशंसा की है। जैस डॉ० हर्मनजै-कोधी, स्व० शतीशचन्द्र विद्याभूषण, प्रो० सर आनन्दशंकर भुव प्रिन्सिपल हिन्दू मिर्चविद्यालय काशी, आनन्देबन डा० गङ्गा

नाथभा महामहोपाध्याय वाइस चैन्सलर अलाहाबाद यूनिवर्सिटी,
महात्मा मोहनदास करमचंद गांधी, पूना व प्रसिद्ध मर रामकृष्ण
गोपाल, डाक्टर भण्डारकर एम० ए० आदि । डॉ० भण्डारकर
एसा कहते हैं—

There are two ways of looking at things—
one called *DRAVYARTHIKADAYI* and the other *PARAYARTHIKADAYI*. The production
of a jar is the production of something not pre-
viously existing, if we take the latter point of
view, i. e. as *Paraya* or modification while it is
not the production of something not previously
existing, when we look at it from the former
point of view, i. e. as a *Dravya* or substance.

So when a soul becomes the *mukhi* his merits
or demerits, a god, a man or a denizen of hell
from the first point of view, the being is the
same, but from the second he is not second, i. e.
different in each case. So that you can confirm
or deny something of a thing at one and the
same time.

This leads to the celebrated *Sapta Bhangi
Naya* or the seven modes of assertion.

You can confirm existence of a thing from
one point of view (*Syad Asti*), deny it from
another (*Syad Nasti*), and affirm both, exister-

different times (byad Astinasti). If you should think of affirming both existence and non-existence at the same time from the same point of view, you must say that thing can not be spoken of (avad Avaktavya). It is not meant by the modes as that there is no certainty or that we have to deal with probabilities only, as some scholars have thought. All that is implied is that every assertion which is true is true only under certain conditions of space, time etc.

भाषार्थ—पदार्थों के विचार करने के दो मार्ग हैं—एक
 इत्यादिजन्य दूसरा अपाधाधिक्यजन्य। जैसे मिट्टी का पदार्थ बना,
 जब आदिम न था तो बना, ऐसा कहेंगे तो यह हम अवस्था
 का अपधा कहेंगे तथा जब हम हा इत्यदि की दृष्टि से विचारेंगे
 तो कहेंगे कि यह पहले न था, या नहीं है, किन्तु बही मिट्टी
 है। इसी तरह जब कोई जीव अपना पाप पुण्य के कारण दुःख,
 मनुष्य या नारकी होता है, वह इत्यदि की दृष्टि से बही है,
 किन्तु पर्याय का दृष्टि से भिन्न भिन्न ही है। इस तरह तुम
 एक ही समय में किसी वस्तु में विधिनिषेध मिश्र का
 साधन हो। इस को समझाने के लिए सप्तमद्वीनय है या करने
 के सात मार्ग हैं। तुम किसी अपेक्षा में किसी वस्तु की मत्ता
 कह सकते हो, यह स्यादस्ति है, दूसरी अपेक्षा में वस्तु का
 निरपेक्ष कह सकते हैं—यामास्ति है, विधि और ।

क्रम से कह सकते हों, यह स्यादन्तिनास्ति है, यदि दोनों अस्ति नास्ति को एक साथ एक समय में कहा जाही तो नहीं कह सकते यह स्यादवक्तव्य है । इन भद्दों के कहने का मतलब यह नहीं है कि इन में निश्चयपना नहीं है या हम मात्र संभव रूप कल्पनाएँ करते हैं । जैसा कुछ विद्वानों ने समझा है, हम मथ से यह भाव है कि जो कुछ कहा जाता है वह किसी द्रव्य, क्षेत्र, कालादि की अपेक्षा से सत्य है । (जैनधर्मनी माहिती हाराचन्द्र तमच द कृत सन् १९११ में छपी पत्र ५४)

डाक्टर जैकोबी कहते हैं—“इस स्याद्वाद से मर्याद सत्य विचारों का द्वार खुल सकता है” (देखो जैन दर्शन गुजराती जैन पत्र भावनगर स० १९७० पत्र १३३)

प्रोफेसर फणिभूषण अधिमारी एम० ए० हिन्दू विश्व विद्यालय बनारस अपने व्याख्याता २०-२६ अप्रैल सन् २५ ई० में कहते हैं—

It is the intellectual attitude of impartiality, without which no scientific or philosophical researches can be successful, is what Syadvad stands for

भावार्थ—यह निष्पक्ष बुद्धिवाद है जिससे बिना कोई वैज्ञानिक या सैद्धान्तिक एतों पूर्ण नहीं हो सकते हैं, इसीलिए स्याद्वाद है ।

Even learned Shankaracharya is not free from the charge of injustice that he has done to

the doctrine It emphasises the fact that no single view of the universe or of any part of it would be complete by itself

भावार्थ—विद्वान् शङ्कराचार्य भी उस अन्याय क दोष से मुक्त नहीं हैं जो उन्होंने इस सिद्धान्त के साथ किया है। यह स्याद्वाद इस बात पर जोर देता है कि विश्व की या इस के किसी भाग की एक ही दृष्टि अपने से पूर्ण नहीं है।

There will always remain the possibilities of viewing it from other stand points

भावार्थ—उम पदार्थ में दूसरी अपेक्षाओं से देखने की सम्भावनाएँ सदा रहेंगी।

१६. सम्यग्दर्शन का स्वरूप

सम्यग्दर्शन इस आत्मा का एक ऐसा गुण है जिसके प्रकट होने पर आत्मा के स्वरूप का ज्ञान होकर आत्मानन्द का लाभ होता है। जहाँ आत्मा के स्वरूप के स्वाद की रुचि हो जाती है वही निश्चय-सम्यग्दर्शन है। इस की प्राप्ति के लिये मोक्षमार्ग में प्रयोजनीय जावादि सात तत्त्वों का भ्रद्धान तथा इस भ्रद्धान के लिये सच्चे देव, गुरु, धर्म या शास्त्र का भ्रद्धान व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

निश्चय सम्यग्दर्शन के बाधक अनन्तानुसंधा (जो बहुत गाढ़े चिपके रहने वाले हैं) क्रोध, मान, माया लोभ तथा मिथ्या-दर्शन कर्म हैं। जब इन का असर

तब हा निश्चय सम्यग्दर्शन हो जाना है । इस कार्य के लिए तत्त्वा का विचार उपयोग है । मुख्यता में आत्मतत्त्व का विचार करना योग्य है । X

१७ जैनों के लिये पूजनोपदेव, शास्त्र, गुरु

तत्त्वज्ञानज्ञान के लिये यह आवश्यक है कि हमका उम आर्त्तात्मा का ज्ञान हो जो तत्त्वज्ञान की पूर्ण मूर्ति हो, ऐसी

X धर्म सम्यक्त्व मात्रात्मा गुरु स्थानुभवोऽप्यथा ।

त एव मुख्यमप्यक्ष मक्षय क्षायिक चपत् ॥४३२॥

(पञ्चाध्यायी द्वि०)

भाषा—सम्यक्, सत्तमद् आत्मा ही धर्म है मयवा वह शुद्ध आत्मा का अनुभव है । हमका कम आत्मीक, भविनासी सुख का ज्ञान है ।

उत्पचणव १वहाण भाषाण विजयरो बहुरक्षण ।

भाषाण मी गमनय मदण होइ समसत्त ॥४३०॥

(गोमटसार जीवशब्द)

भाषा—छ प्रत्य, पंच अस्तित्व व नव पदार्थों का जैसा ज्ञान है भगवान ने उपदेश दिया है उन्ही प्रमाण भाषा से मयवा प्रमाण नव के द्वारा समसत्त कर लक्षण करना सा सम्यग्दर्शन है । इन सब का स्वरूप भोग कहा जायगा ।

ध्यान परमार्थानामात्मसमत्तपोऽन्याम् ।

विमुक्तपोऽन्याम् सम्यग्दर्शनसमसत्तम् ॥४३॥

(स्तनकरवद भाषवाचन)

भाषा—यथार्थ नव, शास्त्र गुरु का तीन मुद्रता और भाग मद छोड़कर व जोड़ अह मर्दिन प्रदान करना सम्यग्दर्शन है ।

ही आत्मा को दब कहते हैं। हम समासी प्राणियाँ भी अज्ञान और क्रोध, माँ, माया, लोभ ये दोष लगे हैं। जिनके पास यह दोष नहीं हैं वे ही सर्वज्ञ सर्वदर्शी और चोतराग परम आन्त दब हैं। उनका जो भेद है, एक सकल या शरीर सहित परमात्मा, दूसरे निकल या शरीर रहित परमात्मा। सकल परमात्मा को अर कहते हैं। वे जीव-मुक्त परमात्मा आयु पर्यन्त धर्मोपदेश करते हैं। जब शरीर रहित हो जाते हैं तब वे शुद्ध आत्मा मिद्ध परमात्मा कहलाते हैं। ॥

अरहन्त शरीर सहित होते हैं तब ही उनसे धर्म का उप-
देश मिल सकता है। शरीर रहित परमात्मा बचन रूप उपदेश
नहीं दे सकता है।

● गृहं बहु धाह कर्मो वसण सुदण्णं वीरियमइवो ।

सुदइहाथो भण्णं सुदो अरिहो विवि निज्जो ॥

(द्रव्यसमग्र)

—भाषा—जिन्होंने जन्मावरणाय, दुर्लभावर्णाय, मोहनीय और भस्तराय, इन चार धानियाँ कर्मा का नाम कर दिया है और जो अनन्त दुःख अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, अनन्तचंचारी हैं, परम सुदूर गार म विराजित हैं, वीतराग आत्मा हैं, सो अरहन्त हैं जन्माविचारना आदिम ।

गृहं कर्म दहो लोवाल्लोयस्स जाणमा दद्धा ।

पुरुमावारो भण्णं सिद्धो क्षण्ह लोयसिहरथो ॥

(द्रव्यसमग्र)

भाषा—जिन्होंने आठ कर्मों का और शरीर को नष्ट कर दिया है, सो लोक अलोक के जाता दृष्टा है, पुरुषाकार आत्मा हैं लोक के तत्त्वर मो ही मिद्ध है ।

जो परमात्मा होने के लिये अज्ञान और कषायों के भेटने का वचन करते हों और रात दिन इसी आत्मोन्नति में लीन हों, अपने पाम वस्त्र पैसा बर्तन न रखते हों, नग्न हों, मात्र जीव रक्षा के लिये मोर पत्र की पीट्री और ग्रीच के लिये जल लेने को काठ का फमड़ल रखते हों, वे ही साधु गुरु हैं। इनमें जो अन्य साधुओं को मार्ग पर चलाते हैं, उन साधुओं का आचार्य कहते हैं। जो साधु शास्त्र ज्ञान कराते हैं, उनको उपाध्याय कहते हैं। शेष साधु मात्र साधु कहलाते हैं।†

ऐस ही साधु की सङ्गति में सच्चे धर्म का उपदेश मिल सकता है। इन साधुओं न अरहन्त के उपदेश के अनुसार जो शास्त्र रचे हों, जिनमें आत्मोन्नति का ही उपदेश हो, वे ही सच्चे शास्त्र हैं। जो उपदेश तीर्थंकरा ने दिया, उसको सुनकर उनके मुख्य शिष्य गणधर ऋषि ने उसको बारह अङ्गों में मथरूप रचा। उन अङ्गों के नाम ये हैं —

(१) आचाराङ्ग—जिसमें मुनियों का आचरण है। इसके १८००० पद हैं।

† विषयाभावभातीतो निरारभोऽपरिमहः ।

ज्ञानध्यानतपोरक्षस्तपस्वी सा प्रशस्यते ॥ १०

(रत्नकरण्ड भावकाचार)

भावार्थ—जो पौषों इन्द्रियों (स्पर्शन रसनादि) का इच्छाओं से दूर है, आरभ्य व परिमह से रहित है, आत्मज्ञान व आत्मध्यान व तप में लीन है, वही तपस्वी गुरु है।

(२) सूत्रकृताङ्ग—इसमें सूत्ररूप में ज्ञान और धार्मिक रीतियों का वर्णन है। पद ३६००० हैं।

(३) स्थानाङ्ग—एक से ले अनेक भेद रूप जीव पुद्गलादि का कथन है। ४२००० पद हैं।

(४) समवायाङ्ग—इसमें द्रव्यादि की अपेक्षा एक दूसरे में सहयोग का कथन है। १६४००० पद हैं।

(५) व्याख्या प्रज्ञप्ति—इसमें ६०००० प्रश्नों के उत्तर हैं। ७२८००० पद हैं।

(६) ज्ञातृरमेकधाङ्ग—इसमें जीवादि द्रव्या का स्वभाव, रत्नप्रय व दरावर्णरूप धर्म का स्वरूप तथा सामाजिक ज्ञानी पुरुषों सम्बन्धी धर्म कथाओं का विवृण्ण है। इसमें ५१६००० पद हैं।

(७) उपासकाध्ययनाङ्ग—इसमें गृहस्थों का चरित्र है। ११७०००० पद हैं।

(८) अन्त कृदशाङ्ग—इसमें हर एक तीर्थद्वर के समय जो दश दश मुना उपसर्ग सह कर केजली हुप, उनका चरित्र है। १३२८००० पद हैं।

(९) अनुत्तरौपपादिकदशाङ्ग—इसमें हर एक तीर्थ द्वर के समय जो १० दश दश साधु उपसर्ग सह कर अनुत्तर विमाना में, जमे, उनकी कथा है। ८२४४००० पद हैं।

(१०) भजनव्याकरणाङ्ग—इसमें त्रिकान सम्बन्धी अनकानेक प्रकार क प्रश्नों का उत्तर देने की विधि और उपाय

वर्ता रूप व्याख्यान तथा लोच और ज्ञास्त्र में प्रचलित शब्दों का निर्णय है। इसमें ९३१६००० पद हैं।

(११) विपाकसूत्राङ्ग—इसमें कर्मा के बन्ध व फलादि का ब्ययन है। १८४००००० पद हैं।

(१२) दृष्टिपवादाङ्ग—इसमें ३६३ मता का निरूपण व लटन है। पूर्व आदि का ब्ययन है। इसमें १०८६०५६००५ पद हैं।

जितराणा म ३३ व्यङ्गजन, २७ स्वर व ४ अयागवाह (जिह्वा मूलाय उपमानाय, अनुराग और विसर्ग) इस तरह सर्व ६४ अक्षरों को, असंयोगी, दो संयोगी, तीन संयोगी को आदि लेकर ६४ संयोगी तक जोड़ने से कुल अक्षरों का जोड़ ५४ हुआ (६४ X २) का आपस में गुणा करने से जो आठे कमम एक वस कर न म गित्त अक्षर हा वे अक्षर १८४४६३४४०७३३०९५११६१५ हैं। एक पक्ष १६३३८३०७८८ अपुनरुक्त अक्षर हैं। इस लिये सर्व अक्षरों को भाग करने से कुल पद ११२८३४८००४ हैं। इन ही में १२ अक्षर बाटे गये हैं। शेष ८०१०८१७५ अक्षरों में अक्षराक्षर उत्तराध्ययन आदि १८ मरीर्णक हैं। यद लिप्यन में नहीं आ सकते हैं। इनका तो निशिष्ट ज्ञानी को व्युत्पत्ति ही होता है और इसा व्युत्पत्ति के अनुसार अन्तरङ्ग में पाठ भी हो जाता है। जैम परीक्षा देने वाल छात्र को उत्तर कापी लिखने समय मय पुस्तक की व्युत्पत्ति जिह्वा पर रहती है। लिपित पुस्तकों से व्युत्पत्ति अत्यधिक है अपरिमित है, किन्तु इन अज्ञा का अन्त्र लेकर लाखों शास्त्र रचे जाते हैं, अर्थात् सम्पूर्ण द्वादशाङ्ग तो

निष्ठाने में आ नहीं सकता—थोड़ा सा लेख आरा हा. निव्या जाता है। ‡

। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में जो आचाराङ्ग नाम के अंग हैं, वे मूल नहीं हैं। उन की रचना श्रियुक्त दशदिगण ने वीर मठ ९०० के अनुमान बल्लभीपुर (गुजरात) में की था। दिगम्बर सम्प्रदाय में जिनवाणों चार भेदा में मिनती है। -

(१) प्रथमानुयोग—इस में २४ तीर्थंकरों आदि ६३ राजाका पुरुषों का इतिहास है।

(२) रुक्मानुयोग—इस में गणित, ज्योतिष, लोका लोक, जीवों के भाव, कर्म व-ध क भेद आदि का कथन है।

(३) चरणानुयोग—इस में गृहस्थों के तथा मुनिक आचरण का वर्णन है।

(४) द्रव्यानुयोग—इस में छ द्रव्य, सान क-व का कथन है।

ये ही जैनियों के चार वेद हैं। (दसो आ "जैन राजदार्णव" भाग १, पृष्ठ १२१ कालम दूसरा)।

अब तक जो म ध दि० जैना में मिले हैं, देखें हम ८९ में प्रसिद्ध श्री कुद कुद महाराजकृत पचासिद्ध, प्रवचनमार,

‡ यह कथन श्यामाचार्य प० माणिक्यन्द या द्वारा प्राप्त हुआ है। इन अङ्गों आदि की और भी विस्तृत व्याख्या करने के लिये हमें "श्री महात्मा जैन राजदार्णव कोष भाग १, पृष्ठ १२१" में प्रविष्ट है। व "भक्त वादा अतमान" पृष्ठ ११९-१२१। (मिलने के लिये "सैत-य" प्रेस, बिजनौर यू० पी०)।

समयसार, नियमसार, अष्ट पादुद आदि हैं व चाके शिष्य म० ८१ में प्रसिद्ध श्री उमास्वामीकृत तत्त्वार्थसूत्र मोक्ष शास्त्र अति प्राचीन हैं । आत्ममीमांसा, रत्नकरण्ड भावकाचार आदि के कता श्री स्वामी समन्तभद्र व इन दोनों आचार्यों के मयन परम माननीय हैं ।

प्रथमानुयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ श्री जिगमेनाचार्य कृत महापुराण, द्वि० जिगमेन कृत हरिवंश पुराण, रत्निपेण आचार्य कृत पद्मपुराण आदि हैं ।

करणानुयोगके प्रसिद्ध ग्रन्थ भीषवल, अयधवल, महा धवल तथा श्री गोम्भटसार, त्रिलोकसार आदि हैं ।

चरणानुयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ श्रीमूलाचार, रत्नकरण्ड भावकाचार, चारित्रसार आदि हैं ।

द्रव्यानुयोगके प्रसिद्ध ग्रन्थ समयसार, परमात्मप्रकाश सर्वार्थसिद्धि, राजनातिक, श्लोकवातिक आदि हैं । ७

ऊपर कहे प्रमाण वेद शास्त्र गुरु का विश्वास करना

* शास्त्र का अर्थ—

भाषोपन मनुस्मृत्यम एष्टे विरोधकम् ।

गम्भीरदा कृतसार्व शास्त्र का अर्थ घटदमम् ॥ १ ॥

(रत्नकरण्ड भावकाचार)

भाषा—शास्त्र वह है जो भाषा भरतुत द्रव का कदा हो, न्येदनीय न हो, प्रत्यक्ष परीक्ष प्रमाण से साधित न हो, आरम तावका उपदेशक हो, सब दिनकारी हो न मिथ्या मार्ग का सन्दन करने वाला हो ।

और जो इन गुणोंमें रहित हों उनको नष्ट मानना, सो व्यर्थ हार सम्भारदर्शन है। इसी अद्वान के बचसे शास्त्राभ्यास करने में सात तन्त्रों का ज्ञान होना है। हम इन तीनों को भक्ति मन्त्रों के द्वारा से करना चाहिए। यही मोक्षमार्ग का सोपान है।

१८. देवपूजा का प्रयोजन

श्री अग्रहत् और सिद्ध परमात्माका पूजन करना अर्थात् उनके गुणानुवाद गाना इसलिये नहीं है—कि हम उनको प्रसन्न करें। वे तो धीतराग हैं—न हमारी प्रशंसा से राखी हो हमें कुछ दते हैं, न हमारी निंदासे नाराज हो हमारा कुछ बिगाड़ करते हैं। उनका पूजन केवल अपने भावों की शुद्धि के लिए ही किया जाता है।

यह नियम है कि गुणोंके मननसे अपने भाव गुण प्रेमी होने हैं व अवगुणोंके मनन से अपने भाव द्रोष होते हैं। हमारे भावों से ही हमारा भला बुरा होता है। ये सब परम धीतराग हैं। इसी भक्ति से हमारे भावों में शान्ति आती है। भक्ति में ही शान्तभावों में हमारे पाप कटने हैं और पुण्य का लाभ होता है। वास्तव में चैनिया की देवपूजा वीर पूजा (Hero Worship) है।

पूजा के दो भेद हैं—द्रव्यपूजा, भावपूजा।

जल चन्दनदि द्रव्या का आभय लेकर भेंट चढ़ाना द्रव्यपूजा है। गुणोंका विचारना भावपूजा है। गृहस्था के लिये द्रव्य पूजा के द्वारा भाव पूजा का होना सुगम है। गृहस्था

चित्त सामारिक बाधाओं में खिंचा रहता है । इसलिए उनके मन को देवमन्त्रिण जोड़ने के लिए आठ द्रव्यों के द्वारा आठ प्रकार भावनाएँ करना योग्य हैं । जैसे—

- १ जलसे—आग भेंटरूप चढ़ाकर यह भावना करनी कि जन्म, जरा, मरण का राग दूर हो ।
- २ चन्दन से—भय की आत्मा शांत हो ।
- ३ अमृत से—अविनाशी गुणा का लाभ हो ।
- ४ पुष्प से—काम विकार का नाश हो ।
- ५ नैवेद्य से—क्षुधों राग की शान्ति हो ।
- ६ द्राव्य से—मोह अन्धेरे का नाश हो ।
- ७ धूप से—आठों कर्मों का नाश हो ।
- ८ फल से—मोक्षरूपी फल प्राप्त हो ।

यद्यपि पूजा की सामग्री धोतन इत्यादि आरम्भ करना होता है, परन्तु इस आरम्भ का महत्त्वा त्याग्य नहीं है । इस आरम्भ के शेष के मुद्रावले में भावा की निर्मलता अत्यधिक होती है । जैसे छिमी गान वाले का गान बाजे का सुरतान की महायता में लगता है, तथा बाजों को यज्ञान का आरम्भ गायत्रि में मन रागने की अपेक्षा बहुत कम है । ॐ

ॐ न पूजपापस्त्वपि चीनराग न निन्धा नाथ विनाश वेदे ।
तथापि ते पुण्य गुणमूर्तिन पुनानु चित्त दुरिर्मात्रनम् ॥ १७ ॥
पुण्य जिन स्वाध्याय जनस्य सावधनेनैते बहुपुण्यराशी ।
शेषावशेषाः कृतिश्च विदुष्य नदविद्या गीत निवाम्बुराशी ॥ ५८ ॥

(स्वयम्भूस्तोत्र)

१६. मूर्तिस्थापन का हेतु

जो गहरा देव-पूजा करे और जिसे की पूजा करे उस की उपस्थिति न हो तो पूजा में उचितभाव नहीं लग सकता। भक्ति, बिना भक्ति योग्य वस्तु (Object of devotion) के भातर से समझता नहीं है। यदि जाव-मुक्त परमात्मा या अरहन्त साक्षात् मिलें तो हम उनका सेवा में पूजा करनी चाहिये। यदि वह नहीं मिलें तो उनकी वैसी ही ध्यानाकार मूर्ति स्थापित कर उस मूर्ति के द्वारा परमात्मा की भक्ति करनी चाहिये। हमारे भवों में जैसा अमर साक्षात् अरहन्त के ध्यान-मय वातराग शरीर के दर्शन में होगा वैसा ही अंतर उनका ध्यानमय प्रतिष्ठित वातराग मूर्ति के दर्शन में होगा। वास्तव में ध्यान वैसा होता है वह ध्यान के समय शान्ति वैसी होती है, हमको साक्षात् बनाने वाली जैन लोग का वस्त्राभरण रहित सात

भावाधे—भाप वीतराग है, आपको हमारी पूजा में कोई भाव (प्रवाजन) नहीं है। हा नाथ ! भाप वैर रहित है हम से हमारी निम्न में भाप में द्रव्य नहीं हो सकता, तो भी आपके पवित्र गुणों का स्मरण हमारे मनको पापरूपी मैल से साफ कर देता है। जा पूजन योग्य जिनेन्द्र की पूजा द्रव्य द्वारा करता है उसका अरूप आरम्भ दोष बहुत पुण्यके बंध होने की अपेक्षा बहुत ही भव्य है—हानिकर नहीं है, जिस तरह विष की एक कणी शरीर समुद्र के जलको विषमय नहीं कर सकती।

मूर्ति है। जैम जगदि द्रव्य भेंट देना, भावों की सम्बलता में कारण है, ऐसे यह मूर्ति भी साधक है। ४४

ॐ इत्यष्ट्युच्छदसौ चाद सत्यमिति वचस्तथा ।
 गन्तुं राजन् ! जिनेन्द्रस्य चैत्य चैत्यालपादिना ॥ ४८ ॥
 भवत्य चेतनं किन्तु भगवान् पुण्य कथने ।
 परिणाम ममुत्पत्ति हेतुवात्कारण भवेत् ॥ ४९ ॥
 रागादि दोष हीनत्वाद्युपा भवन्नादि काल् ।
 विमुक्त्यस्य यस्मिन्नु कान्ति दासि मुखाधियः ॥ ५० ॥
 भवन्ति तस्मात्प्रसव लोका लोक विलोकित ।
 कृतायावात्परित्यक्तगारे परमात्मन ॥ ५१ ॥
 जिनेन्द्रस्याकामास्तरण प्रतिमाश्चप्रपश्यता ।
 भवन्त्युभाभिसंभानप्रकरो नान्यतस्तथा ॥ ५२ ॥
 कारण द्वय आग्निष्वास्तव कार्य ममुत्पत्तय ।
 तस्मात्तस्मात्तु विनेय पुण्य -कारण कारणम् ॥ ५३ ॥
 (उत्तर पुराण पद ७३)

भावार्थ—प्रतिमा सम्बन्धी प्रश्न करने पर मुनि कहने लग—
 भवन्त्युत्तमाः । यद्यपि यह जिनेन्द्र की प्रतिमा व मन्दिर भवतान्तर
 भी भी शुभ भावों की उत्पत्ति में निमित्त होने से पुण्यवत्त स कारण
 है। जिनेन्द्ररागादि दोष रहित है, पोछ, आभूषण वर्जित है, समस्त
 कद्रसमान भुक्त की पीमा की रहित है, इन्द्रियों के ज्ञान से रहित है
 लोक भ्रष्टों को पचने वाल है, कृत्कृत्य है, जटा नादि से रहित है
 ऐसे परमात्मा की प्रतिमा व मन्दिर के दर्शन करने से जैसे भावों की
 उत्पत्ति होता है वैसे भी अन्य मूर्ति आदि से नहीं होती। सर्व का
 भवन्त्युत्तमा, चदिराह, ये कारणों से होते हैं। इसलिये यह अच्छा तरा
 ममसहो कि यह मूर्ति पुण्य प्राप्ति के कारण शुभभावों के होने में
 निमित्त कारण है।

२०. मूर्ति स्थापना सदा से है नवीन नहीं

लोक में शिम्शो को पहिचानन के लिये नाम रखना जरूरी है। वैसे कमल पाम न होते हुये कमल स्वरूप को जानन के लिये कमला भूत या तस्वीर जरूरी है। मकान बनाना, चित्रपट रीखना पत्र लिखना, ये सब चार्ते जगत में जहा जहा व जब जब कर्मभूमि होती है, आवश्यक हैं। जगन में सदा ही से सृत्रिय व वैश्यादि के कर्म हैं। इसलिये साकेतिक चिन्कों को भी प्राप्ति सना ही से है। घट को लिप्टा देखकर घट का बोध हो जाता है। यदि पहिल नकशा न रीखा जाय तो मकान नहा बन सकता है। दूर देश में बैठे हुये स्त्री पुरुषों के स्वरूप का ज्ञान चित्रों से होता रहता है। इसलिये जब भक्ति माग सदा से है, तब भक्ति योग्य Object of Worship भी सदा से है, कोई नवीन कल्पना नहीं है। स० ८१ ॥ प्रसिद्ध श्री जमास्वामा महाराज ने लोक-व्यवहार के लिये स्थापना को "नाम स्थापना द्रव्य भाव तस्वन्नाम" (तत्त्वार्थ सूत्र अ० १ सूत्र ५) इस सूत्र से स्वीकार किया है। सगत् लेख रहित प्राचीन जैन मूर्तियां भूमि से निकलना करती हैं। विक्रम को पहिली शताब्दी से पहिल की दिगम्बर जैन मूर्तियाँ मथुरा व लखनऊ क अजायबघर में हैं। खडगिरि उदयगिरि (उड़ीसा) की हाथी गुफा में सन् ई० से १५० वर्ष पहिले के जैन राजा खारवेल या मेघवाहन द्वारा अङ्कित लेख है। उसकी १० वीं व

लाइन में है कि राजा ने मगध देश के नन्द राजा से ऋषभदेव, जैनियों के प्रथम तार्थङ्कर की मूर्ति को ला कर अपने बनाये मन्दिर में स्थापित किया। ❀ इसमें यह सिद्ध है कि इस के पहिले से ऋषभदेव का प्रनिर्माण बना था। बङ्गाल विहार में अनेक स्थानों में हजारों वर्ष की प्राचीन दि० जैन मूर्तियाँ मिलती हैं। स्वरूप के ज्ञान के लिए ऐसी सहस्रों वस्तु का होना किसी विशेष काल में वस्तुित नहीं है।

२१ सात तत्त्व व उनकी संख्या का महत्त्व

जो सच्चे दय, शास्त्र, गुरु की श्रद्धा वर के भक्ति करता है, उस को शास्त्रों के द्वारा सात तत्त्वों को जान कर श्रद्धान करना आवश्यक है क्योंकि इनके द्वारा निश्चय आत्मरुचि में सम्यग्दर्शन का लाभ होता है। उनके नाम हैं—१ जीव २ अजाय ३ आस्रर ४ व ५ सत्त्व ६ निर्णर ७ मास। †

इन का ही ज्ञान मोक्षमार्ग का ज्ञान कराने वाला है। जीव में यह बोध होता है कि हम चैतन्यरूप आत्मा हैं। अजाय से ज्ञान होता है, कि हमारे गरीरानि अचेतन पदार्थ सब शुद्ध से भिन्न अजाय हैं, क्योंकि वह निश्चय से शुद्ध हो करके

❀ बङ्गाल विहार जमीना प्राचीन स्मारक पृ० १३८

† जीवावावात्त्व वत्त्व सत्त्व निर्णर मोक्षास्तत्वम्।

(तत्त्वार्थ सूत्र अ० १ सूत्र ४)

भी व्यवहार में कर्म बन्ध के कारण अशुद्ध हैं। इसलिये हम को यह जानना जरूरी है कि कर्मों के पिण्ड जो जड़ अचेतन हैं किम तरह आत्मा के पास आते हैं और ठहर जाने हैं, उन दोनों बातों को घटाने वाला आसन्न (आना) और वय (बन्धना या ठहरना) हैं। हम अपनी अशुद्धि को कैसे मेटें, हम के लिए सबर बनाना है कि नयोन बन्ध को रानों का उपाय करो। निर्जरा तन्त्र बतलाता है कि बाधे हुए कर्मों को शीघ्र कैसे दूर कर दिया जाय। सर्व कर्मों में छूट कर मुक्त होने पर शुद्ध आत्मा अपने स्वरूप में बना रहता है हम को घटाने वाला मोक्ष तन्त्र है। जैसा नाल में पानी आकर ठहरता है तब नाथ समुद्र हा म गोले ग्याता है और जब पानी आने का छिद्र बंद करके भरे हुये पानी को उाव दिया जाता है तब नाथ शीघ्र समुद्र पार पहुच जाती है। जीव नाथ है, अजीव जग है, आसन्न जग के आने का छिद्र है, बन्ध जल का ठहरना है, सबर छेद को बन्द करना है, निर्जरा जन्म को जलचना है, मोक्ष नाथ का छूट कर द्वाप में पहुचना है, अर्थात् भिन्न जीव का समय म ऊपर पहुँच जाना है। इस मात तारों म हम को अपने उद्धार का उपाय प्रकट हो जाता है। इसलिये इन का प्रयत्न करना मध्यमदर्शन है। इसमें हम व्यवहार नयस जीव, सबर, निर्जरा और मोक्ष का गृह्य करने योग्य और शेष बात को त्यागन त्याग्य मानना चाहिए तथा निश्चय नय से आत्म तत्त्व का ही प्रहय करने योग्य मानना चाहिए, क्योंकि

ताश्चिन में है कि राजा नमगर्धदेश के नन्द राजा से ऋषभदेव, जैणियों के प्रथम तार्थक्यद्वार की मूर्ति को ला कर अपने पणाय मन्दिर में स्थापित किया। ॐ इससे यह सिद्ध है कि इस के पहिले से ऋषभद्वार का प्रतिमाएँ बनता थीं। बङ्गाल बिहार में अनक स्थानों में हजारों वर्ष की प्राचीन दि० जैन मूर्तियाँ मिलती हैं। स्वरूप के ज्ञान के लिए ऐसी सहस्रों वस्तु का होना किसी विशेष काल में कल्पित नहीं है।

२१ सात तत्व व उनकी संख्या का महत्व

जो सच्चे देव, शास्त्र, गुरु की श्रद्धा कर के भक्ति करता है, उस को शास्त्रों के द्वारा सात तत्वों की जान कर श्रद्धा करना आवश्यक है क्योंकि इनके द्वारा निश्चय आत्मरुचि में सम्यग्दर्शन का लाभ होता है। उनके नाम हैं—१ जीव २ अजान ३ आक्षय ४ बन्ध ५ सवर् ६ निर्जरा ७ माक्ष।

इन का ही ज्ञान माक्षमार्ग का ज्ञान कराने वाला है जीव में यह बोध होता है कि हम चेतन्य रूप आत्मा हैं अज्ञात स ज्ञात होता है, कि हमारे शरीरादि अचतन पदार्थ में मुक्त से भिन्न अजान हैं, क्योंकि यह निश्चय से शुद्ध हो कर

* बङ्गाल बिहार उड़ीसा प्राचीन स्मारक पृ० १३८

† जीवाजावाक्षय बन्ध सवर् निर्जरा मोक्षास्तत्त्वम्।

(सत्वाय सूत्र अ० १ सूत्र १

भी व्यवहार से कर्म बन्ध के कारण अशुद्ध हैं। इसलिये हम
 को यह जानना जरूरी है कि कर्मों के पिण्ड जो जड़ अचेतन
 हैं किम तरह आत्मा के पास आते हैं और ठहर जाते हैं, इन
 दोनों बातों को बताने वाला आसन्न (आना) और वय (बन्धना
 या ठहरना) हैं। हम अपनी अशुद्धि को कैसे भेटें, इस के
 लिए सबर धनलाना है कि नशेन बन्ध को रोकने का उपाय
 करो। निर्जरा तब बतलाता है कि बाधे हुए कर्मों को शीघ्र
 कैसे दूर कर दिया जाय। सर्व कर्मों में छूट कर मुक्त होने
 पर शुद्ध आत्मा अपने स्वरूप में बना रहता है इस को बताने
 वाला मोक्ष तत्व है। जैसा नाथ में पानी आकर ठहरना है
 तब नान समुद्र है। मे गोने गंगा है और जल पाना आने का
 द्विद्व बन्द करके भरे हुये पानी को ग्राह लिया जाता है तब
 नान शीघ्र समुद्र पार पहुँच जाती है। जीव नान है, अजीव
 जल है, आसन्न जल के आने का द्विद्व है, वय जल का ठहरना
 है, सबर छेद को बन्द करना है, निर्जरा जल को ग्राहना
 है, मोक्ष तत्व का छूट कर द्वाप में पहुँचना है, अर्थात् मित्र
 जीव का सब से ऊपर पहुँच जाना है। इन बातों तत्वा में हम को
 अपने उद्धार का उपाय प्रकट हो जाता है। इसलिये इन का
 अद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इनमें हमें व्यवहार नयस जीव,
 सबर, निर्जरा और मोक्ष को गृह्य करने योग्य और शेष
 तान को त्यागने योग्य मानना चाहिए तथा निरचय नय से
 आत्म तत्व को ही ग्रहण करने योग्य मानना चाहिए, क्योंकि

इन सात तत्त्वों में जड़ चेतन दो हो पदार्थ हैं । निश्चय वे जड़ से चेतन भिन्न है, यही अद्वान ठाक है ।

२२ जीवतत्व का स्वरूप

जो वसे कहते हैं निम्में चेतनरूपा (Consciousness) हो । चेतना इस का लक्षण है । जो कोई चेतता है—अर्थात् देखता जानता है, वही जीव है । इस जाग के सम्बन्ध में नी पाते जानन योग्य हैं —

(१) यह अपन प्राणों से मदा जीता रहता है । निश्चय नय से इस के एक ज्ञानचेतना प्राण है, जो कभी नहा मिटता है । व्यवहारनय से ससारो जाग को अपेक्षा इमने चार प्राण होत हैं । जिनके कारण एक शरीर में जीता रहता है वे जिनके वियोग का नाम मरणा कहलाता है वे चारप्राण हैं—१ आयु १ स्वासोष्ठवास पाँच इंद्रिया (स्पर्शन, रसना, घ्राण, श्रुति, कर्ण) तीन बल (मन, वचन काय), ये मर दश हो जाते हैं । समार में आव छ प्रकार के हैं —

१ लोकेन्द्रिय स्थावर—जैसे पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक वायुकायिक, अन्तरिक्षकायिक । इनके शरीर पृथ्वा आदि रूप होने हैं । भीतर जीव होता है । जब तक ये बढ़ने रहते हैं व फूलने फलने रहते हैं तब तक ये मजीव या सचित कहलाते हैं, जब ये सूख जाते हैं या हवा न पाकर मरमा जाने हें तब ये अजाव और अचित कहलाते हैं । खान । स्नान का गाला मिटटी, कुए का पाना आदि सचित हैं ।

सूखी मिट्टी, गर्म पानी अचित हैं। वर्तमान सार्यम ने पृथ्वी व बनस्पति (Vegetable) में जीवजन का मिश्रि करदा है। अभी तान में नहीं की है सा यदि विज्ञान की उन्नति हुई तो इनमें भी प्रमाखित हो जायगी। जैन भिदूधान्व जो कहता है वह इस तरह पर है कि इनके चार प्राण होते हैं—
१ स्पर्शन इन्द्रिय जिससे छूकर जानने हैं, १ काय वन, १ आयु, १ श्वासोच्छ्वास।

२ द्वािन्द्रिय जीव—जैसे लट, शहू, कौड़ी आदि। इनके ५ प्राण होते हैं। १ रसनाइन्द्रिय और १ वचनवा अधिक हो जाता है।

३. त्रेन्द्रिय जीव—जैसे चींटी, खटमल आदि। इनके सात प्राण हैं। प्राण इन्द्रिय अधिक होजाती है।

४ चौइन्द्रिय जीव—जैसे मक्खी, भौंरा, पतङ्ग आदि। इनके आठ प्राण हैं। चक्षु इन्द्रिय अधिक होजाता है।

५. पचेन्द्रिय मन रहित—जैसे समुद्र के कोई २ जातिफ मर्प। इनके ६ प्राण होते हैं। एक कर्ण इन्द्रिय अधिक हो जाता है।

६ पचेन्द्रिय मन सहित—जैसे हिरण, गाय, भैंस, बकरा, वनूतर, काक, चील, मच्छ, आदि ७ पशु पक्षी, मय आदमी, नारसी व देव। इनके १० प्राण होने हैं। एक मन वा अधिक हो जाया है।

जिससे सर्व प्रितर्क किया जावे व कारण कार्य का

विचार किया जाये वह मन है। जो मकेत समस्त मके व शिक्षा ग्रहण कर मने वह मायला पचेन्द्रिय जीव है।

(१) यह ज्ञान उपयोगवाण है, ज्ञान दर्शन स्वरूप है। निश्चयनय से शुद्ध ज्ञान दर्शन को रखता है। व्यवहारनय से मतिज्ञान आदि पांच ज्ञान, मति, भुक्ति, विभक्त तीन अज्ञान तथा बधु अचक्षु अविधि कबल, ये चार दर्शन रखता है। इन्हीं से हम जीव को पहिचान हैं। जैम जो शास्त्र पढ़ता है वह धृतज्ञान का काम कर रहा है, इससे जीव है।

सामान्यपन अवलोकन को दर्शन कहते हैं, विशेष जानने को ज्ञान कहते हैं। आत्मा से दग्गा 'बधुदर्शन' है। आत्मा को छोड़कर शेष चार इन्द्रिय व माय दग्गा 'अचक्षु दर्शन' है। आत्मा स्वयं रूपी पदार्थ को जिनम देगे वह 'अविधि दर्शन' है। जिससे मय दग्गा जाये वह कया दर्शन है। जब इन्द्रिय और पदार्थ की भेंट होती है तब दर्शन हाता है। फिर जो जाना जाय वह ज्ञान है। ज्ञान का वर्णन प्रमाण नवक अभ्यायम किया गया है।

(२) यह जीव कत्ता है—निश्चयनय से यह अपना ज्ञान भाव व वीतराग भाव का हा कत्ता है, व्यवहारनय से यह रागद्वेष मोहादि भावों का कत्ता व उन भावा क निमित्त से पाप पुण्यमई कर्माका बाधा बाण है व घटपट आदि का कत्ता है।

(४) यह जीव मोहा है—निश्चयनय से अपने शुद्ध ज्ञानानंद का भोगता है, व्यवहारनय से पाप पुण्य क कत्तरा सुख दुखों को भोगता है।

(५) यह जीव अमूर्तीक है—निश्चयनय से इसमें कोई स्पर्श, रस, गंध, वर्ण (जो गुण परमाणुओं में होते हैं) नहीं हैं, इससे यह अमूर्तीक है, परन्तु जब कर्म का बंधन हरणक ससारी आत्मा के अंश में है । इसलिये व्ययहारनय से यह मूर्तीक है ।

(६) यह जीव आकारमान है—इस आकार में जा कोई वस्तु जगह पायगी उसका आकार होना चाहिये । आकार लम्बाई चौड़ाई आदि को कहते हैं । जीव भी एक पदार्थ है, इस लिये आकारवान है, परन्तु यह आकार चेतनमई है, जब रूप नहीं है । निश्चयनय से एक जीव असंख्यात प्रदेश रखता है, अर्थात् तीन लोक के बराबर है । प्रदेश क्षेत्र का वह मन्त्रसे छोटा अंश है, जिसको एक अविभागी परमाणु घेरे । व्ययहारनय से यह शरीर क प्रमाण आकारवान है । छोटे शरीर में छोटा व बड़े में बड़ा हो जाता है । इसमें कर्म व फल के निमित्त से मनु बना फैलना होता है । शरीर में रहते हुए कभी शरीर से बाहर फैलकर आत्मा का आकार फैलता व फिर सकुच कर शरीर प्रमाण हो जाता है, ऐसी दशा को समुद्घात कहते हैं । वेदना 'कर्पाय' आदि के निमित्त कभी कभी ऐसा हो जाता है । क्योंकि हमको सर्वांग स्पर्शका ज्ञान होना है व शरीरमें बाहर स्पर्शका ज्ञान नहीं होता है, इसमें सिद्ध है कि हमारा आत्मा शरीर प्रमाण है ।

समुद्घात सात होते हैं —

१ वेदना—कष्ट को भोगते हुए शरीर में बाहर फैल कर हो जाना ।

२ कथाय—कोधादि के निमित्त में फैलना ।

३ शारणातिव—कोई कोई मरने के पहले जहा जाना हा उस को फैल कर स्पर्श कर आता है, फिर मरता है ।

४ वैकविक—देव नारकी आदि अपने शरीर को छोटा बड़ा कर लते व देवगण व शरीर के शरीर बनाकर आत्मा को फैलाकर मर्त्य कराने और काम लते हैं ।

५ तैजस—त्रिमी मुनि के मोक्षवश वाण कण्ठ से बिजली का शरीर आत्मा सहित निकलता है जो नगरादि को भस्म करता है, यह अशुभ तैजस है । त्रिमी मुनि व दया वरा दाहिने कंधे में शुभ तैजस निकलता है जो दुष्ट के कारणों को भेड़ देता है यह शुभ तैजस है ।

६ आहारक—त्रिमी तपस्वी मुनि क मस्तक से एक स्वेद सूक्ष्म पुष्पाकार शरीर आत्मा सहित निकल कर राज्यादूर करने व असवम दूर करने के लिये किसी वन में व श्रुतकेवली के पास जाता है ।

७ केवल—जिस परब्रह्म परमात्मा के आयु कर्म के स्थिति कम हो व नाम, गोत्र, वेदनाय की स्थिति बहुत हो तो उनका स्थिति को आयु का स्थिति के समान करने के लिये आत्मा के प्रदश तान लोक में फैलते हैं ।

(७) यह जान आप ही अपने पाप पुण्य के अनुसार भ्रमण किया करता है ।

(८) यहा जोर यदि पुरुषार्थ करे तो स्वयं मिद्व भी हो सकता है ।

(९) यह जीव शरीर छोड़ने पर यदि शुद्ध हो तो अग्नि की शिखा के समान ऊपर को जाता है और लोक के अग्रभाग में ध्यानाकार विराजमान हो जाता है, परन्तु मसारी जीव कर्म बन्ध के कारण चार विदिशाओं को छोड़ कर ऊपर नीचे, पूर्व पश्चिम, दक्षिण उत्तर, ६ दिशाओं में अपनी ७ गति में जाते हैं—टेढ़े नहीं जाते हैं। मरख ५ पाछे दूसरे शरीर में जाते हुए टेढ़े नहीं जाते, सीधे ही जाते हैं। तीन दर्जे से अधिक नहीं सुढ़ते। †

ये जीव अनन्तानन्त हैं। हर एक जीव की सच्चा यानी मौजूदगी भिन्न २ रहती है। कोई किसी का परब नहीं है, न कोई रिसा से मिलता है। जीवों के दो भेद हैं—संसारी और मुक्त। दोनों ही अनक हैं। ❀

जैन सिद्धांत में जीव भी एक द्रव्य है।

२३. द्रव्य का स्वरूप

जो सत् हो अर्थात् जिसकी सच्चा अर्थात् मौजूदगी

† नी विशेषणों की गाथा

जीवो ज्यमो गममो भर्मात्त कथा सदेह परिमाणो ।

भोका ससारमो सिद्धो सो निरस सोद्द गह ॥ १ ॥

जाणदि वससदि मव्व इण्णदि मुक्ख पिणेदि दुक्खसादो ।

कुप्पदि विदमदि वा सुज्जदि जावो कल सेसि ॥ १२२ ॥

(द्रव्य समग्र, पचास्तिशाय)

भाषा—यह जीव सर्व पदार्थों की देखता जानता है। यह संसारी जीव मुक्त चाहता है, दुःखों से बरता है, अपना स्वयं मरना या मरा करता है व स्वयं उमर का फल भोगता है।

❀ संसारिणो मुच्यन्ते ॥ १० ॥ (तात्पा० सू० अ० १)

मदा बनी रहे, उसको द्रव्य कहने हैं। मनु उम कहते हैं जिममें एक ही समय में उत्पन्न, व्यव, धौव्य पाये जायें अर्थात् जिस में पिछली अवस्था का नाश होकर नई अवस्था जन्मे, तो भी मूल द्रव्य बनी रहे। जैसे स्वर्ण का कड़ा तोड़ कर टुकड़ल बनाया इस में पड़े की अवस्था का नाश होकर हा कुशला जन्मा है, परन्तु स्वर्ण बना ही रहा। अथवा जैसे कोई बालक युवा हुआ, यहाँ बालक अवस्था का व्यव, युवा अवस्था का जन्म तथा धौव्य वह मनुष्य जीव है। एक बने के मन को जिस समय समझ कर चूरा जाता है, उसी समय बनेपन का नाश और चुरेपन का जन्म होता है व जो परमाणु बने क थे वे उनके आट में मौजूद हैं।

हरण द्रव्य द्रव्यशील है, परिणामनशाल है—अर्थात् अवस्थाओं को बदलता है। जिममें अवस्था नहीं बदले, वह द्रव्य किसी कामको नहीं कर सकता। यदि जीव मृतस्थ नित्य हो तो अशुद्ध से कभी शुद्ध नहीं हो सकता व यदि परमाणु मृतस्थनित्य हो तो उससे मिट्टी, पानी, हवा, वनस्पति आदि नहीं बन सकते। यदि अवस्था बदलते हुए मूल वस्तु नष्ट हो जाने तो कोई भी वस्तु नहीं ठहर सके। इस कारण द्रव्य को गुणपर्यायत्वम् भा कहते हैं।

गुण द्रव्यके भीतर बसापन उसके साथ मदा पाये जाते हैं। व ही गुणों में जो अवस्थायें बदलती हैं उनको पर्याय कहते हैं, जो क्रम क्रम से होती हैं। गुणों का और उनका सम

द्रव्यरूप द्रव्यका सदा प्रीत्य या अविनाशीयता रहता है, किन्तु पर्यायों में चला-चल्य रहता रहता है । †

ऐसे मूल द्रव्य इस लोकमें छ प्रकार के हैं—जीव, पुद्गल, धर्मास्तिवशय, अधर्मास्तिवशय, आकाश और काय । इनमें जीव चरन है; शेष पाप अचेतन हैं । -

२४. द्रव्यों के सामान्यगुण

इन छ प्रकार के द्रव्यों में कुछ गुण ऐसे हैं जो हर एक द्रव्य में पाये जाते हैं । इन्हें सामान्य गुण (Common qualities) कहते हैं । इन में से प्रसिद्ध निम्न छ हैं —

(१) अस्तित्वगुण—जिस स द्रव्य अपनी सत्ता नष्टा रहता है ।

(२) परस्त्वगुण—जिस शक्ति के निमित्त में द्रव्य में अनेक गुण व पदार्थ निवास करते हैं व जो निरर्थक नहीं है ।

(३) द्रव्यत्वगुण—जिससे द्रव्य परिणामा किया करता है । या अवस्थायें बदलता है ।

(४) भेदोन्मगुण—जिससे द्रव्य काइ न कोई आकार रहता है ।

† द्रव्य सत्त्वगुणजित्वा द्रव्यादव्ययवशतः सत्तुतः ।

गुण पञ्चम वा जतः मणवि सत्त्वगुणः ॥ १० ॥

(पञ्चास्तिकाय)

भावार्थ—द्रव्य का लक्षण सत् है सो अनाद, व्यय, भ्रूय वनकर सरित है । उसी सत्त्वगुण द्रव्य कहते हैं ।

(५) अगुरुलघुत्वगुण—जिसमें द्रव्य अपने स्वभाव को कभी हीन व अधिन नहीं करता है, जिसने गुण हैं उनको अपने में बनाये रखता है व जिसके कारण एक गुण या पर्याय दूसरे गुण या पर्याय रूप नहीं हो सकता ।

(६) प्रमेयत्वगुण—जिससे द्रव्य किसी के द्वारा जाना जा सक ।

२५. जीव द्रव्य के विशेष गुण

जाय द्रव्य के विशेष गुण चेतना अध्यान् ज्ञान, दर्शन, सुप्त, धीर्य चारित्र या धीतरागता, मम्यक्त्व या सत्त्वा भ्रमज्ञान आदि हैं ।

इसके जीव स्वभाव से सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तसुखी, अनन्तदत्ता परमशान्त, परमभद्रात्मान है । ७

ये गुण मित्राय जीवों के और पाच द्रव्या में भी किसी में नष्ट पाये जाते हैं । समस्त जीवों में कभी क कथन ज्ञान के कारण ये विशेष गुण पूर्ण प्रकट नहीं होते ।

२६ जीव की तीन प्रकार अवस्था

इस जगत् में जीवों की निम्न तीन अवस्थाएँ होती हैं —

७ सुख सधरण सुद जिण, कवलणण सदाउ ।

सो अण्णा भणुदिण सुणहु जइ चादउ सिउल्लहु ॥१६॥

भावार्थ—आत्मा सुख चेतनामय, सुख, धीतरागी, केवल ज्ञान स्वभाव है । जो मोक्ष चाहत हो सो रात दिन इसी का मनन करो ।

(योगसार)

१. बहिरात्मा—जो शरीर आदि रूप व क्रोधादिरूप व अज्ञान व अल्प ज्ञानरूप अपने आत्मा को जानने हैं तथा जो संसार के सुखों में रागी हैं, मन्चे परमात्मा या आत्मा को नहीं जानते हैं।

२. अन्तरात्मा—जो अपने आत्मा को पहिचानते हैं, अतीन्द्रिय स्वाधीन आनन्द, के खोजी हैं, संसार शरीर भोगों में विरक्त हैं। यदि गृह में रहते हैं तो जल में कमल समान पक्षीरहित रहते हैं। यदि साधु हो जाते हैं तो सर्व धनादि परिग्रह छोड़ आत्मध्यानरूपी यज्ञ में कर्मों का होम करते हैं। इन्हीं को महात्मा कहते हैं।

३. परमात्मा—जो शुद्ध आत्मा हैं, जगत् के प्रपञ्च जाल व चता से रहित हैं, जिनके ज्ञान में सर्व द्रव्यों की सर्व पर्यायें मलक रही हैं तो भी दीप शिखा के समान जिससे प्रीति अप्रीति नहीं करते, निरन्तर स्वार्मानन्द में मग्न रहते हैं। ॐ

ॐ बहिरन्त परवचति त्रिधात्मा मन् देहिषु ।

उपपाद्यत परम मध्योपायाद् द्वित्यर्धेत् ॥ १ ॥

बहिरात्मा शरीरादी आत्मात्मज्ञान्तिरान्तर ।

चित्तदोषात् विभ्रान्ति परमात्मानिनिमल ॥ २ ॥

(समाधिगतक)

भावार्थ—आत्मा के तीन भेद हैं—बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा। इनमें से अन्तरात्मा होकर व बहिरात्मापना त्याग कर परमात्मा होने का ध्यान करो।

जो शरीरादि में आत्मा का भ्रम रहता है यह बहिरात्मा है,

२७ परमात्मा अनन्त है

परमात्मा एक ही है, किंतु अनन्त है, क्योंकि इस आदि अनन्त जगत में जा फाँड़े आत्मा अपने का शुद्ध कर लेता है वही परमात्मा वह पद में पहुँच जाता है। इसीलिए अनन्त परमात्मा भिन्न २ अपने २ ज्ञातानन्द में इस तरह मग्न रहते हैं जिस तरह अनन्त साधु एक स्थल पर बैठे आत्मध्यान कर रहे हों। यद्यपि गुणों की अपेक्षा सब बराबर हैं। सब ही आत्मज्ञानी, वात्सली, परमसुखा हैं, यद्यपि अपना २ मत्ता की अपेक्षा भिन्न २ हैं। भक्त जन चाहे एक परमात्मा को, चाहे अनन्त परमात्माओं को लक्ष्य कर भक्ति करें उनका भाग में शुद्धिरूप फल समान होगा, क्योंकि गुणा की ही भक्ति से गुणों का निर्मलता होती है। †

२८ जगत का कर्ता व सुख दुःख के फल का दाता परमात्मा नहीं हो सकता

परमात्मा शुद्ध आत्मानन्द में लय रहते हैं। उनका भाव

जो रागादि से भिन्न आत्मा की जानता है वह ही परमात्मा है, जो परम शुद्ध है वह परमात्मा है।

† गहृष्टकम्मावधा अहमहागुणसमाब्जना परमा।

ओगम्यदिवा लिप्ता सिद्धा न पुरिसा ह्येति ॥७२॥

(नियमसार)

भाषा—भार्य कर्म रहित व आठ महागुण सहित भविनाशो अनन्त सिद्ध शोक के अमभाग में विराजित रहत है।

ममैव न विवर्त्य उक्तं । तन्ममत्वे, क्यौंकि जहा विचार की
न में होगा, वहा आत्मसमाधि नहीं रहेगी और न आत्मानन्द
का भोग होगा ।

महत्त्वादि मा के द्वारा जाते हैं । परमात्मा क न मन है,
न धरा है, न काय । तब फिर "जगत का कर्ता क किसी को
सुख दुःख दू " यह भाव कैसे शुद्ध, निरज आत्मा में उठ
सकता है ?

परमात्मा कृतार्थ है । जब कौड शुभ अशुभ कामना
नहीं उठ सकती है । यदि परमात्मा का कर्ता माना जावे ता
हिमा समय जगत क प्रवाद का अभाव माना पड़ेगा, क्योंकि
जा नहीं होता है पशु किया जाता है । मो अतदि अन्त चलने
वाला जगत अपरा विविधता का छोड़ कर वहा एक रूप नहीं
भा, न हो सकता है ।

जो परमात्मा का जगत-कर्ता मानते हैं वे समझे सर्व
व्यापक और, निराकार मानते हैं । सर्वव्यापक में हला
चना नहीं हो सकता, निराकार से साक्षर नहीं हो सकता ।
निर्विचार क इन्द्रा उहा हो सकता । इसी तरह परमात्मा
को "साग परके सुख दुःख देने की भा अव्यक्त नहीं है । ना
ऐसा माने हैं वे परमात्मा को राजा के समान व अपने को
प्रजा क समान मान कर कहते हैं । यदि कोई सर्व गतिमान,
म्यायी दशवार व सबव्यापक सर्वज्ञ परमात्मा राजा क
समान जगत का शासन करे तो जगत में कोई कुमार्ग में नहीं

मकता, क्योंकि यह ज्ञानधन से प्रजा के मन की बात जान
कर अपनी विचित्र शक्ति से उसके मन को फेर देवे। जैसे राजा
किसी को यह जान कर कि यह प्रजा द्रोही है, तुरन्त उसको
दण्ड देते हैं। यदि यह दयावान् व शक्तिशाली होकर रोके
नहीं, पोछे दण्ड देदे, तो यह बात राज्य धन के विरुद्ध है।
क्योंकि हुमायूँ का प्रचार जगत में बहुत अधिक है, इससे सिद्ध
होता है कि परमात्मा हमारे बीचमें अपने को नहीं धाम्नाता
है। हम जैसे स्वयं अग्नि चलाते व स्वयं जलते हैं, स्वयं नशा
पीते व स्वयं बेहोरा हो जाते हैं, वैसा ही ससारी जाय स्वयं
नाप पुण्य बाधते व स्वयं उनका फल पाते रहते हैं। परमा-
त्मा न वर्ता है, न भोगादि दण्ड दता है। ७

ॐ स्वयसत्तति चेज्जगः किमिति त्वैत्यविष्णुसर्व
सुदुष्टजन निमग्नार्थमिति चरसाध्वरम् ।
कृताञ्ज करणीयकस्य जगती कृतानिष्कला
स्वभावाद्दति चमपा सदि सुदुष्ट एवाऽप्यत ॥ ११ ॥
(पाश्चकेसर्ग स्तोत्र)

भावार्थ—यदि परमात्मा स्वयं प्रजाको पैदा करता है तो
फिर जसुरों का विष्णुस क्यों करता है? यदि कहो कि दुष्टों
के निमग्न व सुष्टों के पालन के लिये तो यही ठीक था कि यह
उनकी रचना ही नहीं करता। जो मृतकत्व होता है उनसे जगत
का बनना यह समतल्य काम है। कोई बुद्धिमान प्रयोजन बिना
कोई काम नहीं करता। यदि कहो कि उसका स्वभाव है, यह
भी मिथ्या ही है क्योंकि सर्वज्ञ, पालन, नाश, विना रागादि
दोष के नहीं हो सकता, तो परमात्मा में समझ नहीं है।

२६. अजीवतत्व-पाचद्रव्य

जिस में चेतना नहीं है, वह अजीव है। अजीवतत्व में पाँच द्रव्य सम्मिलित हैं—१ पुद्गल २ धर्मास्तिताय ३ अधर्मास्तिताय ४ आकाश और ५ काय । इनमें कया पुद्गल ही मूर्तीक है। शेष चार अमूर्तीक हैं।

१ पुद्गल—जिम में रुग्णा, चिरणा, ठंडा, गर्म, हलका, भारी, नरम, कठोर, ये आठ स्पर्श व सप्रेक्ष, काला, पीला, लाल, नीला, ऐसे पाँच वर्ण व स्रष्टा मोठा, चर्परा, शीला, कपायना, ये ५ रस व सुगन्ध, दुर्गन्ध, यह दो गन्ध, इस प्रकार कुल धाम गुण की अवस्थायें पाई जायें, समस्त पुद्गल कहते हैं। ये ही स्पर्श, रस गन्ध, वर्ण, पुद्गल के विशेष गुण हैं।

जो कुछ हम अपनी पाँचों इन्द्रियों से ग्रहण करते हैं मय पुद्गल हैं। ये पाँचों इन्द्रिया और यह हगारा शरीर भा पुद्गल है, कर्मों का यन्त्र भा पुद्गल रूप है, कर्म वर्णणां अवन्त परमाणुओं के वा हुण म्भव हैं, सूक्ष्म हैं। इसमें इन्द्रियगोचर नहीं हैं। इन्हीं से कर्म बताते हैं—यद्वय मे मूक्त पुद्गल इन्द्रियों से ग्रहण में नहीं आते हैं।

२ धर्मास्तिताय—यह लोक व्यापी अमूर्तीक द्रव्य है जिम का विशेष गुण जब जीव और पुद्गल अस्मा शक्ति से गमन करें तब बिना प्रेरणा के उनको सहाय करना है।

३ अधर्मास्तिताय—एक लोक व्यापी अमूर्तीक द्रव्य है जिसका विशेष गुण जब जीव पुद्गल अपनी शक्ति से टटते हैं तब बिना प्रेरणा के उनका सहाय करना है।

४ आकाश—एक सबसे बड़ा अनंत अमूर्तीक द्रव्य है, जिस का विशेष गुण सर्व द्रव्यों का उदासीन भाव से स्थान देना है।

५ कादृव्य—अमूर्तीक एक परमाणु या प्रदशक बराबर गणना में असंख्यात हैं। इनको कानाणु भी कहते हैं। इन का विशेष गुण सब द्रव्यों की अवस्थाओं के पाटने में उदात्त भावने सहायक होना है। समय, विपन्न, पन आदि इस पाल द्रव्य की पर्यायों या अवस्थायें हैं जिन को व्यवहार काल कहते हैं।

नोट—काल द्रव्य और उसकी पर्यायों की विस्तृत व्याख्या आदि जानने के लिये पसो "श्री बृहत् जैन शब्दा-
र्णव" भाग १ में शब्द 'अद्विधा' का नाट ८, पृष्ठ ११० स ११५ तक।

जीव और पुद्गल तो हमको प्रत्यक्ष प्रगट हैं, परन्तु चार द्रव्यों का ज्ञान होने के लिए हमको इस सिद्धान्त पर विचार करना चाहिये कि जगत में हर एक काम के नियम उपादान और निमित्त दो कारणों का आवश्यकता पड़ता है। जो स्वयं कार्य में परिणमन करता है उसे उपादान कारण व जो उसके सहायक होते हैं उनको निमित्त कारण कहते हैं। जैसे सुवर्ण की मुद्रिका बनी, इस में सुवर्ण उपादान कारण है और सुनार के औजार आदि निमित्त कारण हैं।

जीव और पुद्गल चलन चलन करते हैं और ठहरते हैं,

स्थान पाते हैं तथा अवस्थाओं में बदलते हैं । जैसे एक आदमी या एक पत्नी चलता है, चलते २ रुकता है, जगह पाता है व हर समय अवस्था बदलता है । घूला कभी उड़ना है, कभी ठहरता है, जगह पाता है या अवस्था को बदलता है, ये चार काम ये दोनों अपनी ही शक्ति से करते हैं । इस लिये इनके उपादान कारण तो ये स्वयं हैं और निमित्त कारण चार भिन्न २ कार्यों के चार द्रव्य हैं, मो क्रम से धर्मास्तिभाव, अधर्मास्तिभाव, आकाश और काल हैं । लोकाकाश मर्यादा रूप है । आकाश अनन्त है । यदि धर्म अधर्म द्रव्य न माने जायें तो जीव और पुद्गल एक लोक की मर्यादा में न रह कर अनन्त आकाश में बिछर जायेंगे । ७ क्योंकि आकाश अनन्त होने से वे जीव तथा पुद्गल चलाते २ अनन्त आकाश में जा सकते हैं । परन्तु वे नहीं जाते, क्योंकि जहाँ तक जगत है वहाँ तक ही धर्म अधर्म द्रव्य हैं, इसलिये जगत् में ही चलते व ठहरते हैं ।

७ स्पर्श रस गन्ध वर्णवान् पुद्गलाः ॥ २३ अ० ५ ॥

गतिस्थित्युपग्रही धर्माधर्मवीर्यकाराः ॥ १७ अ० ५ ॥

आकाशस्यावगाहः ॥ १८ अ० ५ ॥

वर्तनापरिणाम क्रिया परत्वापरत्वेच कालस्य ॥ २२ अ० ५ ॥

(तत्त्वाथ सूत्र)

भावार्थ—जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण हों वे पुद्गल हैं । गमन कराना धर्म का व स्थिति कराना अधर्म का व अवकाश देना आकाश का गुण है, पलटाना काल का गुण है । अवस्था चाल तथा कम्पनी बढ़ती समय लगने से व्यवहार-काल का ज्ञान होता है ।

३०. पाँच अस्तिकाय—विभाववान् और क्रियावाद दो द्रव्य

हर एक द्रव्य में एक सामान्य गुण प्रदर्शित है जिस से हर एक द्रव्य का कुछ-१ कुछ आकार होता है। द्रव्यों का आकार नापने के लिए प्रत्येक एक माप है। जितने आकारों को पुद्गल का वह परमाणु जिसका दूसरा भाग नहीं हो सकता रोकता है, उसको प्रदेश कहते हैं। इस माप से नापा जावे तो हर एक जीव में असंख्यात प्रदेश, धर्म द्रव्य में असंख्यात, अधर्म में अमंख्यात और आभास में अनन्त प्रदेश हैं। लोक के भी असंख्यात प्रदेश हैं। इनके बराबर धर्म अधर्म व एक जीव के प्रदेश हैं।

पुद्गलका सघन छोटा हिस्सा परमाणु होता है, परन्तु बहुत से परमाणु मिलकर स्तम्भ बनते हैं। वे स्तम्भ कोई संख्यात, कोई असंख्यात कोई आन्त परमाणुओं के होते हैं, इस में पुद्गल के तीन प्रकार प्रदर्शित होते हैं। क्योंकि जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म आभास में एक में अधिक प्रदेश होते हैं, इसलिये इन पाँच को जैन सिद्धान्त में अस्तिकाय कहा है।

काल द्रव्य लोक में एक २ प्रदेश में अलग अलग स्थानों में समान फैला हुआ है। इसलिये वे सब एक प्रदेशों ही हैं, यथा गणना में असंख्यात हैं। अतएव काल द्रव्य को काय में नहीं गिना है। यह ध्यान में रहे कि जैन सिद्धान्त में 'माप' २

तरह की बनाई है। किसी हद तक संख्यातके जघन्य, मध्यम उत्कृष्ट भेद समाप्त हो जाते हैं। फिर असंख्यातके ९ भेद फिर अनन्त के ९ भेद होते हैं। सब से बड़ा संख्या उत्कृष्ट अनन्तान्त है।

नोट—संख्यात, असंख्यात और अनन्त की विस्तृत व्याख्या व भेदादि जानने के लिये देखा “भो बृहत् जैन शब्दार्थान” भाग १ में रा. १ ‘अष्टगुणना’ पृष्ठ ८६ से १८३ तक ।

इन छ' द्रव्यों में धर्म, अधर्म, आकाश एक एक हैं, काल असंख्यात हैं। जीव और पुद्गल अनन्त हैं। चार द्रव्य स्थिर रहते हैं, केवल जीव पुद्गल में ही हलन चलन क्रिया होती है। इसलिये ये ही क्रियावाग हैं तथा इनही में वैभाविक शक्ति है। ससारी जीव कर्म बन्ध के निमित्त से रागद्वेषादि विभाव भावों में परिणमन कर जाते हैं। जैसे स्फटिक मणि लाल, पीले आदि के सम्बन्ध से लाल, पीले रङ्ग रूप परिणमन कर जाती है तथा पुद्गल जीव के रागद्वेषादिभावों का निमित्त पाकर आठ कर्मरूप हो जाते हैं व पुद्गल के परमाणु चिकना पन, रुखापन तथा परस्पर मिलने रूप कारणों से स्कन्ध रूप हो जाते हैं। स्कन्ध टूटकर फिर परमाणु हो जाते हैं। इस तरह जीव पुद्गल में ही विभावपना होता है, शेष चार द्रव्य अपने स्वभावमें ही स्वभावरूप सदा परिणमन करते हुए ही रहते हैं। यदि जीव पुद्गल में विभावरूप होने की शक्ति

नहीं हानी तो ससार न होता । १ समार, का त्याग
मोक्ष होता । २

३१. पुद्गल के अनेक भेद कैसे बनते हैं
पुद्गल के मूल भेद दो हैं । परमाणु और द्रव्य ।

६ प्रदेश

आवृत्ति भावास अविभागः पुद्गलाणु बद्धः ।
तस्मिन् प्रदेशेनाणुसङ्गणुद्गमनादपरिह ॥ २७ ॥

भावार्थ—जितने आकाशको अविभागी पुद्गल प
घर, उसको प्रदेश जानो । इस में सूक्ष्म अनेक परमाणु
समा सबत हैं । जैसे जहाँ एक दीप प्रकाश हो वही
दीप प्रकाश भी समा सकत है ।

प्रदेश की संख्या —

होति नससा जीवे धर्मा धर्मे जनत मायामे ।

मुक्त सिद्धिपदसाकारस्तेषां सप्त मोक्षानाम् ॥ २५ ॥

भावार्थ—एक जीव, धर्म, अधर्म में असंख्य, भाव
जनित, पुद्गल में तीन प्रकार प्रदेश होत है । काल का
३ प्रदेश है इससे काय नहीं है । (द्रव्य म

भाववन्तो क्रियावन्तो जावेतौ जीव पुद्गलौ ।

तौ च दीप चतुष्टय पदेत भाव संसृता ॥ २५ ॥

भावार्थ—जीव पुद्गल क्रियावान् (चतुरूप) भी हैं
परिणमन सीख भी हैं । नोच चार केवल भाववान् हैं, क्रिया
नहीं हैं ।

अस्ति वैभाविकी शक्तिस्तच्छब्द द्रव्योप जाविनी ॥ ७४ ॥

(पचाव्यायी अ

भावार्थ—पुद्गल जीव में वैभाविकी शक्ति है ।

माणु अधिभागो होता है, उसमें एक समय में ५ विशेष गुण
मिलते हैं। टएहा गरम म से ठण, रुचे चिकने में से एक,
गंध रस, पक्व गन्ध, एक वर्ण। दो या अधिक परमाणुओं के
मिनो पर स्क्ध या थड़े स्क्ध से छुटकर छोटे स्क्ध
बनत रहते हैं। परमाणु या स्क्ध जब हमरे परमाणु या स्क्ध
म बंधत हैं तब रूमे या चिकना गुण के कारण से बंधते हैं।
जब चिकनाइ या रूपापन का अंश एक हमरे स दो अंश
अधिक होगा तब रूपा रूमे म, चिकना चिकने मे व रूपा
चिकने से बंधकर पर मेन हो जायगा व जिसमें अधिक गुण
होंगे वह हमरे को अपन रूप कर लेगा। एक अंश चिकनाई
या रूपापन जिस परमाणु में जिस समय रहेगा वह किमा से
बंधेगा नहीं। जैस किसी स्क्ध में ७५० अंश चिकनाई है,
दूसरे में ७६० अंश है, तब ही ये दोनों मिल कर एक बंध रूप
हो जायेंगे। ॐ

● वतमान मापस का यह पता लगाना है कि चिकनाई या
रूप पन क अंशों की जांच कैसे की जावे। स्वाभाविक नियम जैन
शास्त्रों में देसा कहा है—

गिद्धावा मुक्खा वा भग्नु परिणामा समवा विमसा वा ।

समसा दुराधिगात्रदि वस्तुनिदि आदि परिहाणा ॥

(प्रवचनमार् अ० २ पा० ७१)

मार्थ—बिहने या रूप परमाणु मर्म वा विसम दो दो गुन
अधिक हान स बंध जात हैं। जघन्यगुण बाधा नहीं बंधता है। आठ
पक्ष आदि सम, नी साव आदि विमम हैं।

इसी वध के नियम से अनेक जाति के स्कन्ध बनते रहते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के परमाणु भिन्न भिन्न नहीं हैं। मूल पुद्गल परमाणुओं से बने हुए ही यह विचित्र स्कन्ध हैं तथा यह परस्पर बदल जाते हैं। जैसे दैहोष्णन आक्सीजन हवा मिल कर जल हो जाता है व जल से हवा हो जाती है, पानी जम कर सख्त बर्फ हो जाता है, बर्फ का पानी हो जाता है। मेघ की बूद सोप के पेट में पड़ कर पृथ्वीमाय मोती बन जाता है, इत्यादि।

हर एक स्कन्ध में एक समय में मात्र गुण पाये जाते हैं, हलका या भारी, रुखा या चिकना, ठण्डा या गर्म, नर्म या कठोर, पेस ४ स्पर्श, रस १, गंध १, वर्ण १। इस वध के नियमों अनुसार हम ५ तरह के स्कन्ध प्रकट दीखने हैं।

१—स्थूल स्थूल (Solid)—जो दुरुद्धे होन पर बिना सीसरी चीज के न मिलें। जैसे पत्थर, लकड़ी, कागज।

२—स्थूल द्रवपदार्थ (Liquids)—जो अलग करने पर मिला जायें। जैसे दूध, पानी, शरबत।

३—स्थूल सूक्ष्म—जो आँखों से दारे, परन्तु हाथों से न पकड़ा जा सके। जैसे धूप, छाया, प्रकाश।

४—सूक्ष्म स्थूल—जो आँखों से न दीखे, परन्तु और इंद्रियों से जाना जाये। जैसे हवा, शब्द आदि।

५—सूक्ष्म—जो किसी भी इंद्रिय से न जाना जाये। इनके कारणों से इनका अनुमान किया जाय। जैसे तैजस वर्गणा

(Electric Molecule) फार्मण वर्गव्या (Harmic Molecule) आऱि ।

६—सूक्ष्मसूक्ष्म मेरु पुद्गा का परमाणु है। ‡

इन्हीं स्वर्णों के २२ भेद गोष्मटसार में कहे हैं, उनमें से पाच प्रकार के स्वर्णों से हमारा धाम सम्बन्ध है जिनका वर्णन आगे है।

३२. पुद्गलमय पाच शरीरों के कार्य

मसारा जीवों के निम्न निर्युक्त पाच तरह के शरीर
होते हैं —

भौदारिक—जो पंचेन्द्रिय से ले मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यक्षों (पशुओं) तक के स्थूल शरीर हैं।

वैक्रियिन्—जो बदला जा सक, यह देन और नारियों का स्थल गरीर है।

इ बादर बादर बादर मुदमच मुदम थूलैच ।

सुरमह सुहम सुहम चरादिय होदि छम्मेय ॥ ३०२ ॥

(गौतमदत्तसार जीवकाण्ड ७२)

हम गाथा का अर्थ ढूंढ आ गया।

सहो ब-धो सहजो धूलो महान भेद तम छाया ।

उत्तोदादय सर्दिथा पुणल दृष्यस्म पञ्जाया ॥ १६ ॥

(मध्य समाह)

भावार्थ—सम्यक्, वैज, सूक्ष्म, स्थूल, धारीराकार, क्षणिक, अस्थिर, छाया, उद्योत, अल्प, ये दश पुद्गल की अवस्थाओं के दशान्न हैं।

आहारक—यह श्वेत रङ्ग का पुरुषाकार एक हाथ ऊँचा
किसा तपस्वी मुनि के दशम द्वार मस्तक में निकल कर केवला
महाराज के दर्शन में जाकर लौट आता है।

ये तीन शरीर आहारक वर्गणाओं से बनते हैं।

तैजस—एक त्रिजलीमई सूक्ष्म शरीर है, जो सर्व ससारा
जीवों में पाया जाता है। यह तैजस वर्गणाओं से बनता है।

कर्मण—यह पाप पुण्यरूप आठकर्म मई सूक्ष्मशरीर
सर्वससारा जीवों के कामण वर्गणा से बनता रहता है।

इस समय हमारे पास तीन शरीर हैं—भौदार्तिक जिम
के छूटनेका नाम हो मरण है। तैजस और कर्मण ये प्रवाहरूप
से साथ रहते हैं, मुक्ति होने हुए ही छूटते हैं।

ये पाँचों शरीर एक दूसरे में सूक्ष्म हैं, परन्तु परमाणु
अधिक हैं। तैजस व कर्मण दो शरीरों को लिये हुए जीव
एक स्थूल शरीर में दूसरे में एक या दो या तीन समय के बीच
में लगातार बिना किसी रुकावट के तुरंत पहुँच जाते हैं। सबसे
छोटे काल का समय कहते हैं। जितना दूर में एक परमाणु एक
कालाणु से पास में। कालाणु पर मन्दगति से आता है वह समय
है। एक पलाक मारने में असम्यक्त समय बीत जाते हैं। ॥

ॐ भौदार्तिक वैश्वविकाराक तैजस कर्मणानिशरीराणि
॥ ३१ ॥ परम् परम् सूक्ष्मम् ॥ ३० ॥ प्रदशतोऽसंख्येय गुणम् प्राक्
तैजसात् ॥ ३८ ॥ अनन्त गुणेपरे ॥ ३९ ॥ अप्रतीघात ॥ ४० ॥
अनादि सम्बन्ध ॥ ४१ ॥ सत्यम् ॥ ४२ ॥ (त० सू० भ० २)

३३. मन और वाणी का निर्माण

जाबों के शब्द व वचन भी भाषावर्गणा जाति के स्कन्धों में आते हैं । ये स्कन्ध भी सब एक ही हैं । हमारे होठ तालु के समीप ही भाषावर्गणा में शब्द बन जाते हैं तथा इनकी तरंगें बहा कर जाता है जहाँ तक ध्वनि अपना पथ रखता है । शब्द भी भूर्तिज जड़ है, क्योंकि वह रुक जाता है । ऐसा ही मायन्म ने भी सिद्ध किया है । मन आग्न का ही तरह एक विशेष कर्मण के आकार हृदय के स्थान में मनोवर्गणा जाति के पुद्गल स्कन्धों से जनता है जो बहुत सूक्ष्म हैं व लोकम भरे हैं । जिन जीवा के यह मन होता है वे ही इसके द्वारा सर्व विसर्क कर सकते हैं व शिक्षादि ग्रहण कर सकते हैं । ‡

‡ शरीर वाग्मन प्राणपानाः पुद्गलानाम् ॥ १७ ॥

(स० सू० अ० ५)

भावार्थ—शरीर, वाणी, मन, स्वासोश्वास बनाना पुद्गलों का काम है ।

विकसिताष्टदल पद्माकारण हृदयान्तर्भाष्य भवति,

तत्परिणमणकारण मनोवर्गणा स्कन्धानाम् आगमनात् ।

(गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा २२९ संस्कृत टीका)

भावार्थ—द्रव्य मन मिले हुए आठ पत्तों वाले कमल के आकार हृदय के अन्दर होता है । उस मन के बनने के कारण मनोवर्गणा जाति के स्कन्ध आते हैं ।

द्रव्यमन पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् ।

(सपर्यायसिद्धि अ० ५ सू० १९)

भावार्थ—जो पुद्गल मनस्त्व से परिणमन करते हैं उनकी द्रव्य

३४ आस्रव तत्व

१ जिन आत्मा के भागों से घ हरकतों से पाप पुण्य मई कर्मण वर्गणा विचरर वध के लिय आती हैं उनको भावास्रव कहते हैं और कर्मवर्गणाओं का जो आगमन है उसको द्रव्यास्रव कहते हैं । ३

भावास्रव के पाच मुख्य भेद हैं —

(१) मिथ्यात्व—भूछ विरवास । इसके पाच भेद हैं —

१. एकांत—पदार्थ ॥ नित्य अनित्य दो स्वभाव होन पर भी एक ही मानना । आत्मा का सर्वथा शुद्ध या सर्वथा अशुद्ध ही मानना ।

२ विनय—सत्य असत्य का ज्ञान न करके सर्व ही विरोधा सिद्धांता से अपना लाभ मान के उनकी विनय करना । जैसे विना विचारे अरहन्त, बुद्ध, कृष्ण, शिव, राम, ईसामसीह, मुहम्मद आदि सब ही को पूजना ।

३. सशय—यह शङ्का रखनी कि जैन सिद्धांत ठीक है या बौद्ध या साह्य या नैयायिक । किसी का भा विश्वास न होना ।

मान कहते हैं । ऐसा ही कथन राजनार्तिक में इसी सूत्र की व्याख्या में है ।

ई भासवदि अणकम्मपरिणामेणप्यणो स विण्णेभो ।

भावास्रवो जिणुत्तो कम्मासवण परो होदि ॥ २९ ॥

(द्रव्यसमद)

४. विपरीत—विन्दु का धर्म विरुद्ध बात में धम मानना। जैसे पशुओं की बान में युक्त होना।

५. अज्ञान—धर्म के मिथ्यात्व को समझने की चेष्टा न करके दृष्टा दृष्टा सूर्यता में धर्म का चलना।

११. यद् वाच तरह का मिथ्यात्व प्रगट है तथा शुद्धज्ञाना तत्त्वज्ञान का विराम न करके मानसिक विषय सुख की मद्धा रहनी भा मिथ्यात्व है।

(२) अत्रिस्ति—वाच प्रकार है—दिसा, असत्य, चोरा, झूठी, पदार्थों में समता या परिग्रह।

(३) प्रमाद—अत्मज्ञान में अन्याय, इस प्रमाद के भेद १४ भेदों में से ८० प्रकार बनते हैं—५ इन्द्रिय, ५ क्रोधादिरूपाय, ४ विकथा (झी, मोहन, देरा, राजा), १ पित्रा, १ स्नेह।

इनको पापरगुणा करने से ८० भेद होते हैं। १ प्रमाद भाव में १ इन्द्रिय, १ कथाय, १ विकथा तथा पित्रा और स्नेह ये पाचों पाय जायेंगे। जैसे किसी ने जिह्वा के लोभ का चोरा करने का भाव किया, इसमें जिह्वा इन्द्रिय लोभ कथाय, मोहन विकथा, पित्रा य स्नेह पाचों हैं।

(४) कथाय—क्रोध, मान, माया, लालच, चार प्रकार।

(५) योग—ता प्रसारमा, कथा, पाय का दार चलना। इस तरह भावास्तव के ३२ भेद हैं।

६ मिथ्याता विरुद्धप्रमाद आगच्छेद्वाद्भोऽपविष्णोः ।

पञ्च पञ्च पञ्च दृष्ट त्विष अद्भुत कमगोभेद्वाद्भुत पुष्पस्य ॥ ३० ॥

(अन्त सम्पद)

धातव में आत्मा में एक योगशक्ति है जो पुद्गलों को र्सीचती है । जिस समय मा, यचा, पाय की त्रिया होती है सभी समय आत्मा मरुम्प हो जाता है तब ही योगशक्ति मिथ्या त्र आदि के कारण से विरोपरूप होता हुई कर्मों का और नो कर्मों (औदारिष आदि के बनने योग्य स्कंधों) को र्सीष लेती है ।

३५ उन्नतत्व

जिन आत्मा के भागों व हरफना में कर्म वर्गणावें जो र्सीधन का आइ हैं आत्मा के पूरे न र्सीधे हुए कर्मों के साथ मिल कर आत्मा क प्रदर्शों में ठहर जातो हैं उनको भावपध व कर्मों का यधरूप हारर ठहर जाने को द्रव्यपध कहते हैं । क

इस यधर चार भेद हैं—(१) प्रकृति यध—जो कर्म यधते हैं उनमें अपनयाम करनका स्वभाव पदना । ऐसी प्रकृतिया मूल आठ हैं व उनके भेद १४८ हैं । (२) प्रदेश यध—जो कर्म जिस प्रकृति के र्सीधें उनमें वर्गणावों की सख्या होना । (३) स्थिति यध—कर्मा का यध किसी काल की मर्यादा क लिए होगा । (४) अनुभाग यध—काल देते समय तीत्र या मन्दफा दना । मन, यचन, पाय यागों क निमित्ति व आत्मा के सकम्प होते हुए योगशक्ति के द्वारा तो

ॐ वज्रदि कम्म जल हु चेदण भावेण भावपधोसो ।

कममादपदसाण अण्णोण्णपवेसण इदरो व ३२ ॥

पहिल तो वध और क्रोधादि कषाय की तात्रना ग मन्त्रा के अनुमार पिछल तो वध होते हैं । †

३६ आठ कर्म प्रकृति व १४८ भेद

मूल कर्म प्रकृतिया आठ हैं—(१) ज्ञानावरण जो आत्मा के ज्ञान गुणको ढक (२) दर्शनावरण जो आत्मा के दर्शन (सामान्यजन देगन) गुण को ढके (३) वेदनीय जो नासारिक सुख दुःखों की सामग्री जोड़कर सुख दुःख का भोग करान (४) मोहनीय जो आत्माके भ्रष्टान और चरित्र (शान्ति) को बिगाड़े (५) ध्यायु जो किसी शरीर में आत्मा को रोक रखने (६) नाम जो शरीर की अच्छा बुरी रचना करे। (७) गोत्र जो ऊँच नीच कुल में जन्म करावे या ऊँचा नीचा कहलावे। (८) अन्तराय जो लाभ, भोग, स्वभोग, ज्ञान व आत्मा के उत्साह या वीर्य में बिछा करे।

इनमें से नं० १, २, ४ व ८ को धानिया कर्म कहते हैं क्योंकि ये चारों आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सम्यग्दर्शन और चरित्र तथा आत्मबल के गुणों का नाश करते हैं। शेष चार बाहरा नामग्री मोड़ते हैं। इसलिये वे अधातिया हैं।

इन के १४८ भेद इस तरह से हैं —

[१] ज्ञानावरण के पाँच भेद—१ मतिज्ञानावरण २

† पयस्विद्विदि भणुभागप्यदेमभेदा दु षड्विधो वधो ।

जोगा पयस्विपदेसा विदिमणुभागा वसायदो ह्योनि ॥ ३३ ॥

(द्रव्य समूह)

भूत ज्ञानावरण ३ अवधि ज्ञानावरण ४ मा पर्यय ज्ञानावरण
५ केवल ज्ञानावरण । ये क्रम से मति आदि ज्ञानों को
ढकना हैं ।

[२] दर्शनावरण का ९ प्रवृत्तिया—६ चक्षुर्दर्शनावरण
जो आँखों से सामान्य निराकार दर्शन को रोके ७ अचक्षु
दर्शनावरण जो आँख के सिवाय अन्य इंद्रिय और मन
द्वारा सामान्य अवलोकन को रोके ८ अवधि दर्शनावरण जो
अवधिज्ञान के पड़िले होने पाते दर्शन को रोके ९ केवल दर्श
नावरण जो पूरा दर्शन का रोके १० निद्रा जिस में कुछ
नींद ११ निगनिद्रा जिस से गहरी नींद हो १२ चला
जिससे पैर १३ ऊँचे १४ प्रचला प्रधला जिससे खुर ऊँचे, मुँह
से राल पड़े १५ त्वानगृद्धि जिस से नींद में कोई काम कर
लये और मो जाये ।

[३] वेदनोय की ७ प्रवृत्तिया—१५ सातावेदनोय जो
साताभोग करावे १६ अमाता वेदनाय जो दुःख भोग करावे ।

[४] मोहनाय की २८ प्रवृत्तिया—

१ दर्शमोहनीय का तीन—१७ मिथ्यात्व जिस से सच्चे
तत्वा में श्रद्धा न हो १८ सम्यग्मिथ्यात्व या मिथ्य जिससे सत्य
असत्य तत्वों में मिश्रित श्रद्धा हो १९ सम्यग्दर्श जिसमें सत्य
श्रद्धा म कुछ मन लगे ।

२ चारित्र मोहनीय की २५ प्रवृत्तियाँ—सोलह कपाय—
२० अनन्तानुबन्धी बोध जिस से सम्यग्दर्शन और स्वरूप में

आचरणरूप चारित्र का घात हो, ऐसे ही २१ अनन्तानुबन्धी मान २२ अनन्तानुबन्धी माया २३ अनन्तानुबन्धी लोभ । २४ अप्रत्याख्यानावरण क्रोध जिससे आरुगृहस्थ के व्रत न हो सकें, ऐसे ही २५ अप्रत्याख्यानावरण मान २६ अप्रत्याख्यानावरण माया २७ अप्रत्याख्यानावरण लोभ । २८ प्रत्याख्यानावरण क्रोध जिससे साधु के व्रत न हो सकें, ऐसे ही २९ प्रत्याख्यानावरण मान ३० प्रत्याख्यानावरण माया ३१ प्रत्याख्यानावरण लोभ । ३२ संश्रुतान क्रोध जिससे पूर्ण यथाख्यात चारित्र न हो सके, ऐसे ही ३३ संश्रुतान मान ३४ संश्रुतान माया ३५ संश्रुतान लोभ । नो कपाय या अल्प कपाय ३६ हास्य जिससे हंसी आवे ३७ रति जिससे इन्द्रिय विषयों में प्रीति हो ३८ अगति जिससे बुद्ध न सुझावे ३९ शोक जिस से शोच करे ४० भय जिससे डरे ४१ जुगुप्सा जिससे ग्लानि करे ४२ स्त्री वेद जिससे पुरुष से रमने की चाह हो ४३ पुरुषवेद जिससे स्त्री से रमने की चाह हो ४४ नपु सक वेद जिस से दोनों से रमने की चाह हो ।

[५] आयुष्य की चार प्रकृतियाँ—४५ नरक आयु जिससे नारकी के शरीर में रहे ४६ तिर्यच आयु जिस से एवेन्द्री में पंचेन्द्री पशुके शरीर में रहे ४७ मनुष्य आयु जिससे मानवदेह में रहे ४८ देव आयु जिससे देव शरीर में रहे ।

[६] नामकर्म की ९३ प्रकृतियाँ—४९ नरकगति—जिस से नरक में जाकर नारकी की अवस्था पावे ५० तिर्यच गति—

जिससे तिर्यच का दशा पावे ५१ मनुष्यगति—जिससे मनुष्य का दशा पावे ५२ दैवगति—जिससे देव का दशा पावे ५३, एक द्रव्यजाति—जिससे स्पर्शन इंद्रिय ज्ञान जीवा का जाति म जन्मे ५४ द्वान्द्विय जाति—स्पर्शन रसना दा इंद्रिय वानों की जाति म जन्मे ५५ ते इंद्रिय जाति—जिस से स्पर्शन, रसना, घ्राण, श्रोत्र इंद्रिय वालों का जाति पावे ५६ चतुर्गिन्द्रिय जाति—जिससे स्पर्श, रसना घ्राण, चक्षु चार इंद्रिय वानों का जाति पावे ५७ पंचेन्द्रिय जाति—जिससे वर्ण सहित पांचो इंद्रिय वाली जाति पावे । ५८ औदारिक शरीर—जिससे औदारिक शरीर बनन योग्य बगणा लकर वैसा शरीर बन ५९ वैत्रियिक शरीर—जिससे वैत्रियिक शरीर बन ६० आहारक शरीर—जिससे आहारक शरीर बन ६१ तैजस शरीर—जिस से तैजस शरीर बन ६२ कर्मण शरीर—जिससे कर्मण शरीर बन ६३ औदारिक आगोपाग पाङ्ग—जिससे औदारिक शरीर म आगोपाङ्ग बनें (१ मस्तक, १ पेट, १ पीठ, दो बाहु, दो टांग, एक कमर के नाचे का स्थान ये आठ अङ्ग होते हैं, इनके अशों को उपाग कहते हैं) ६४ वैत्रियिक आगोपाग—जिससे वैत्रियिक शरीर में आगोपाग बनें ६५ आहारक आगोपाग—आहारक शरीर में आगोपाग बनें ६६ निर्माण—जिससे आगोपाग का स्थान व भाग बन ६७ औदारिक शरीर बघन—जिससे औदारिक शरीर बनने योग्य पुद्गल का परस्पर मेल हो ६८ वैत्रियिक शरीर बघन—जिससे वैत्रियिक शरीर के बनने योग्य पुद्गल

फा मेल हो ६९ आहारक शरीर बधन—जिसमें आहारक शरीर
 के बधन योग्य पुद्गलता में हो ७० तैजस शरीर बधन—जिसमें
 तैजस शरीर के पुद्गलता में हो ७१ कर्मण शरीर बधन—
 जिसमें कर्मण शरीर के पुद्गलता में हो ७२ औदारिक शरीर
 सघात—जिसमें औदारिक शरीर की रचना में त्रिद्र रहित
 पुद्गल हो जायें ७३ वैक्रियिक शरीर सघात—जिसमें वैक्रियिक
 शरीर में पुद्गल काय रूप हों ७४ आहारक शरीर सघात—
 जिसमें आहारक शरीर में पुद्गल काय रूप हों ७५ तैजस शरीर
 सघात—जिस से तैजस शरीर में पुद्गल काय रूप हों ७६
 कर्मण शरीर सघात—जिसमें कर्मण शरीर में पुद्गल
 काय रूप हों ७७ समधनुस्त्व संस्थान—जिसमें शरीर का आकार
 सुदौर्ग हो ७८ स्थोमोऽपविमण्डल संस्थान—जिस से आहार
 बद्ध के समान ऊपर बड़ा और नीचे छोटा हो ७९ स्थाति
 संस्थान—जिससे माप की बँध के समान ऊपर छोटा और
 नीचे बड़ा आकार हो ८० कुञ्जर संस्थान—जिसमें पुंभुजा
 आकार हो ८१ वामन संस्थान—जिसमें बहुत छोटा पौना
 आकार हो ८२ हुङ्कर संस्थान—जिस से बेहोले आकार हो
 ८३ वस्त्र धृषम नाराच सदनन—जिससे नत्तों के जाल,
 हड्डियों की फालें व हड्डिया वस्त्र के समान हट्टे हों ८४
 वस्त्र नाराच सदनन—जिसमें फीलों और हड्डी वस्त्र के समान
 हों ८५ नाराच सदनन—जिसमें हड्डिया दोनों तरफ कीलों से
 हट्टे हों ८६ अर्ध नाराच सदनन—जिस में हड्डिया एक तरफ

कीटार ॥ ८७ कीटार सहा—जिस में दृष्टिया एक दूसरे में
 कीटा ॥ ८८ अमप्राणामृशटिका सहान—जिस से दृष्टिया
 मास में जुड़ी है ८९ वर्णश स्पर्श—जिस से शरीर का स्पर्श
 कठोर हो ९० मृदु स्पर्श—जिस से शरीर का स्पर्श कोमल
 हो ९१ शुक्र स्पर्श—जिस से स्पर्शभारी हो ९२ लघु स्पर्श—जिस
 में स्पर्श हटाया हो ९३ स्थिर स्पर्श—जिस में स्पर्श थिकना
 हो ९४ रुच स्पर्श—जिस में स्पर्श रुखा हो ९५ शीत स्पर्श—
 जिस से स्पर्श ठण्डा हो ९६ उष्ण स्पर्श—जिस से स्पर्श गर्म
 हो ९७ तिक्तरस—जिससे शरीर के पुद्मों का स्वाद कड़वा
 हो ९८ पटुर रस—जिससे चरपरा हो ९९ कषाय रस—जिस
 में कषायना ॥ १०० आम्ल रस—जिस से स्वाद खट्टा हो १०१
 मधुररस—जिससे माठा हो १०२ सुरभिगन्ध—जिससे गन्ध
 सुहावनी हो १०३ असुरभिगन्ध—जिससे गन्ध बुरी हो
 १०४ शुक्ल वर्ण—जिससे शरीर का रङ्ग सफ़ेद हो १०५ कृष्ण
 वर्ण—जिससे रङ्ग काला हो १०६ नील वर्ण—जिस से वर्ण नीला
 हो १०७ रक्त वर्ण—जिससे वर्ण लाल हो १०८ पीतवर्ण—
 जिससे वर्ण पीला हो १०९ नरकगत्यानुपूर्वी—जिससे नरकगति
 को जाने हुए पूर्व शरीर का आकार आत्मा विप्रहृति अर्थात्
 एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने हुए रहे ११० तिर्यश्च-
 गत्यानुपूर्वी—जिससे तिर्यचगति को जाने हुए पूर्वोकार रहे ।
 १११ मनुष्य गत्यानुपूर्वी—जिससे मनुष्य गति में जाने
 हुए पूर्वोकार हो ११२ दैवगत्यानुपूर्वी—जिससे देव गति

पाते हुए पूर्वाकार हो ११३ अगुरुलघु—जिससे न
 र बहुत भारी हो, १ बहुत हलका हो ११४ उग्रघात—जिससे
 १ अङ्ग ॥ अपना घात करे ११५ परघात—जिससे परका
 करे ११६ आतप—जिसमें शरीर मूल में ठण्डा हो, परंतु
 को प्रभा गरम हो जैसा सूर्यविमान के पृथ्वी कायिक जीवा
 ११७ चक्षोत्त—जिससे शरीर प्रकाशरूप हो, जैसा चंद्र-
 मान के पृथ्वीकायिक जीवों में व पटवीजन्ता आदि इंद्रिय,
 द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचोन्द्रिय जीवों में है ११८ उद्वास—
 ससे श्वास चले ११९ प्रशस्त विहायोगति—जिसमें आकाश
 शुभ गमन हो, १२० अप्रशस्त विहायोगति—जिससे आकाश
 गमन अशुभ हो १२१ प्रत्येक शरीर—जिससे एक शरीर
 स्वामी एक जाव हो १२२ साधारण शरीर—जिससे एक
 शरीर के स्वामी अनेक जाव हों १२३ ध्रम—जिससे इंद्रियादि
 में १२४ स्थावर—जिससे एकेन्द्रियम ज-मे १२५ सुभग—
 मस दमरा शरीर से प्रेम करे १२६ दुर्भग—जिसमें दमरा
 प्रप्राति करे १२७ सुस्वर—जिसमें स्वर सुहावना हो १२८
 स्वर—जिसमें स्वर असुहावना हो १२९ शुभ—जिससे सुदर
 रार हो १३० अशुभ—जिससे कुरूप हो १३१ सूक्ष्म—जिससे
 सा शरीर हो जो कहीं भी १ करे, न किमी से मरे १३२ घादर—
 जिससे शरीर रुक सके व बाधा पाने व दूसरे को रोक १३३
 र्याप्ति—जिससे आधार, शरीर, इंद्रिय, उद्वास, भाषा व मन,
 इन छहों के बनने की योग्यता जीवनगति में अतमुद्भूत में पा

सफ १२४ अपवाप्ति—जिससे आशरादि धान की याग्यता
न पकर अतर्मुहूर्त म हा मरण कर जावे १२५ स्थिर—जिससे
शरीर म वायु पित्त कफादि स्थिर हों १२६ अस्थिर—जिमम
पित्तादि स्थिर न हा १२७ आद्य—जिमस पभाधान शरीर हो
१ ८ अनाद्य—जिसम पभा रहित शरीर हो १२९ यश कर्ति—
जिमस यश हो १३० अवग कर्ति—जिममे अवग हा । १४१.
सार्थकर—जिमस सार्थकर होकर धर्म मार्ग फेलावे।

[७] गात्र कर्म का ११ प्रवृत्तियों—१४० उच्चगोत्र
जिमम हाऊ माननाय कुल म लम्मे १४३ नाच गात्र जिससे
होउनिध कुल म लम्मे ।

[८] अतराय कर्म का ५ प्रवृत्तिया—१४४ दानान्तराय
जिससे दान करना चाहे, पर कर न सके १४५ लाभान्तराय
जिस स लाभ लेना चाहे, पर ले न सक १४६ भोगान्तराय
जिसमे भोगना चाहे, पर भोग न सके १४७ उरभोगान्तराय
जिससे बार बार भागना चाहे पर भोग न सक १४८ धीर्यान्तराय
जिससे उरनाइ करे पर कुट्ट कर न सक । ॐ

ॐ साधो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोदनीयानुर्नाम गोप्रातराया
॥ ५ ॥ मनिधतानधिमतपर्व्यपवेज्जानाम् ॥ ६ ॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेय
हानो निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्वानयुद्धयश्च ॥ ७ ॥ सदम
द्वेष्टे ॥ ८ ॥ दशनचारित्र मोदनीयाकषायकषाय वेदनी राकषास्त्रिदिनव
षोढाभेदा । सम्पत्तमिध्यावतदुभयाचऽकषायकषायौ हास्परपरनि-
शोकमयशुभप्राप्तापनर्पुमकवेदा अनन्ताशुभप्यप्रथाकषासमस्याकषान

३७ आठ कर्मों में पुण्य पाप भेद

मूल आठ कर्मों में सात वेदनाय, उचगोत्र, शुभ नाम, शुभ आयु पुण्यकर्म हैं, शेष सत्र पापकर्म हैं।

१ १४८ म पुण्यकर्म

३ आयु कर्म की—तिर्यच, मनुष्य, म३ ।

६३ शुभ नामकर्म की—(१) मनुष्यगति (२) देवगति (३) पर्वात्रय जाति (४-१८) औदारिकादि ५ शरीर, ५५ ५, २ घात ४ (६-२१) तीनआगापाङ्ग (२०) समचतुरस्र सस्यान (२३) वज्र वृषभनाराच रुहमत (२४-४) शुभ स्पर्शादि (४४-४५) मनुष्य व देव गत्यानुपूर्वी (४६) अगुहाधु (४७) पर घात (४८) उद्धास (४९) आतप (५०) उद्योत (५१) विद्यायोगतिशुभ (५२) व्रत (५३) वादर (५४) पर्याप्ति (५५) प्रत्येक शरीर (५६) स्थिर (५७) शुभ (५८) सुमग (५९) सुस्वर (६०) आदेय (६१) यश कीर्ति (६२) निर्माण (६३) तीर्थद्वार ।

१ उचगोत्र, १ सातवेदनीय, यह सर्व प्रकृतिया ६८ पुण्य रूप हैं ।

सज्जनविषयपात्रैकधा प्रोचमानमायालोमा ॥ ९ ॥ गति जाति शरीराणापाङ्गनिर्माणवर्धन रुघातसुस्यान रुहमत स्पर्शरसगन्ध वर्णानुपूर्व्याङ्गुरुधूपघातपरघाता सपोद्योतोद्धासाविद्यायोगतय प्रत्येक शरीर व्रत सुमग सुस्वर शुभ सूम्प पर्याप्ति स्थिरात्रय यशः कीर्ति सेत- राणि तीर्थद्वारा च ॥ ११ ॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥ दान शोभ मोगो- पमोग धीर्याणाम् ॥ १३ ॥ (सरयाधमूत्र म० ८)

शेष ४७ पातिया कर्मों की, १ असाक्षावेदनोय, १ नीच गोत्र, १ आयु व ५० नामकर्म की कुल १०० पाप प्रकृतिया हैं। यदास्पर्शादि २० को दो जगद् भित्तन से १६८ प्रकृतिया होती हैं।

नोट १—ऊपर कर्म क भेदों में निमाण को दो व विहा योगति को एक गिना था। यदा पुनश्च पाप में विहायोगति को शुभ व अशुभ दो रूप गिन क निर्माण को एक गिना है। ❀

नोट २—कर्मों की विस्तृत व्याख्या के लिये दसो “आ वृहत्सूत्रैराराधार्ण्य” भाग १ शब्द ‘अपातिशकर्म’ पृष्ठ ७९-८५

३८ प्रदेश-स्थिति-अनुभागवध

हर एक समारो जाव के सब तक बह अर्हत पदनी के निकट न पहुँच, सानों कर्मों व बंधन योग्य अनंत कार्मण धर्म एाएँ हर समय में आती रहती हैं, आयु कर्म व योग्य हर समय में नहा आता। इस कर्म भूमि व मनुष्य व तिर्यचों के लिये आयु कर्म के वध का यह नियम है कि जितना आयु हो उसके दो तिहाइ धातन पर अन्तर्मुहूर्त के लिये आयु बंध का समय आता है। उसम बाधे या न बाधे, फिर शेष आयु में दो तिहाइ धातने पर दूसरा अवसर आता है। इसी तरह आठ अरसर आते हैं। यदि कोई इनम भी न बाध तो मरण स अन्तर्मुहूर्त पहले आगे व लिये आयु कर्म अरश्य बाधा जाता है। जैसे किसी की आयु ८१ वर्ष की है तो ५४ वर्ष बीतने पर पहला

किर २७ में से १८ वर्ष बोलने पर दूसरा अवसर आयगा; इसी तरह समय लेना ।

उन कर्म वर्गों का जो एक समय में आता है जितनी प्रकृतियाँ बधती हैं, उनमें हिस्सा होता है—यही प्रवेशनध है। आत्मा से कर्म सब तरफ बधने हैं, किसी एक खास भाग में नहीं। ❀

जितनी कर्म प्रकृतियाँ बधती हैं उनमें काल की मर्यादा पड़ती है। यह स्थिति बध उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य क्रोधादि कषायों के आधीन पड़ता है। आठों कर्मों की उत्कृष्ट व जघन्य स्थिति निम्नप्रकार है, मध्य के अनेक भेद हैं,—

कर्म	उत्कृष्ट	जघन्य -
१ ज्ञानावरणीय	३० कोड़ाकोड़ी सागर	अतर्मुहूर्त
२ दर्शनावरणीय	३० " "	" "
३ घेदनीय	३० " "	१२ मुहूर्त
४ मोक्षनीय	७० " "	अतर्मुहूर्त
५ आयु	३३ भागर	अतर्मुहूर्त
६ नाम	२० कोड़ाकोड़ी सागर	आठमुहूर्त
७ गोत्र	२० " "	" "
८ अंतराय	३० " "	अतर्मुहूर्त

* नाम प्रत्ययः सर्वतो योग विशेषाभ्युदयैक होवावगाढ स्थिताः सर्वाणामपदेनैव नतानैव प्रदेशाः ॥ २३ ॥ (सर्वा० अ० ८)

कोई कर्म वर्गणात् अपना स्थिति से अधिक बंधी हुई नहीं रह सकती हैं, अवश्य भङ्ग आयेंगी ।†

नोट—अन गिन्तो वर्षा को मागर कहते हैं ।

इहीं बधते हुए कर्मात् कषाय के निमित्त से तीव्र या मंद फल देनेकी जो शक्ति होजाता है, उसे अनुभाग कहते हैं ।

हानावरणीय आदि चार घातिया कर्मोंका अनुभाग शता (बेल), दारु (काष्ठ), अस्थि (इह्डी), पायसके समान मन्दतर, मंद, तीव्र, तीव्रतर पड़ता है । अघातिया कर्मों में जो असाता आदि पाप कर्म हैं उनका अनुभाग नीम, फांसी, विपश्चिताहल के समान मन्दतर, मंद, तीव्र, तीव्रतर कटुक पड़ता है । अघातिया कर्मों में माता आदि पुण्य कर्मा का अनुभाग गुड़, खाइ, शर्करा, अमृत के समान मन्दतर, मंद, तीव्र, तीव्रतर मधुर पड़ता है । आयु कर्म को छोड़ कर मातृ कर्मों की स्थिति यदि कषाय अधिक होगी तो अधिक पड़ेगी, कम होगी तो कम पड़ेगी परंतु पाप कर्मों का अनुभाग तीव्र कषाय से अधिक पड़ेगा, मंदकषाय से कम पड़ेगा । पुण्य कर्मों का अनुभाग मन्द कषायसे अधिक व तीव्र कषायसे अल्प पड़ेगा ।

† आदित्यस्मृत्यामन्तरायस्य च त्रिशत्साधरोपम कोटी कौट्य-
परस्थिति ॥ १४ ॥ सप्तनिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥ त्रिशतिर्नाम
गोत्रयो ॥ १६ ॥ त्रायस्त्रिंशत्साधरोपमाख्यायुष ॥ १७ ॥ अपरा द्वादश
सुहृतां वेदनीयस्य ॥ १८ ॥ नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥ शेषाग्रामस-
सुहृता ॥ २० ॥ (सत्या० अ० ८)

मन्द कषायसे शुभ आयु का स्थिति अधिक होगी, तीव्र कषाय से कम। ऐसे ही तीव्र कषायसे अशुभ आयु की स्थिति अधिक होगी और मन्द से कम। ❀

३६. आठों कर्मों के चर के विशेष भाव

यद्यपि शुभ या अशुभ मार्गों से हर समय हर एक जीव के आठ या सात कर्म की प्रकृतियों का सम्बन्ध होता है, तथापि जिस जाति के विशेष भाव होते हैं उन भावों से उस विशेष कर्म में अधिक अनुमान पड़ता है। वे विशेष भाव नीचे प्रकार जानना चाहिये —

१. ज्ञानावरण और दर्शनावरण के विशेष भाव—

१ सच्चे ज्ञान व ज्ञानियों से द्वेष भाव २ आप ज्ञानी हो करके भी अपने ज्ञान को छिपाना ३ ईर्ष्या से दूसरों को ज्ञान दान न करना ४ ज्ञान की उन्नति में विघ्न करना ५ ज्ञान व ज्ञानी का अविनय करना ६ उत्तम ज्ञान का भी कुयुक्ति से प्रयत्न करना।

२. असाता वेदनीय कर्म के भाव—

अपने को आप या दूसरों को या आप पर दोनों को १ दुःख देना २ शोषित करना ३ परचाटाप करना (किसी वस्तु के छूटने पर व न मिलने पर पछताना) ४ कलाना ५ मारना ६ ऐसा कलाना कि दूसरों को दया आ जावे।

३. साता वेदनीय कर्म के भाव—

(१) सर्वप्राणामात्र पर दयाभाव (२) ग्रन्थ धर्मशास्त्रों पर विशेष दया भाव (३) आहार औषधि, शिक्षा व अभय या प्राणदान, ऐसे चार दान करना (४) माधु का धर्म प्रेम महित पालना (५) आयुक्त गृहस्थ का धर्म पालना (६) समताभाव में दुष्ट सहलेना (७) तपस्या करना (८) ध्यान करना (९) शुभा भाव रखना (१०) पवित्रता या सत्तोपररचना ।

४. दर्शन मोहनीय बन्ध के विशेष भाव—

१ कबजि अरहन्त भगवान की मिथ्या बुराई करना २ सच्चे शास्त्रों में झूठा दोष लगाना ३ मुनि, आर्यिक, आचर्य, भारिका के सङ्ग में मिथ्या दाप लगाना ४ सच्चे धर्म की बुराई करना ५ देवगति के प्राणियों की मिथ्या बुराई करना कि देवता गण मांस खाते हैं आदि ।

५. चारित्र्य मोहनीय बन्ध के भाव—

क्रोध, मान माया, लोभ रूप कपाय भावों में बहुत तोयता रखनी ।

६. नरक आयु बन्ध के विशेष भाव—

मर्यादा से अधिक बहुत आरम्भ व्यापार करना और संसार के पदार्थों में अध होकर समत्व रखना ।

७. तिर्यच आयु बन्ध के भाव—

परिणामों में झुटिलाई या मायाचार रखना ।

८. मनुष्य आयु बन्ध के भाव—

मर्यादा रूप थोड़ा आरम्भ व अन्त का क्रम संतुल्य
मन्य रचना तथा स्वभाव में सामत और स्थिर रहना ।

९. देवआयु के बन्ध के विशेष भाव—

१. सङ्गदर्शन अर्थान् मन्त्रों में विष्णु मन्त्र २,
मायु का समय ३. प्रायक का समय ४. मन्त्रमय में शुद्ध मन्त्र
५. सन्ध्या करना आदि ।

१०. अशुभ नाम कर्म के भाव—

१. मन की कुटिल रचना २. बदन मन्द और कुटिल
बोना ३. शरीर की कुटिलता से व बदन में कर्तव्य / कर्तव्य
और लड़ाई करना ।

११. शुभ नाम कर्म के भाव—

१. मन में मीठापन रचना २. बदन मन्द, निहारी
बोना ३. काय की सरल कुटिलता रहित और मन्दान
करक प्रेम रचना ।

१२. तीर्थदूर नाम कर्म के विशेष बन्ध—

नीचे लिखी १३ प्रकार का कर्मों के बन्ध भाव में
करना —

१. दशान् विष्णुदि, हमाता व विष्णुदि २. विष्णु
मन्त्राना, हम धर्म व धर्मियों में कर्तव्य, शीघ्र दान
कार, हम शान और प्रती में शानार्थ व धर्म
पयोग, हम महा शान का अन्तर्गत व धर्म ।

शरीर भोगों से वैराग्य रखें ६ — शक्तिरस्त्याग, हम शक्ति ७ द्रिषा कर दान वरत रह ७ शक्तिनस्तप, हम शक्ति न द्रिषाकर तप करत रह ८ साधुसमाधि, हम साधुओं का कष्ट दूर करते रहें ९ वैराग्य, हम गुणगाना की सेवा करते रहें १० अहंभक्ति, हम अहंताओं का भक्तिपूजा न रत रह ११ आचार्य भक्ति, हम गुरु महाराजों की भक्ति करते रहें १२ उपाध्याय भक्ति, हम ज्ञानदाता साधुओं की भक्ति में रत रह १३ प्रवचन भक्ति, हम शास्त्र की भक्ति न दत्त चिन्त रहें १४ आग्रयकापरिहाण, हम अपन नित्य धर्म कृत्य को न छोड़ें १५ मार्ग प्रभावना, हम सच्चे धर्म की वन्नति करते रहें १६ प्रवचनवात्सल्य, हम सर्व धर्मात्माओं से प्रेम रहें ।

१३. नीच गोत्र बन्ध के विशेष भाव—

१ दूसरों की निन्दा करनी २ अपना प्रशंसा करनी ३ दूसरों के हाते हुए गुणों का ढकना ४ अपन न होते हुये गुणों को प्रकट करना ।

१४. ऊँच गोत्र बन्ध के भाव—

१ दूसरा की प्रशंसा करनी २ अपनी निन्दा करनी ३ दूसरों के गुणों को प्रकट करना ४ अपने गुणों को ढकना ५ विनय से बर्ताव करना ६ उद्धतता या मान नहीं करना ।

१५. अन्तराय कर्म बन्ध के भाव—

१ दान दते हुए को मना करना २ किसी को कुछ लाभ हाता हो वम में विघ्न कर दना ३ किसी के श्वाभ पीने आदि

भोगों में अन्तराय करना ४ क्रिमी के वस्त्र, मकान, हथो आदि
 पार २ भोगने योग्य पदार्थों का वियोग करा देना ५ किन्ना अच्छे
 काम के उत्साह को भङ्ग कर देना । †

४०. आश्रय और बन्ध का एक काल

जिन समय कर्म वर्गणायें आती हैं उसी समय बंध आता
 है। आश्रय और बंध के लिए कारण एक ही हैं। जिन मिथ्या
 दुरांत, अवरति, प्रमाद, रुपाय, योगों से आश्रय होना है, वनही
 से बंध होना है। जैसे नाव के छेद से पानी आना जाता है वैसे
 ही ठहरता जाना है। पानी के आने व ठहरने का एक ही द्वार है।
 इसा तरह कर्मों के आने और बंधने का एक ही कारण है। कार्य
 दो हैं जैसे पानी का आना और ठहरना, वैसे कर्म वर्गणायों का
 आना और बनना ठहरना। जिस समय जो आश्रय रुकता है
 उन्ही समय वह बंध भी रुकता है। जब छेद से पानी आवेगा
 नहीं, तो नाव में ठहरना भी नहीं।

४१. कर्मों के फल देने की रीति

कर्मों में जो स्थिति पड़ जाती है उसके भीतर हा के
 अपना फल देकर गिरते जाते हैं। जिस समय कर्म बंधते हैं
 उसके कुछ ही देर पीछे वे अपना फल देना प्रारम्भ करते हुए
 सदा तक मर्यादा पूरी न हो फल दिया करते हैं।

जितनी वर्गणायें जिस कम प्रकृति को धरती हैं वे बट

जाती हैं और थोड़ी-० हर समय फल प्रगट कर या न प्रगट कर गिरती जाती हैं। जिस समय सब फल नहीं देती उस समय का नाम आयाधा काल है। इसका हिमाय यह है कि यदि स्थिति एक कोड़ा कोड़ी सागर की बांधी हो तो सौ वर्ष का आयाधा काल है। यदि अन्त कोड़ा कोड़ी सागर की स्थिति हो जो एक करोड़ सागर से ऊपर है तो आयाधा केवल एक अतर्मुहूर्त आवेगी। यदि हजार सागर की हो व एक सागर की हो तो बहुत ही कम समय आयगा। कम से कम एक आयली (पनाक मारने के समान) काल पीछे ही कर्म अपना फल दे सवेंगे। जैन सिद्धांत में यह नियम नहीं है कि पूर्व जन्म का ही फल इस जन्म में हो व इस जन्म का भाग्य में हो। इस जन्म का भाग्य कर्म इस जन्म में भी फल दे सखा है व देखा है व आगामी भी देगा व पूर्व जन्म में बाधा हुआ पहले भी फल दे चुका है व अब भी दे रहा है व अब तक स्थिति पूरी न होगी दवा रहेगा। यह बात ध्यान में रहे कि जैसा बाहरी निमित्त होगा वैसा कर्म फल देगा और जिस कर्म का बाहरी निमित्त न होगा वह कर्म अपने समय पर बिना फल दिखाय चला जायगा। जैसा हमारे साथ क्रोध, मान, माया, लोभ, चारों कषायों का फल हर समय होता चाहिये अर्थात् इन कषायों की वर्गछायें हर समय गिरनी चाहियें। हम यदि १० मिनट तक आत्मध्यान में लय हो गये तो वे कर्म तो गिरते जायेंगे परन्तु हमारे म क्रोधादिभाव न मलवेंगे, अथवा प्रगट है कि क्रोधभाव, मानभाव, मायाभाव, लोभभाव, एक

साथ नहीं होने—आगे पीछे होने हैं। जिन समय क्रोधभात्र हो रहा है उस क्रोध की वर्णणाएँ तो फल देकर और शेष तीन कपायों का वर्णणाएँ बिना फल देकर मद्ध रही हैं। किसी जीव के माता वेदनीय असातावेदनीय दोनों अपने समय पर गिर रही हैं। यदि हम सकट में पड़े हैं व भूख से दुग्नी हैं तब अमाताफल देकर व साता बिना फल दिये मद्ध रही हैं। जिन कर्मों में बहुत तीव्र अनुभाग होता है वे अपने निमित्त अपने अनुकूल करके फल होते हैं, परंतु जिनमें उनका सीध अनुभाग नहीं होता है वे निमित्त अनुकूल न होने पर बोहो मद्ध जाने हैं। कर्मा क फल देने में हममें अपने स्थूल औदारिक शरीर का दृष्टाव सामने रख लेना चाहिये। हम आप ही गत्य भोजन, पान, दवा लेते हैं, आप ही उससे रुधिर धीर्यादि बनाते हैं, आप ही उससे शरीर में बन पाते हैं और काम करते रहते हैं। कोई रोगकारी पदार्थ ला लिया था, उससे परमाणुओं द्वारा रोग पैदा होना चाहिये, परंतु हम पीछे ऐसे सयोगों में हैं, जिनमें रोग नहीं हो सकता तो वे रोग पैदा करने वाले परमाणु योंही गिर जावेंगे अथवा कोई पौष्टिक औषधि लाई थी उससे पुष्टि होनी चाहिये, किन्तु हम किसी समय निर्धनता के सयोगों में पड़ गये—पान तो दो दिन तक और भोजन ७ मिला—तो वह पुष्ट औषधी के परमाणु उस समय पुष्टि न कर योंही गिर जावेंगे। जैसे कोई औषधी चार दिन, कोई चार मास कोई चार बरस में फल दिवाती है, ऐसे कर्मों में है।

हम पाँदल बना चुके हैं कि कोई परमात्मा हमको ज्ञान देने के समझे में नहीं पड़ता—स्वाभाविक नियम में ही हम आप ही कर्म पाँधते और आप ही ज्ञान भागते हैं, जैसे हम आप ही मदिरा पीते हैं, आप ही वेदना भी आते हैं ।

एक ऐसे कर्म बाध लेने के पीछे जैसे हम अपने अनुम भावों से ज्ञान कर्मों को स्थिति से पाप कर्मों के अनुभाग को बढ़ा कर पुण्य कर्मों के अनुभाग को कम कर सकते व पुण्य कर्मों को पाप कर्मों में बदल सकते हैं, वैसे ही निम्न भावों में स्थिति को घटा दते, पुण्य कर्मों में अनुभाग बढ़ा सकते तथा पाप कर्मों का अनुभाग कम करते तथा पाप कर्मों को पुण्य में बदल सकते हैं, जैसे कि कोई खड़ीया पदार्थ गिरा के बाद फिर उसका विरोधी स्थलों से उसका असर दूर जाना या कम हो जाता है । जो कर्म देर में फल देने वाले थे वे बाहरी निमित्त पाकर जल्दी भी फल दे देते हैं । मुख्य हमारा पुरुषार्थ है ।

४२ पुरुषार्थ और देव का स्वरूप

आत्मा के गुणों की कर्मों के दब जाने से व नारा हो जान से जिनकी प्रगटता होती है उसका पुरुषार्थ कहते हैं तथा जिनका कर्म अपना फल देता रहता है उस फल को देव कहते हैं । वास्तव में पुरुषार्थ आत्मा का गुण है देव ही पुण्य पाप है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का बुद्ध या बुद्ध अमर सच जीवों के कम रहता है अर्थात् इस का ज्ञानोपराम होता है । इस निम्न आत्मा में ज्ञान, दर्शन, बोध की थोड़ी या अधिक प्रगटता

रहा करती है। यही पुरुषार्थ है। अज्ञानों के मोहनीय कर्म दयता नहीं है। जानों के जितना दयता व नाश होता है उतना निर्मल भद्रान व शान्तभाव अर्थात् सम्यक्त्व व चारित्र्य गुण आराम वा प्रकट होता है। यह भी पुरुषार्थ है।

चार अपातिया कर्म जब तक निष्कूल नाश नहा होते, फल ही देते रहते हैं। इसलिए वे निरुत्तम देव कहलाते हैं।

। हमारा कर्तव्य यह है कि जितना ज्ञान व आत्मफल हमारा प्रगट है उससे विचार कर हम व्यवहार करें। जैसे हमने किसी व्यापार को विचार के साथ किया, उसमें यदि सातावेदनीय का उदय होगा व अन्तराय का न होगा तो धन का समागम होजायगा। यदि लाभ न हो वो समझना चाहिये कि अमातावेदनीय और अन्तराय कर्म रूपी देव का फल है। अपना पुरुषार्थ न करके देव के भरोसे बैठना भूर्लता है, क्योंकि अपातिया कर्म निमित्त होने पर हा अपना फल दे सकते हैं। यदि हम कोई व्यापार न करें, खाली बैठे रहें वो साता वेदनीय से जो धन आता सो बिना कारण क नहीं आसकेगा। एक बात याद रखना चाहिये कि जिस किसी को बहुत तीव्र पुण्य व पाप कर्म का उदय होता है उसके अकस्मात् लाभ या अलाभ भी हो जाता है। जैसे कोई बालक शरीर के यदा पैदा हुआ और किसी धनवान की गोश चला गया व धनवान के यदा पैदा हुआ और पैदा होते ही पिता निर्धन होगया।

अपने भावों को कषाय रहित करने का पुरुषार्थ हमको

सदा करते रहना चाहिये अर्थात् धीतराग मई जैनधर्म का माधन करते रहना चाहिये। इसमें हम अपना फल देने वाले देव को घुरे में अच्छा कर सकेंगे व यदुक्त में पापों का तारा भी कर सकेंगे। धर्म पुरुषार्थ से हम कभी बेखबर न रहना चाहिये।

४३. सवर तत्त्व

हम आसन्न और बन्धवत्त्व के कथन में यह बात दिखा चुके हैं कि आत्मा किस तरह अगुस्त या बद्ध हुआ करता है। अब यह ध्याय कर्तव्य है कि हम बंधन का मुक्त कैसे हों। जैसे तब म पानी जिस छेद से आता हो उसको बंद करने से पानी न आवेगा, वैन जिन् भावों से कर्म आते हैं उन को रोक देने से कर्म न आवेंगे। इसलिये जिन भावों से आसन्न भावों को रोक जाता है वह भाव सवर हैं और वर्गणाओं का रुकजाना सो द्रव्य सवर है।†

सामान्य से मिथ्यात्व के रोकने के लिये सत्यदर्शन, अधिरति के हटाने के लिये प्रती का पालन, प्रमार् हटाने के लिये अप्रमत्त भाव, कषाय के दूर करने के लिए धीतरागभाव, योग बलता के मिटाने के लिये मन बधन, काय का निरोध, भाव सवर है।

त्रयोपता से भाव सवर पाच प्रवृत्ति, पाच संमिति, तीन गुणित, वरानात्तण धर्म, वारह भावना, पार्स पंरीषद् जीवन्त

† चेदण परिणामो जो

व पाच प्रकार के चारित्र्य में होता है । ७ यह भी जानना चाहिए कि यह पुरुषार्थी जितना २ आत्मव भाव बढ़ाता जायगा उतना २ संवर होता जायगा । जैसे किसी ३ मिथ्यात्व व अनन्तानुर्वन्धी कषाय हटा दिया तो मिथ्यात्व आदि के कारण जो कर्म बंधते थे सो न बँधेंगे, शेष अविरति आदि चार कारणों में बंधने रहेंगे ।

४४ पाँच व्रत

(१) अदिमात्रत—प्रमाद या कषाय सहित भावों से अपने या दूसरों के भावप्राण (चेतना, शक्ति आदि) और द्रव्यप्राण (इन्द्रिय बल आदि) का नारा करना व उनसे पीड़ित करना हिंसा है—इसका अभाव 'सौ अहिंसा' है । जिस समय हमारे में क्रोध भाव हुआ, उसी समय हमने अपने भावप्राण ज्ञान व शक्ति को बिगाड़ा और शरीर के बाको घटाकर अपने द्रव्यप्राण धामे, फिर क्रोधवश हमने दूसरे को हानि पहुँचाई । तब दूसरे ने यदि कुछ भी न गिना तो उसके भावप्राण रक्षित रहे पर शरीर व धन की हानि करने में द्रव्यप्राणों में हानि हुई, परन्तु हम सो हिंसक हो चुके । हमारी लाठी मारने से दूसरा बच गया तो भी हम हिंसक होगये । जिसके द्रव्यप्राण अधिक हैं व अधिक उपयोगी हैं उससे घातम कषाय भाव भी प्रायः अधिक होगा, इसमें हम हिंसा के भागी अधिक होंगे । जैसे मनुष्य के दश प्राण हैं व उपयोगी हैं इससे मनुष्य

७ यह समिदी गुणोको धर्माणु विदा परीसहनभो य ।
चारित्तकुरुमेव जायन्त्या भावसरर वितेसा ॥ ३५ ॥

[द्रव्यरुपाद]

घात से विशेष पाप होगा। जलादि एकेन्द्रिय जीवों के आरम्भ बिना काम नहीं चल सकता, इस सद्बुद्धि हिंसा से कपाय कम होने से पाप कम है। वास्तव में जहा कपाय है, वहाँ भाव व द्रव्य प्राणकी हिंसा है। जहा कपाय नहीं, वहा भाव व द्रव्य हिंसा नहीं है। ❀ जितने हिंसा छोड़ेंगे उतना सबर होगा।

(२) सत्यव्रत—प्रमाद सहित होकर हानिकारक वचन कह दना सो असत्य है। अमत्य का त्याग सो सत्य है।

(३) अचौर्यव्रत—प्रमाद सहित होकर दूसरे की वस्तु गिरी पड़ी भूली चिसरी चठा सेंगा व बिनकी छुड़ लेना चोरी है। चोरी का त्याग अचौर्यव्रत है।

(४) ब्रह्मचर्य—मैथुन करना अमद्य है। अमद्यका त्याग ब्रह्मचर्य है।

(५) परिग्रह त्याग—चतन अचेतन पर पदार्थों में मूर्छा अमत्य करण परिग्रह है। उसका त्याग परिग्रह त्यागव्रत है। क्योंकि धन धान्यादि परिग्रह क कारण हैं, हमनिष्ठ इनके भी

❀ प्रमत्त योगाध्याय व्यपरीक्षण हिंसा ॥ १३ ॥

(तात्प० म० ०)

अप्रादुर्भावः कलु रागादीनां भवत्पदिसेति ।

तपामेवोत्पत्तिरिति त्रिगुणमस्य कैक्षप ॥ १४ ॥

(पुद्गल सिद्धयुक्त)

अर्थात्—प्रमाद सहित मन, वचन, काय से प्राणों का पीदन हिंसा है। निदचय ॥ रागादि भावों का न मगट होना, अहिंसा है तथा उनही का पैदा हो जाना हिंसा है, यह तीन शास्त्र का सुझाव है।

स्थाने से पारम्भ स्थान होता है, इन पाचों अर्थों को जितना पाला जायगा उतना सफल होगा । ॐ

४५. पांच समिति

अहिंसा की रक्षा के लिए साधुजन नीचे लिखी पांच समितियों का पालन हैं —

१ ईर्ष्यासमिति—दिनमें तत्तु रहित भूमि पर चार हाथ आग हुक्कर चलना २ भाषा समिति—शुद्ध बचन निर्दोष पो-
लना ३ उपवाससमिति—शुद्ध भोजन जो गृहस्थ ने अपने कुटुम्ब
के लिए तैयार किया हो, उमम से भिक्षारूप जाकर भक्ति
से दिये जाने पर लेना ४ आदान निक्षेपन समिति—अपना
सारा व अन्य वस्तु जो कुछ भी कठोर व रखना मो देकर
आदर व उठाया रखना ५ उत्सर्गसमिति—मल मूत्रादि जाव
रहित स्थान पर करना । १

४६. तीन गुप्ति

१ मनोगुप्ति—मांकी बचलता को गोककर बसे धर्म-
ध्यान में लीन रखना, सांसारिक भावनाओं से अनग रखना ।

२ वचनगुप्ति—मौन रहना ।

३. कायगुप्ति—शरीर का निरचन रखना । १

ॐ अमरविधानमनुसूत ॥ १४ ॥ अद्वितीय स्तेय ॥ १५ ॥

सैधुनमवस्था ॥ १६ ॥ मूर्च्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥ (तत्प्रा० अ० ७)

ईर्ष्याभावैक्यादान निक्षेपणोत्सर्ग समितयः ॥ ५ ॥ (तत्प्रा० अ० ९)

१ सत्प्रायोग नियमोक्तः ॥ ४ ॥ (तत्प्रा० अ० ९)

घात से विरोध पाप होगा। जलादि एकेन्द्रिय जोश के आरम्भ बिना काम नहीं चल सकता, इस से इनकी हिंसा से कषाय कम होने से पाप कम है। वास्तव में जहा कषाय है, वहाँ भाव व द्रव्य प्राण की हिंसा है। जहा कषाय नहा, वहा भाव व द्रव्य हिंसा नहीं है। ॐ अतः ही हिंसा छोड़ेंगे उसना सवर होगा।

(२) सत्यव्रत—प्रमाद सहित होकर हानिकारक वचन कह देना सो असत्य है। असत्य का त्याग सो सत्य है।

(३) अचोयव्रत—प्रमाद सहित होकर दूसरे की वस्तु गिरी पड़ी मूली पिसरी चठा लगा व बिनही हुई लना चोरी है। चोरी का त्याग अचोयव्रत है।

(४) ब्रह्मचर्य—मैथुन करना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का त्याग ब्रह्मचर्य है।

(५) परिग्रह त्याग—चेतन अचेतन पर पदार्थों व मूर्खों ममत्व करना परिग्रह है। उसका त्याग परिग्रह त्यागव्रत है। क्योंकि धन धायादि परिग्रह के कारण हैं, इसलिए इनके भी

ॐ समच योगास्थान व्यपरोपण हिंसा ॥ १३ ॥

(तात्पर्य • अ० ७)

अत्रादुर्भावः कस्तु रागादीनां भवत्यदितेति ।

तेषामेवोत्पत्तिरितेति विनागमस्य संक्षेप ॥ ४४ ॥

(शुद्धपाथ सिद्धयुपाय)

अर्थात्—प्रमाद सहित मन, वचन, काय से प्राणों का पीदन हिंसा है। निश्चय स रागादि भावों का न मगट होना, बहिंसा है तथा उनही का पैदा हो जाना हिंसा है, यह तीन धारम का खुलासा है।

त्यागने से परमार्थ त्याग होता है, इन पाचों ऋतों को जितना पाना जायगा उनना सबर होगा । ६३

४५. पांच समिति

अहिंसा की रक्षा के लिए साधुजन नीचे निम्नी पांच समितियों का पालने हैं —

१. ईर्ष्यासमिति—दिनमें तत्तु रहित भूमि पर चार हाथ भाग दबकर चलना २ भाषा समिति—शुद्ध वचन निर्दोष बोलना ३ एष्यासमिति—शुद्ध भोजन जो गृहस्थ ने अपने कुटुम्ब के लिए तैयार किया हो, उमस में भिक्षारूप आकर भक्ति से दिय जाने पर लेना ४ आदान निश्चेपन समिति—अपना शरीर व अन्य वस्तु जो कुछ भी बठाना व रखना सो देल कर काढकर बठाना रखना ५ उस्मर्गसमिति—मत्त मूत्रादि जाव रहित स्थान पर करना । १

४६. तीन गुप्ति

१ मनोगुप्ति—माकी चंचलता को गोकर हमे धर्म-ध्यान में लीन रखना, भासासिक भावनाओं से अलग रखना ।

२ वचनगुप्ति—मौन रहना ।

३ कायगुप्ति—शरीर का निरुचन रखना । १

७ असह्यभिमानमनुत्तम ॥ १० ॥ अरुणादाय स्तेव ॥ ११ ॥
 सैधुनममम ॥ १६ ॥ मूर्च्छा परिग्रहा ॥ १७ ॥ (तत्ता० म० ०)
 १ ईर्ष्याभाषेज्जादान निश्चेपणोत्तमा समितय ॥ ५६ ॥ (तत्ता० म० १)
 १ सम्पत्तयो निग्रहोत्तमा ॥ ६ ॥ (तत्ता० म० १)

४७. दशलाक्षण धर्म

(१) उत्तम क्षमा—दूसरे से कष्ट दिय जाने पर भी निरर्थक हो या समझ हो, निराशुल प्रोध न करके शांत व प्रसन्न रहना ।

(२) उत्तम मार्दव—ज्ञान तप आदि में श्रेष्ठ होने पर सरदार व अपमान किए जाने पर भी कोमल व विनयवान रहना, मान न करना ।

(३) उत्तम आर्जव—मन, वचन, कार्य की सरलता रख कर कपट के भाव को न आने देना ।

(४) उत्तम सत्य—अपने आत्मोद्धार के लिए मन्त्रे तथा वा अज्ञान व ज्ञान रमते हुए सत्य ध्वन ही मोलना ।

(५) उत्तम शौच—लोभ को त्याग कर मनमें संतोष व पवित्रता रखनी ।

(६) उत्तम संयम—भले प्रकार पाच इंद्रिय व मन को बरत रखना तथा भृष्यी आदि छ प्रकार के जीवा की रक्षा करनी ।

(७) उत्तम तप—अनशन उपवास आदि धारद प्रकार तप के पालने में दृढसाहा रहना ।

(८) उत्तम त्याग—मोह ममत्व न करके सर्व प्राणी मात्र को अमयदान देना तथा पर प्राणियों का ज्ञान दान देना व अन्य प्रकार से उपकार करना ।

(६) उत्तम आर्कचन्य—मर्त्य परिग्रह त्याग कर यह भाव रखना कि ममार में मेरा मेरे आत्मा के सिवाय कोई परमात्मा मात्र भा रहा है ।

(१०) उत्तम ब्रह्मचर्य—मर्त्य कामा के भावों को त्याग कर अतन प्रद्व रश्म्य आत्मा में लीन होना व स्वस्त्री व परस्त्री का त्याग करना ।

३७ दश घमा से माधु जन भले प्रकार पाते हैं । ॐ

४८. बारह भावना

जिनमें बारबार चिन्तन किया जावे वही भावना कहते हैं, वे बारह तरह की हैं ।

(१) अनित्य—म जगत् में घर, पैसा, राज्य, राजा, पुत्र, मित्र, कुटुम्ब सब ही नश्वर हैं, इनसे मोह न करना ।

(२) अशरण—जब पाप का मोह फल होता है या मरण आता है ना कोई मन्त्र, यत्र वैद्य, रक्षक बचा नहीं सकते ।

(३) सत्सार—चार गति रूप समार म प्राणी इन्द्रिय विषया की लृप्ता म कमा हुआ रोग, शोक, वियोग क अपार कष्ट को भागा हुआ सुख शान्ति नहीं पाता है ।

(४) एकत्व—इस मेरे जीव को अकला ही ज मना मरना घट्टा भाग्य पड़ना है मरा आत्मा भव म निरागा एक अतन मई अनूर्ताक है ।

ॐ उक्तम क्षमाः साधवाजय मन्य शीघ्र रूपम उपस्थापयिष्ये
 दशपरमाणु धम्म ३ ६ ॥

(११३ ४०१)

(५) अन्यत्व—मर आत्मा से शरीरदि व सर्व ही अन्य आत्मायें व अन्य पांचा द्रव्य त्रिस्तुत्र भिन्न हैं ।

(६) अशुचि—यह शरीर मलमे रूपा है व कृमि, मल मूत्र दूध आदि अपवित्र वस्तुआ मे भरा है, रोष ० से मग्न रहता है, पवित्र जलादि को स्पर्श मात्र से अपवित्र परदेता है । इस तन मे उदाम रह कर आत्मोन्नति करना चाहिये ।

(७) आसूय—मन, वचन राय क वतन मे कर्म आते हैं जिसमे प्राणी पराधीन हो जाते हैं ।

(८) सवर—कर्मों व आन को रोकना ही जीवका हित है, जिससे स्वाधीनता प्राप्त हो ।

(९) निर्जरा—पूर्व मे पाये कर्मों को ध्यानादि तप कर के दूर करना ही भेष्ट है ।

(१०) लोक—यह लोक अनादि अनन्त अदृशिम है, व द्रव्यों से भरा है । इस मे एक भिन्न क्षेत्र ही धाम करन योग्य परम सुखदाई है ।

(११) बोधिदुर्लभ—आत्मोद्धार का मार्ग तो सम्यग्दर्शन ज्ञान पारित्र है । उसका लाभ बड़ा कठिन है । अब हुआ है तो इसे रक्षित रखना योग्य है ।

(१२) धर्म—धर्म आत्मा का स्वभाव है, यह मुनि व श्रावक के भेद से दो तरह है । दश लक्षण रूप है, अहिंसा मङ्ग है, यही हितकारी है । ❀

• मनीषाशरण ससारैकत्वानुध्यायवसवर निर्जरात्येकबोधि दुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वानुचितवमनुभेक्षा ॥ ७ ॥ (सार० अ० ९)

५०. पाँच प्रकार चारित्र्य

(१) सामायिक—राग द्वेष दमन कर समता भाव से आत्मा के ध्याना म चित्त को मग्न करता तथा शत्रु, मित्र, कृष्ण, वड्ड्या, माता, अपमान म समान भाव रखता । सुखिया का यह परम धर्म है ।

(२) छेदोपस्थापना—सामायिक भाव से गिर कर फिर अपने को सामायिक भाव में स्थिर करता व माधु प्रन म काइ दोष लगता पर इन्को गुट्टि कर क कर स्थिर होता ।

(३) परिहार विशुद्धि—एक विशेष चरित्र जो तीर्थ कर भागदान का संगति म माधु का प्राप्त होना है जिस स जाय रक्षा म बहुत मारपानी हो जाती है ।

(४) सूक्ष्म साधराय—एक ऐसी आत्म मगना जिस म बहुत ही सूक्ष्म सोच का उदय रहता है ।

(५) यथारथात्—जैम चारित्र्य वैसा मर्य कथा रहित निमल यातनाम भाव । •

५१ निर्जरा तत्त्व

जिना आत्मा के परिणामों म चर्म, का रक्षर या विनाक दिये हुए आत्मा म म्हन्नाले ई यह भावनिर्जरा है और रम का मङ्गना मो द्रव्य निर्जरा है । जहा वम का रक्षर म्हन्ते उमको सविषाक निर्जरा कहते हैं, जहा जिना फल दिग हु

भरते हैं वह अविवाह निर्जंग है। वास्तव में पहल मांसे हुए
हमों का विनाश करने हुए तप आदि वीतराग भावों के द्वारा
मरने का ही विदेशत्व कहते हैं। यही मोक्ष का कारण है।

तप बारह बारह का है त्रिमका पावन साधु महात्मा
इस प्रकार से करते हैं। ८

३२ बारह तप

इस तपक नी भेद हैं—वाय और अंतरङ्ग। जो प्रगट
शरीर व त्रिमका अमर शरीर पर मुख्यतः पड़े वह वाय
तप है व त्रिमका अमर मुख्यतः से भावा पर पड़े सो अन्त
रंग तप है। हर एक के छ भेद हैं —

१. वाय तप के छ भेद —

(१) अनशन—खाद्य—त्रिस से, पेट भरे, खाद्य जो
सर्प सुधार, इलायची आदि; रक्ष—जो चाटने में आवे,
बन्ध आदि, पत्र—जो पौध योग्य हो, जलादि, इन चार प्रकार के
आहार का त्याग पर्यंत या एक दो तिहा आदि की मर्यादा से
त्याग कर इन्द्रिय त्रिषय और कथाया से अलग रहकर धर्मध्यान
में लगा रहना को अनशन है।

(२) अन्नपीदय्य—इन्द्रियों का लाजुपना कम करते

१०६ वाक्य तवेन य मुखास कातपुष्क जेन ।

भारव सार्ध भोगासहस्र चान् विजयत दुर्विदा ॥ ३६ ॥

(इन्द्रिय संपन्न)

हुए सग्न आहार कम करना, जिसमे ध्यान व स्वाध्याय में आलस्य न हो।

(३) वृत्तिपरिसंख्यान—भोजन के लिये जाते हुए कोई प्रतिज्ञा लेलेना और बिना किमा क कहे हुए उसके अद्भुत मार भोजन मिला पर लेना, नहीं तो उपवास करना, जैसे किस्सा साधु ने यह नियम लिया कि कोई पुरुष बिस्कुल सारी घोनी और डुपट्टा ओढ़े हुए यदि भस्ति से भोजन देगा तो लेंगे। प्रण पूर्ण न होने पर भिक्षा से लौट आना व समतल भाव रखना।

(४) रसपरित्याग—दूध, दही, पी शकर (मिष्ट रस), तैल, निमक, इन ७ रसों में से एक व अोक का जन्म पर्यंत व मयादा रूप त्यागना तथा रस से मोह न कर करत उदर भरने को भोजन करना।

(५) निवृत्त शय्यासन—ध्यान का निद्रि व निद्र एकान्त में सोना बैठना।

(६) कायकलेश—शरीरक सुरियापनेको डटानेके लिए शरीर को कठिन व छेश देकर भी यामें दुःख न मानकर हर्षित होना। जैसे घूषा पड़े हो ध्यान करना, कंकड़ों पर लट जाना आदि।

२. अन्तरङ्ग तप के छ. भेद —

(१) मायश्रित—दोष होने पर उसका दण्ड लेकर दोष को भेटना। यह दण्ड निम्नलिखित ती तरह का होता है —

१. आलोचना—गुरु व पास सरल भाव में दोष कह देना।

२. मतिक्रमण—एकत म बैठकर दोष का पश्चात्त करना ।

३. तदुभय—ऊपर के दोना कामा को करना ।

४. विवेक—किमी पदार्थ का जैसे दूध, घी, आदि कुछ काग व निष त्याग देना ।

५. व्युत्सर्ग—कायसे ममता त्याग एक या अनेक कायोत्सर्ग रूप स ध्यान करना । नौ बार खमोकार मंत्र कहने या २७ श्याम च्छास में जो समय लगे वह एक कायोत्सर्ग का फल है ।

६. तप—एक व अनेक उपवास आदि महण करना ।

७. छेद—मुनि दीक्षा का समय पटा वेना ।

८ परिहार—मुनि सपसेकुञ्ज काल केलिए आग करना

९ उपस्थापन—फिर स भीक्षा देकर शुद्ध करना ।

(२) विनय—भीतर से उदा आदर रखना । यह च तरह का है—

१. ज्ञानविनय—बड़े भाव स ज्ञान को बढ़ाना ।

२. दर्शनविनय—उही भक्ति में सच्चे तारा म भ रथर रखना ।

३. चारित्र विनय—बड़े आदर से माधु का या श्राव का चारित्र पालना ।

४. उपचार विनय—देव, गुरु, शास्त्र आदि पूजन पदार्थों का मुख में स्तवन म् काय में नम्रा आदि करना ।

(३) वैश्यावृत्य—विना किसी श्राव्य के सेवा करना ।

निम्न ८१ प्रकार के साधुओं की सेवा सदा करना चाहिये —

१ आचार्य २ वसिष्ठाय ३ सपरिवी ४ शैव्य-तवीर
शिष्य मुनि ५ गान-रागी ६ गण-एक विशेष सध ७ कुल-
पक्षी गुरु ८ शिष्य ९ सध-मुनि-समूह १० साधु-बहुत काल
से साधक ११ मगध-मुन्दर गिहान सुप्रसिद्ध साधु ।

(४) दशाध्याय—राशों पर मनन-एह पाच तरह से
होता है । १ कौचन-बदना सुनना २ धृष्टना-राहु का साक
करा के बिना प्रशन कर निष्कर्ष करना ३ अनुप्रेषा-जाने हुए
पत्नी का बार ४ बि उबन करना ५ आन्ध-गुरु श ६ व अर्थ
कर करना ७ धर्मोपदेश करना ।

(५) व्युत्सर्ग—पत्नी और भावरा परिषद से ममता
त्यागना-गमा दा प्रकार है ।

(६) ध्यान—चित्त को एक किरा पदार्थ ॥ रोक कर
नमय हो जाना । ‡

५३. ध्यान

ध्यान चार तरह का होता है—१ आस २ रीद्र ३ धम
४ शुभल । इनमें पश्चिम दो पाश्चात्य के कारण हैं । धम और

‡ मननरावर्गीयदृष्टिपरिमितानरसपरि पात विविक्त शब्दा
मननरावर्गीयदृष्टिपरिमितानरसपरि पात विविक्त शब्दा
मुनिगणाना-दृष्टम् ॥ २० ॥ (सार्ग ३००)

मुश्किल में जितना यात्तरागता है वह बर्षों की निजरा करती है ।
जितना गुमराग है वह पुण्य य घ का कारण है ।

१. आर्तध्यान चार तरह का होता है—

१ इष्ट वियोगज—इष्ट स्त्री, पुत्र, धनादि के वियोग पर शोक करना ।

२ अविष्ट संयोगज—अविष्ट दुखदाई सम्बन्ध होने पर शोक करना ।

३ पीड़ा चिन्तया—पीड़ा रोग होने पर दुःखी होना ।

४ निदा—आगामी भोगों की चाह से जलना ।

२. रीद्रध्यान चार तरह का होता है—

१ दिसानन्द—दिसा करने पर मख दिसा हुई सुन कर आनन्द मानना ।

२ मृषानन्द—अस्तव्य मोलकर, मुतावर व मोला हुआ जान कर आनन्द मानना ।

३ चौरानन्द—चोरी करके, कराके व चोरी हुई सुन कर हर्षित होना ।

४ परिमहानन्द—परिमह बढ़ा कर, व बढ़ा कर व बढ़ती हुई देखकर हर्ष मानना ।

३. धर्मध्यान चार प्रकार का है—

१ आशाविषय—जिन्दगी की आशानुसार आगम के द्वारा कर्तव्यों का विचार करना ।

२ अपाय विषय—अपने व अन्य जीवों के अज्ञान व कर्म के नाश का उपाय विचारना ।

३ विपाक विषय—आपको व अन्य जीवों को सुखा या दुःखी देखकर कर्मों के फल का स्वरूप विचारना ।

४ सुस्थान विषय—इस लोक का सधा आत्माका आकार व स्वरूप का विचार करना । इसका निम्न चार भेद हैं —

१ पिंडस्थ २ पदस्थ ३ रूपस्थ ४ रूपातीत ।

५४. पिंडस्थ ध्यान

ध्यान करने वाला मन वचन काय शुद्ध कर पृकृत स्थान में जाकर पद्मासन या खड़े आसन व अन्य किसी आसन से तिष्ठ कर अपने पिंड या शरीर में विराजित आत्मा का ध्यान करे सो पिंडस्थ ध्यान है । इसकी पांच निम्न लिखित धारणाएँ हैं —

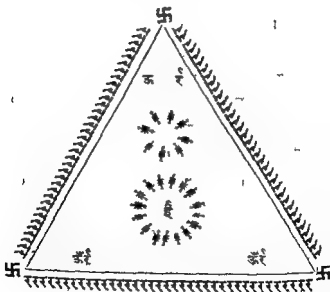
१. पार्थिवोधारणा—इस मध्यलोक को चौर समुद्र के समान निर्मल देख कर उस के मध्य में एक लाख योजन व्यास वाला जम्बूद्वीप के समान ताप हुए सुरर्ष के रत्न का एक द्वार पाण्डुरी का एक कमल विचारे । इस कमल के मध्य सुमेरु पर्वत समान पात रत्न को उँचा कणिका विचारे । फिर इस पर्वत के ऊपर पाण्डुक वन में पाण्डुक शिला पर एक स्फटिक मणिका मिहासन विचारे और यह देखे कि मैं इसी पर अपना कर्मों को

नारा करने के लिए बैठे हैं । इतना ध्यान बार बार करके जमावे और अभ्यास करे । जब अभ्यास हो जावे तब दूसरी धारणा का मनन करे ।

२. अग्निधारणा—उसी सिंहासन पर बैठा हुआ ध्यान

करन वाला यह सोचे कि मेरे नाभि के स्थान में भीतर ऊपर मुख किये खिला हुआ एक १६ पादमी का खेत कमल है । उसके हर एक पत्ते पर अ अ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ए ऐ ओ औ अं आ ऐस १६ स्वर क्रम से पीले लिखे हैं व बीच में हँ पीला लिखा है । इस कमल के ऊपर हृदय स्थान में एक कमल खड़ा खिला हुआ आऽ पत्ते का फाले रङ्ग का बिचारे जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम गोत्र, अक्षराय ऐसे आठ कर्म रूप है, ऐसा सोचे । पहिले कमल के हँ के से धुआ निकलकर फिर अग्नि शिखा निकल कर बढ़ी, सो दूसरे कमल को जलाने लगी । जलाने हुए शिखा अपने मस्तक पर आ गई और फिर यह अग्नि शिखा शरीर के दोनों तरफ रेखारूप आकर नीचे दोनों कोनों से मिल गई और शरीर के चारों ओर त्रिकोणरूप हो गई । इस त्रिकोण की तीनों रेखाओं पर र र र र र र अग्निमय वेष्टित है तथा इस व तीनों कोनों में बाहर अग्निमय स्वस्तिक हैं । भीतर तीना कोना में अग्निमय ऊँ लिखे हैं, ऐसा विचारे । यह मण्डल

भीतर तो आठ कर्मा को और बाहर शरीरको दृढ़ करके रख
रूप बनाता हुआ घारे २ शान्त हो रहा है और अग्निगिरि जहाँ
से उठी भी वहीं समा गई है, ऐसा सोचना भी अग्निधारणा है।
इस मण्डल का चित्र इस तरह पर है —



३. पवन धारणा—दूसरी धारणा का अभ्यास होनेके
पीछे यह मोचे कि मेरे चारों ओर पवन मण्डल घूम कर

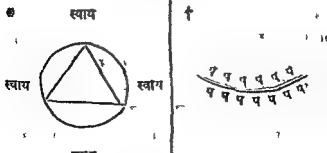
राज को उड़ा रहा है। उस मड़न में सब ओर ग्राय ग्राय
निरा है। ७

४. जल धारणा—तीमरी धारणा का अभ्यास होने
पर फिर यह सोचें कि मेरे ऊपर जाने में क्या आ गए और
मूव पाती परमने लगा। यह जाना, लगे हुए कर्म मैल को
धोकर आत्मा का स्वच्छ कर रहा है। प प प प अर्द्ध चन्द्राकार
जल मड़ल पर सब ओर निरा है। †

५. तत्त्व रूपवती धारणा—बीथो का अभ्यास हो जाने
सब अपने को मर्त्य कर्म व शरार रहित शुद्ध सिद्ध समान
अमूर्तोंक स्पष्टिक्यन् निर्मल आकार देखता रहे, यह पिहरथ
आत्मा का ध्यान है।

३५. पदस्थ ध्यान

पदस्थ ध्यान भी एक भिन्न मार्ग है। माधक इन्द्रानु



सार इसका भी अभ्यास कर सकता है। इसमें भिन्न २ पदोंका विराजमान कर ध्यान करना चाहिये। जैसे हृदय स्थान में आठ पॉलिङो का सुपेद कमल सोचकर हमारे आठ पत्तों पर क्रम से निम्न लिखित आठ पद पाने लिये :—

१ एमो अरहंतार्थ २ एमो सिद्धाण ३ एमोआइ
 रोयाण ४ एमाउवग्मायाण ५ एमो तोएमव्वसाहूण
 ६ सम्मयादर्शनायनमः ७ सम्मयहान्तायनम ८ सम्मयक् चारि
 त्तायनम और एकएक पद पर रुकना हुआ हम का अर्थ
 विचारता रहे। अथवा अपने हृदय पर या मस्तक पर या
 दोनों भाहों के मध्य में या नाभि में ई या ऊँ को चमकते सूर्य
 मम दले व अरहंत सिद्ध का स्वरूप विचारे। इत्यादि।

५६. रूपस्य ध्यान

ध्याता अपने चित्तन पद मोचे कि मैं समवशरण म
 साक्षात् तीर्थङ्कर भगवान का अन्तरोक्ष ध्यानमय परम वीर-
 राग, धन धनरादि आठ प्रातिहार्य सहित देव रहा हूँ। १२
 ममार्ये हैं जिनमें देव, देवी, मनुष्य, पशु, मुनि आदि बैठे हैं।
 भगवान का उपदेश हो रहा है। अथवा ध्याता किसी भी अर-
 हंत की प्रतिमा को अपने चित्त में लाकर उपरु द्वारा अरहंत
 का स्वरूप विचारे।

५७. रूपातोत ध्यान

ध्याता इस ध्यान म अपने को शुद्ध स्फटिकमय सिद्ध
 भगवान क समान देखकर परम निर्विकल्प रूप हुआ ध्यावे।

५८. शुक्ल ध्यान

धर्म ध्यान का अभ्यास मुनिगण करते हुए अब सातवें दर्जे (गुणस्थान) से आठवें दर्जे में आते हैं तब से शुक्ल ध्यान को प्याते हैं । इसमें भी चार भेद हैं । पहले दो साधुओं के, अथवा दो केवलज्ञानाभरदन्तों के होते हैं ।

१. पृथक्त्व वितर्क बोधार्थ—

यद्यपि शुक्ल ध्यान में ध्याता युक्तिपूर्वक शुद्धात्मा में ही लीन है तथापि उपयोग की पलटन जिस में इस तरह होवे कि मन, बचन, कार्यका आलम्बन पलटता रहे, शब्द पलटता रहे व ध्येय पदार्थ पलटता रहे, वह पहला ध्यान है । यह आठवें से ११ वें गुणस्थान तक होता है ।

२. एकत्वं वितर्क बोधार्थ—

जिस शुक्ल ध्यान में मन, बचन, कार्य योगों में से किसी एक पर, किसी एक शब्द व किसी एक पदार्थ के द्वारा उपयोग स्थिर हो जावे सो दूसरा शुक्ल ध्यान १२ वें गुणस्थान में होता है ।

३. सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति—

अभरदन्त का कार्य योग जब सेरहवें गुणस्थान ४ अन्त में सूक्ष्म रह जाता है तब यह ध्यान कहलाता है ।

४. व्युपरत क्रिया निवर्ति—

जब सत्ययोग नहीं रहते व जहां निश्चय आत्मा हो जाता

है तब यह चौथा शुक्ल ध्यान चौदहवें गुणस्थान में होता है। यह सर्व कर्म बंधन काटकर आत्मा को परमात्मा या सिद्ध कर देता है। ॐ

५६ मोक्ष तत्त्व

जब कर्मबन्ध व कारण मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग मग्न बन् हो जाते हैं व पहले पांचे हुए सर्व कर्मों का निर्जरा हो जाती है, तब यह जीव सूक्ष्म व स्थूल शरीरों से छुटा हुआ पूर्ण शुद्ध होकर अग्निम देह के आकार में कुछ कम मोटा कर को गगन करता है और लाक्षणिक के अर्ध म मित्र क्षेत्र पर ठहर जाता है। यदा उक्त ध्याताकार चैतन्यवर्द्ध भाव में अन्य आत्माआ स भिन्न अपने सर्व गुणों को पूर्ण विरहित करवा हुआ अनन्त अतीन्द्रिय मच्च आनन्द में मग्न रह कर परम निराशुका व परम कृतकृत्य हो जाता है। न, यह किसी में मिलता है न, यह फिर कभी अशुद्ध होकर जल धारण करता है। इसी को परमात्मा, परममज्ञ, परमप्रभु, इतर, सर्वज्ञ, वीतराग, परम सुखी कहते हैं। †

* ध्यान का विशेष स्वरूप श्री शुक्लवन्द्यावाकृत ज्ञानागव ग्रन्थ में देखो।

† भगवद्गोप देवर्षि बन्ध निर्जरातयोः ।

कृतस्य कम प्रमोक्षादि मोक्ष इत्यभिधीरत ॥ २ ॥

दग्धे बीजे स्यात्सम्पन्न प्रादुर्भवति नाकुर ।

कर्मबाध तथा दग्धे च रोदति सर्वावर ॥ ७ ॥

भाकारभावतोऽभावो न च तस्य प्रसम्पते ।

अनन्तर पतित्वस्तु शरीराकार आदिन ॥ १५ ॥

आत्मा जैसा अतिम शरीर छोड़ते समय होता है वैसा ही उसका चेतनामय आकार भिन्न क्षेत्र में रहता है। शरीर की माप में उपर्युक्त की माप भी आ जाती है। जिनमें आत्मा व्यापक नहीं है, इतनी माप कम होजाती है।

६०. चौदह गुणस्थान

ससारी जीवों के मोहनीय कर्म और योगों के निमित्त स चौदह दर्जे होते हैं जिन में यह आत्मा भावों के क्रम से प्रगुद्धि कम करता हुआ पूर्ण परमात्मा हो जाता है। इन को गुण-स्थान कहते हैं—

१. मिथ्यात्व गुणस्थान—जिस में सात तत्वों का देव, गुरु, धर्म व आत्मा का सत्त्वा अडान न हो, आरमानन्द की

ससार त्रिवर्णोक्त त्रिदानामप्यय मुक्तम् ।

अध्यासाधमिति श्रेष्ठ परम परमर्षिभि ॥ ४५ ॥

(तत्त्वार्थसार मोक्षतत्त्व)

८ भावार्थ—यद्य कारणों के चले जाने से व बन्ध की निगरा हो जाये तो सर्व कर्मों से छूटने का नाम मोक्ष है। जैसे बीज भुग जाने पर फिर उस में अंकुर नहीं फूट सकता वैसे कर्मबीज के जड़ जाने पर ससार अंकुर नहीं होता ।

सिद्ध परमात्मा के आकार का नमाप बरी है। वह पिछले छूटे हुए शरीर के प्रमाण आकार घाली है। सिद्धों के ससार के इन्द्रिय विषयों से निवृत्त, बाधा रहित, अविनाशी, अक्षुण्ण सुख वैरा होता है, ऐसा परमर्षियों ने कहा है ।

पहिचान न हो। मसार सुख ही मुहावे। इस में प्राय सर्व ससारी जीव हैं।

२. सासादन गुणस्थान—परिले दर्जे में एक दम चौथे अविरत सम्यक्त्व में जाकर अनन्तानुमन्धो, कषाय के उदय स गिर पर इमग आता है फिर, तुरन्त ही मिथ्यात्व में चला जाता है।

३. मिश्र गुणस्थान—जहा मिथ्या व सत्य भ्रमन के मिले हुए भाव होते हैं। जैसे दही मोठे का मिला हुआ स्वाद। यहा दर्शन मोह की सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति का उदय होता है।

४. अविरत सम्यक्त्व—अनादि मिथ्यादृष्टि भाव आत्मा अनात्मा के विवेक होने पर निर्मल भावों से तत्त्व का मनन करते हुए जन अनन्तानुमन्धो कषाय चार ओर मिथ्यात्व प्रकृति इन पाप का उपराम कर देता है अर्थात् इनके उदय को अन्त मुहूर्त के लिए दबा दता है तब परिले म झट चौथे में आकर उपराम सम्यक्त्व ही हा जाता है। तब मिथ्यात्व कर्म के तीन टुकड़े कर देता है, कुछ सम्यक् प्रकृति रूप, कुछ मिश्ररूप, कुछ मिथ्यात्वरूप। तब इसको मत्ता में सम्यग्दर्शनों की बाधक मात प्रकृतियों हो जाती हैं।

यह जब अन्तर्मुहूर्त के भीतर कुछ समय रहते हुए यदि अनन्तानुमन्धो का उदय पालेता है तब सासादन में गिरता है, यदि अन्तर्मुहूर्त पीछे मिथ्यात्व का उदय हो जाता है तो फिर

चौथे स पहिले में आ जाता है। यदि सम्यक् प्रकृति का उदय हुआ तो चौथे में ही रह कर क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है। क्षयोपशम सम्यक्त्व में गिर कर मिश्र प्रकृति के उदय होने पर तीसरे में आ सकता है।

इस क्षयोपशम सम्यक्त्व का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ६६ सागर का है। यही यदि सातों प्रकृतियों का रय कर मानता है तो क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। फिर अनन्त काल तक कभी मिथ्यात्व नहीं होता है और तीसरे या चौथे भव में माघ पा लेता है।

जो सम्यग्दर्शन से गिरकर पहिले में आता है उसको मारि मिथ्यादृष्टि कहते हैं, उसको फिर चौथे में जान के लिए सात प्रकृतियों का ३ कभी कब १ चार कपाय व एक मिथ्यात्व का दो उपशम करना पड़ता है, और तब मिश्र तथा सम्यक् प्रकृति दोनों सत्ता में ॥ फिर जाते हैं।

५. देश विरत—सम्यग्दृष्टि जीव भाषक गृहस्थ के प्रती को रोकने का ॥ अपत्याख्यानावरण चार कपाय के उपशम होने पर इस दर्जे में आकर भाषक के चारह प्रती को ग्यारह श्रेणियों या प्रतिमाओं के द्वारा उन्नति करता, हुआ पालना है।

इसने आगे के दर्जे साधुओं के हैं।

६. व्रत विरत—अत्याख्यानावरण कपाय जो मुनिव्रत का रोकती थी उसके उपशम होने पर यह दर्जा होता है,

मातृवें से गिरकर होता है, पाचवें से सातवें में जाता है। छठा मातृजों वार वार होता रहता है।

इसके आगे के दर्जों में प्रमाद भाव नहीं रहता है।

७. अममत्त विरत—यहाँ सम्मान चार व नौ ना कपाय का मंद उदय होने पर धर्म ध्यान में निर्विकल्परूप से गम रहता है।

इसके आगे दो ओलिया हैं—एक उपराम दूसरी उपक। जहा अनन्तानुपमा चार के सिवाय २१ कपायों का उपराम किया जावे यह उपराम व जहा उय किया जावे यह उपक ओली है। उपशम के ८, ९, १० व ११ तथा उपक के ८, १२, १० व १२ ऐसे चार दर्ज हैं। उपरामशाला २१ वें से अवरय गिरता है। उपक १० वें से १० वें में जाकर चार प्वातिया कर्म रहित होकर १३ वें में जाकर अरन्त परमात्मा हो जाता है।

८. अपूर्व कारण—जहा अनुपम गुप्त भाव हो—यहा माधु क पहिला गुप्ता ध्यान होता है।

९. अनिवृत्ति करण—जहा ऐसे गुप्त भाव है कि साधु सर्व अय कपायों का उपराम या उय कर डाले, केवल अंत में सूक्ष्म लोभ रह जावे।

१०. सूक्ष्म साम्पराय—जहा कवन सूक्ष्म लोभ रह जावे व साधु ध्यानमग्न ही बना रहे।

११. उपशान्त मोह—जहा सर्व कपायों का उपराम होकर माधु बीतरागी हो जावे।

१२. शीघ्र मोह—जदा सर्व कृपाओं का चय होकर साधु भीतरांगी बना रहे, गिरे नहीं । यदा दूसरा शुक्ल ध्यान होता है ।

१३. सयोगकेवली—यदा ज्ञानावरणादि ४ घातिया कर्मा से रहित हो अरहन्त परमात्मा, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त क्ली व अनन्त सुखी हो जाता है व शरीर में रहने-हुए जिसके बिना इच्छा के विहार व रूपदेस होवा है । यदा आत्मा क प्रदश सकम्प होने हैं, इसमे सयोग कहलाते हैं । यदा अतः म भीसरा शुक्लध्यान होवा है ।

१४. अपोग केवली—जदा आरम प्रदेस सकम्प न हां, निरपल आत्मा रहे । यदा चौथा शुक्लध्यान होता है जिससे सर्व कर्मों का नाश कर गुणस्थानों से बाहर हो सिद्ध परमात्मा हो जाता है ।

इसका ठहरने का काल कतना है जितनी देर म अ, इ, उ, ए, ओ, ये पाप अक्षर बहे जावें । १३वें का व ५ वें का एकट्ट काल लगातार एक कोइपूर्व ८ वर्ष व अन्तर्मुहूर्त कम है । दूसरे का छ आवली ।

चौथे का तेखीस सागर कुछ अधिक । - सोसरे का व छटे से लेकर १२वें तक का प्रत्येक का अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल नहीं है । पहले का काल अनन्त है ।

॥ भावली भवत्वात् समर्पों की होती है । एक बारने में मो समझ रही उसके कथन ।

यह काल की मर्यादा एक जीव की भवेत्ता कष्ट है
गर्ह है । ३

६१. गुणस्थानों में कर्मों का बंध, उदय और सत्ता का बंधन

१४८ कर्मा म म १०० बंध म व १२० उदय में गिनाइ गई
हैं । ५ बंधन, ५ सत्ता, पाच शरारा में सत्ता स्पर्शादि १० बंधन
मूल चार स्पर्शादि में, मिश्र व सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व में गर्भित
हैं । इस तरह बंध में १० + १६ + २ अर्थात् २८ कम व
उदय म १० + १६ बंध २६ ही कम हुई, कथा जिस व
सम्यक् प्रकृति नहीं ।

प्रथमोपशान्त सम्यक्त्व से मिथ्यात्व कर्म के तीन पण्ड हो
जात हैं—मिथ्यात्व, मिश्र व सम्यक्त्व, इसलिये बंध एक का और
उदय तीन का होता है ।

जितना कर्म नये बंधने हैं उतनी बंध जितने फल दते हैं व
धिया फल दिये निमित्त विना गिरते हैं उनका उदय और जो धिना
फल दिये व गिरे बैठे रहें उतनी सत्ता बंधने हैं ।

३ मिथ्याहक् सत्तना मिथोऽसत्तनो नेशसत्तनः ।

ममत् इतोऽभूवनिवृत्ति करणी तथा ॥ १६ ॥

सूक्ष्मोपशान्त रुक्षीजकषाया योग्यबोधिनी ।

गुणस्थान विरुद्धाः स्फुरितिसर्वे चतुदश ॥ १७ ॥

१. मिथ्यात्व गुणस्थान में—

वध—१२० में से ११७ का। यहा तीर्थङ्कर, आहारक शरीर व आहारक आङ्गोपाङ्ग का वध नहीं होता है।

उदय—१०० म से ११७ का। यहा तीर्थङ्कर, आहारक, दो सम्पक् प्रकृति व मिथ्यात्व, इन पाच का उदय नहीं।

सत्ता—१४८ की ही।

२. सासादन गुणस्थान में—

वध—११७ में से १६ कम यानी १०१ का। वे १६ ये हैं —

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकआयु, नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी, द्रुष्टक सत्स्थान, असंप्राप्तासृपाटिक सहनन, एकेन्द्रिय से चौद्रिय चार जाति, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण।

उदय—११७ में से निम्न ६ निम्न कर १११-का,—

मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरक गत्यानुपूर्वी।

सत्ता—१४५ की। १४८ में म तीर्थङ्कर, आहारक दो वध तीन कम होते हैं।

३. मित्र गुणस्थान में—

वध—१०१ में से २७ कम करके ७४ का। वे २७ ये हैं,—

स्वामृद्धि, निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, अनन्तानुबन्धी क्रोधादि ४, रतीवेद, तिर्यच आयु, तिर्यचगति, तिर्यच गत्यानुपूर्वी

नीचगोत्र, दस्रोत, अप्रशस्त विद्वद्योगनि, दुर्मग, दुःस्वर, अनदेय, न्यग्रोध स यामन चार संस्था, वपनाराय से से -कीशक चार सहना, मनुष्यायु और देवायु ।

उदय—१०० का । १११ में से अनन्नानुग्रही ४, एके द्विय म चौईद्विय तक ४ आति, स्यावर, तिर्यच मनुष्य देव गत्यानुपूर्वी ३, ऐसे १२ घटान व एक सम्यक् मिथ्यात्व मिलाने से ११ घटती है ।

सत्ता—१४७ की तीर्थद्वर व सिखाय ।

४. अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में—

बोध—७७ का । तीसरे की ७४ में मनुष्यायु, देवायु, तीर्थ कर ताने मिलाने में ।

उदय—१०४ का । तासरे की १०८ म ॥ सम्यक् मिथ्यात्व को घटा कर ९९ रहें, इन में चार गत्यानुपूर्वी व-एक सम्यक् प्रकृति मिला देने पर ।

सत्ता—१४८ की । यदि छाधिक सम्यग्दृष्टि हो तो एक से ईश्वरानोम की ही सत्ता होगी ।

५. देशविरत गुणस्थान में—

वध—६७ का । चौथे की ७७ म से १० घटाने पर । वे १७ हैं ।

अप्रत्याख्यानावरण वपाय चार, मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक आहोवाग, वपनाराय सहना ।

हृदय—८७ का। चौथे की १०४ में से १७ घटाने पर। वे १७ घटें —

अप्रत्याह्वानावरण कषाय ४, नरकायु, देवायु, नरकादि ४ आयुपूर्व, नरकगति, देवगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आहोपाक, द्रुमग, अनादय, अयरा।

सत्ता—नरकायु के बिना १४७ की, परन्तु सायिक के केव १४० की है।

६. ममत्तविरत गुणस्थान में—

वृद्ध—६७ में से प्रत्याह्वानावरण कषाय चार घटाने पर ६३ का।

हृदय—८१ का। ८७ में प्रत्याह्वानावरण कषाय ४, तिर्यक् आयु, तिर्यक्गति, उद्योत, नाच गोत्र घटाने व आहारक शरीर व आहारक आहोपाक मिलाने से।

सत्ता—१४७ में से तिर्यक्वायु घटाने पर १४२ की, परन्तु सायिक के केव १३९ की।

७. अममत्तविरत गुणस्थान में—

वृद्ध—५९ का। ६३ में से अरति, शोक, असाताप्रेरणीय, अतिथर, अशुभ, अयश घटाने व आहारक शरीर व आहारक आहोपाक मिलाने पर।

हृदय—७६ का। ८१ में से आहारक दो, निद्रा निद्रा, मचलामचना, स्वानगृद्धि घटाने पर।

सत्ता—१४६ की, परन्तु सायिक के १३६ की।

८. अपूर्वकरण गुणस्थान में—

वय—५९ में मे देवायु घटा कर १८ का ।

उदय—७० का । ७६ में से सम्यक् प्रकृति, अर्धनागव,
फोलक व असमातासुपाटिक संज्ञान घटाने पर ।

सत्ता—१४६ की तथा १४६ में मे अनन्तानुगन्धी चार
कपाय घटाने पर १४२ का, परन्तु दायिक सम्यग्दृष्टि के १३१
की तथा सप्तक श्रेणी वाले क देवायु घटाकर १३८ की ।

९. अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में—

वय—२२ का । ३८ में से ३६ घटाने पर । वे ३६ ये हैं —

दिवा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, तीर्यङ्गर, निर्माण,
प्रशान्त विहायोगनि, पचेन्द्रियजाति, वैतस शरीर, कर्मण शरीर,
आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाग, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक
आङ्गोपाग, समचतुरस्र सस्थान, दब गति, दबगत्यानुपूर्वी, रूप,
रस, गन्ध स्पर्श, अगुरुषु उपपात परधान, चञ्चास, जम,
पादर, पर्याप्त, मत्स्यक स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय ।

उदय—७० में हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगु
प्सा घटान पर ६६ का ।

सत्ता—आठवें के अनुसार १४६ या १४२, १३१ या
१३८ की ।

१०. सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में—

वय—१७ का । २२ म से संज्वलन क्रोधादि ४ व पुरुष वेद
पर ।

उदय—६० का । ६६ में से सञ्चलन कषाय लोभ सिवाय
३ व स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद, यह ६ घटाने पर ।

सत्ता—उपराम श्रेणी में १४६ या १४२ की व छायांक
सम्पत्ति क १३६ की तथा छापक श्रेणी में १०२ की । १३८ में
से ३३ घटाने पर वे ३६ ये हैं —

निदानिना, प्रचलाप्रचला, स्यान्नृद्धि, अप्रत्याग्यानावरण
कषाय ४, प्रत्याग्यानावरण कषाय ४, सञ्चलन लोभ मान माया
३, नो कषाय ६, तरुगति नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्ग
त्यानुपूर्वी, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय से चौरद्विय ४, साधारण,
सूक्ष्म, स्थावर ।

११. उपशान्तमोह गुणस्थान में—

यय—१ सात्ता वेदनीय का । १७ म से १६ घटाने पर ।
व १६ ये हैं —

ज्ञानावरण ४, दर्शनावरण ४, अवराय ५, उरुच गोत्र,
यश ।

उदय—१९ का । २० म से सञ्चलन लोभ घटाने पर ।

सत्ता—दशवें की तरह १४६ या १४२ की व छायांक के
१३९ की ।

१२. क्षीणमोह गुणस्थान में—

यय—११ वें की तरह १ सात्ता वेदनीय का ही ।

उदय—५७ का । ५६ में से वज्र नाशक व नाराच
घटाकर ।

सत्ता—१०वें की सप्तक श्रेणी में १०२ में से सम्बलन लोभ घटाकर १०१ की ।

१३. सयोग फेवली गुणस्थान में—

बध—एक साता का ।

उदय—५७ में से १६ घटाने पर ४१ का व तीर्थङ्कर क तीर्थङ्कर प्रवृत्ति महित ४२ का । वे १६ ये हैं —

ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, निद्रा प्रचला, अन्तराय ५ ।

सत्ता—८५ की । १०१ म स ज्ञानवरण ५, दर्शनावरण ४, निद्रा, प्रचला, अन्तराय ५ ऐसी १६ घटान पर ।

१४. अयोग फेवली गुणस्थान में—

बध—० कोई नहीं ।

उदय—१२ का । ४२ में स ३० घटाने पर । वे ३० ये हैं —

१ काइ वेदनीय, यथ वृषभ नाराच सहनेन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोवाग, सैत्रस शरीर, कर्मण शरीर, समचतुरस्र सस्यानादि ६ संस्थान, एखादि ४, अगुरुचक्षु, उपघात, परघात उच्छ्वास, मरेयेक ।

जो उदय में रही वे १० ये हैं —

१ वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, प्रस, पादर, पर्याप्त, आदेय, यश, उच्चगोत्र, तीर्थङ्कर ।

नोट—जो तीर्थङ्कर नहीं होते उनके ११ का ही उदय रहता है ।

सत्ता—२ की थी, परन्तु अन्तःकरण के पड़ने से ७२, फिर अन्त में १३, इस तरह कुल २२ का घट कर १४ में गुणग्यान से छूटने हो कर्मों की सत्ता में छूट जाते हैं और निम्न परमात्मा निजानन्दो हो जाते हैं।

यह कथन अनेक जीवों की अपेक्षा है। एक छोटे जीव मनुष्य हो या पशु हो या देव हो या नारकी हो या एकेन्द्रिय हो द्विन्द्रिय आदि हो उसका कथन श्री गोस्वामिजी 'कर्मकाण्ड' में रहस्य वादिये।

उपर्युक्त कथन निम्न नम्बरों से स्पष्ट समझ लेना चाहिये—

नकशा

नाम गुणग्यान	यथ	वदय	सत्ता
मिथ्यात्व	११७	११७	१४८
सामादन	१०१	१११	१४५
मिथ	७४	१००	१४३
अविरतमन्यगच्छि	७७	१०४	१४२ या १४१
देहाविरत	६७	८७	१४३ या १४०
प्रमत्तविरत	६३	८१	१४६ या १३९
अप्रमत्तविरत	५६	७६	१४६ या १३९
अपूर्वकरण	४८	७२	१४६, १४२, १३१ या १३८
अनिवृत्तिकरण	२२	६६	१४६, १४२, १३९ या १३८
सूक्ष्म सांपराय	१७	६०	१४६, १४२, १३९ या १०२
उपरात मोद	१	५९	१४६, १४२ या १३९

सीख मोह	१	५७	१०१
सयाग केवली	१	४१ या ४२	८५
अयोग केवली	०	१२ या ११	अन्त म ०

६२. नौ पदार्थ

सात तत्वों में पुण्य और पाप जोड़ देने में नौ पदार्थ कह जाते हैं। आठ कर्म व उनके १४=भेदों में बढ़ते यह बताया जा चुका है कि पुण्यकर्म व पापकर्म कौन कौन हैं। वास्तव में ये आखिर व वध में गर्भित हैं, परन्तु लोगों में पुण्य पाप का नाम प्रसिद्ध है इसलिये इनको विशेषरूप से भिन्न कहने की अपेक्षा नौ पदार्थ जैन विद्यातम कहे गये हैं।

६३. सम्यग्ज्ञान

ज्ञान तो हर एक ज्ञान में थोड़ा या बहुत होता ही है। यह ज्ञान सम्यग्दर्शन क होने पर सम्यग्ज्ञान कहलाता है। जिसको सात तत्व और नौ पदार्थों के व विरोध कर आत्म भजन के प्रभाव में निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है, उसी के उसी समय उसका सर्वज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम पा लेता है।

पूर्ण सम्यग्ज्ञान कवचज्ञान है जो सर्व कुछ देखता है। यह ज्ञान सम्यग्दर्शन सहित अपूर्ण सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र के प्रभाव से प्रगट होता है। इसके सति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय, वेधल, ये पांच भेद हैं जिनका धर्मेण प्रमाण में किया गया है।

६४. सम्यक् चारित्र्य

वास्तव में जिस समय सम्यग्दर्शन हो जाता है, तब ही स्वरूपाचरण चारित्र भी प्रकट हो जाता है, परंतु कषायों का उदय जारी रहने से व राग द्वेष के होने में पूर्ण सम्यक् चारित्र नहीं होने पाता है, इसी की प्राप्ति के लिए व्यवहार चारित्र की सहायता से आत्मा में एकप्रकटा रूप स्वरूपाचरण का अभ्यास करना उचित है । ❀

इस सम्यक् चारित्र को जो पूर्णपणे निष्कल होकर पाल
सकते हैं वे साधु हैं, जो अपूर्ण पाल सकने हैं वह भावक या
गृहस्थ हैं। वास्तव में बिना साधु हुए सर्व कर्मों का नाश नहीं
हो सकता है।

६५. साधु का चरित्र

फोड़ धीर पुरुष परम धैरागी होकर, कुटुम्ब को समझकर
 व सपसे क्षमा भाव कराकर ना यदि कुटुम्ब का सम्बन्ध न हुवा
 ता यों हो परोक्ष क्षमा भाव करके, किसी आचार्य के पास जाकर
 सर्व धनादि वस्त्रादि परिमह त्याग कर नम्र दिगम्बर हो साधु पद

❖ मोह निमिरावद्वारे दर्शन लाभालाख सज्जना ।

राग द्वे निवृत्त्यै चरण प्रतिपद्यते साधुः ॥ ३० ॥

(संस्कृत-)

भाष्य—मिथ्यादर्शन रूपी अंधारे के जाने पर व हृदय-
 व साम्याज्ञान की प्राप्ति होने पर राग द्वेष की हयारी व मित्र-विरुद्ध का
 च्यारित्र पराजना आदिपू ।

धार लेता है। साधु कैयत मोर पक्ष की विचित्रता जो व रक्षार्थ
भाइने के लिए व कमण्डल में शीघ्र के लिए जल व आवश्यक
हो तो शीघ्र रखते हैं वे और कुत्र नहीं धारण करते हैं। मोर के
पंख बहुत कोमल हाते हैं, इससे छोटे से छोटा कोट भी बच
सकता है व ये पक्ष स्वयं मोर के नाचने पर गिर पड़ते हैं। वे निम्न
१८ मूल गुण पालते हैं —

५ महाव्रत ५ समिति (जिनका वर्णन नं० ४४, ४५ में है)
का पालन और ५ इन्द्रियों को इच्छाओं का दुमन करते हैं। व
आवश्यक नियम कर्म पालते हैं—जैसे (१) सामायिक—अर्थात्
प्रति काल, मध्यमहकाल व मायका १ घं घड़ी, ४ घड़ी व अशक्त
होने पर २ घड़ी शांति स ध्यान का अभ्यास करता। एक घड़ी
चौबीस मिनट की होती है। (२) प्रतिक्रमण—अपने मन, वचन,
काय के द्वारा व्रतों के पालन में जो दोष क्षण गए हों उनका परचा
चाप करता (३) मर्यादयान—आगतो दोष न लगाने का
विचार करना (४) मस्तर—बोझोम तीर्थहर आदि पुरुष
आत्माओं की स्तुति करना (५) वदना—एक किसी तीर्थहर
को मुख्य करके उनकी वदना करनी (६) कायोत्सर्ग—शरीर से
ममता त्याग कर आत्म ध्यान में लगे होना।

इन २१ मूलगुणों के सिवाय सात बातें ये हैं —

(१) लाच—अपने मस्तक, दाढ़ी मूँछ के बालों को
अपना ही गायों से ४, ३ या कम से कम दो मास पीछे चलाइ

हालात । जिसके शरीर में ममता नहीं होगी वही धर्म का ममान धर्मों को नोचते हुए कभी छेड़ित न होगा ।

(२) नम्रपन—शरीर को ढकने के लिये किसी तरह का बन्धनादि साधु महाराज नहीं रखते हैं । बालक के समान लज्जा के भाव से रहित होते हैं ।

(३) स्नान का त्याग—साधु महाराज जीवदया को पालने व शरीर को शोभा मिटाने को स्नान नहीं करते, मंत्र व वायु से ही उनके शरीर की शुद्धि होती है ।

(४) भूमिरायन—समान पर बिना पिन्दीन के सोते हैं ।

(५) दातौन न करना—जीव दया पालन व शोभा मिटाने के हेतु दायन नहीं करते । भोजन के समय मुँह शुद्ध कर लेते हैं ।

(६) स्थिति भोजन—खड़े होकर हाथ में ही जो भाषक अपने लिए बनाए हुये भोजन में से रस द वस्तु को लेते हैं जिससे ममता न बढ़े व वैराग्य की वृद्धि हो ।

(७) एक मुक्त—दिन में ही एक दफे भोजन पाती एक माथ लेते हैं ।

इन २८ मूल गुणों को पालते हुये जो आत्मध्यान का अभ्यास करते हैं व साधु हैं ।

ये साधु पहले कहे हुए सवर व निर्जरा के उपायों को

घार लेता है। साधु केवल मोर पक्ष की विच्छिन्नका जोष रक्षा
भाड़ने के लिए व कमसुड़ा में जोष के लिए जल व आवश्यक
हो सो शस्त्र रखते हैं वे और कुत्र नहीं धारण करते हैं। मोर
पक्ष बहुत कोमल दाँते हैं, इससे छोटे से छोटा कीट भी चूँ
सकता है व य पक्ष स्वयं मोर के नाचन पर गिर पड़ते हैं। वे निम्न
२८ मूल गुण पालते हैं —

५ महाप्रत, ५ समिति (जिनका वर्णन सँ० ४४, ४५ में है)
का पानन और ५ इन्द्रियों की इन्द्रियों का वृमन करते हैं। व
आवश्यक निम्न कर्म पालते हैं—जैस (१) सामायिक—मया
माल काल, मध्यमकाल व भार्यका १ घं, ४ घं व अशक
होन पर २ घं शान्ति म ध्यान का अभ्यास करता। एक घं
चौतीस मिनट की होती है। (२) प्रतिक्रमण—अपने मन, वचन
काय के द्वारा प्रतीक पदान में जो दाप लग गए हों उनका परचा
चाप करना (३) प्रत्याख्यान—आगतो दोष १ लगाने का
विचार करना (४) संस्तव—चोचोम, तोर्यद्वर आदि मूत्र
आत्माओं की स्तुति करना (५) वदना—एक हिसा तीर्थकर
की मुख्य करक वनको वदना करना (६) कायोरसर्ग—शरीर से
गमता त्याग कर आत्म ध्यान में लीन होना।

२१ मूलगुणों के सिवाय सात बातें ये हैं —

(१) लोंच—अपने मस्तक, दाढ़ी मूत्र के थालों को
अपनी ही हाथों से ४, २ या कम से कम दो मास पीछे उखाड़

हालना । जिसके शरीर में ममता न होगी वही घास व समान
घालों को नोचते हुए कभी छेड़ित न होगा ।

(२) नम्रपन—शरीर को दकन के लिये किसी
तरह का पक्षादि साधु मदाग्राज नहीं रखते हैं । बालक के समान
लज्जा के भाव से रक्षित होते हैं ।

(३) स्नान का त्याग—साधु मन्त्राज जीवदया को
पालने व शरीर की शोभा मिटान को स्नान नहीं करते, मन्त्र व
साधु से ही उनके शरीर को पुष्टि होती है ।

(४) भूमिशयन—जमान पर बिना बिछौन के सोते हैं ।

(५) दातोन न करना—जीव दया पालने व शोभा
मिटान के हेतु दतवन नहीं करते । भोजन के समय भूह शुद्ध
कर लेते हैं ।

(६) स्थिति भोजन—खड़े होकर हाथ में ही जो भोजन
भपने लिए बनाए हुये भोजन में से रख दे वसों को लेते हैं जिससे
ममता न बढ़े व वैराग्य की वृद्धि हो ।

(७) एक भुक्त—जिन में ही एक दूध भोजन पानी एक
साथ लते हैं ।

इन २८ मूल गुणों को पालते हुये जो आत्मग्यान का
अभ्यास करते हैं वे साधु हैं ।

ये साधु पहले कहे हुए सवर व निर्जरा के उपायों को

जिसका वर्णन नं० ५२ में किया जा चुका है। मुग्धता से ध्यान
का प्राप्ति, मध्याह्न, संध्या तीन दफे या दो दफे अभ्यास करने
जिसको सामायिक कहते हैं।

सामायिक की रीति यह है कि एकाग्र स्थान में जाकर
परिग्रह, ध्यान, वाय करके, एक आसन नियत करके
यह परिणाम करके कि जबतक सामायिक करता हुआ स्थान
जा कुछ मेरे पास है इसका विचार अन्य वस्तुओं का मुझे त्याग
फिर पूर्व या उत्तर की तरफ मुंह करके हाथ लटकाये सीधा पड़ा
हो, तब दफे छहोकर मन्त्र पढ़कर भूमि पर दण्डवत् करे, कि
वही तरह खड़ा होकर वही तरह नौ या दस दफे वही मन्त्र पढ़
पढ़ कर, हाथ जोड़कर तान दफे आधत्त और एक शिरोनति करे
जावे हुए हाथों को धीरे में मन्त्र और घुमाने को आधत्त और
उन हाथों पर मस्तक झुका कर मन्त्र को शिरोनति कहते हैं। ऐसा
करके फिर हाथ छोड़कर खड़े ० द्वादशो तरफ पाटे, कि
नौ या दस दफे मन्त्र पढ़ तीन आधत्त एक शिरोनति करे। ऐसा
ही शेष दो दिशाओं में पलटते हुए करके फिर पूर्व या उत्तर की
तरफ मुस करके पश्चात्तन व अन्य आसन से बैठकर शांत भाव
स सामायिक का पाठ संस्कृत या भाषा का पढ़े, फिर मन्त्रों का
जाप देवे, धर्मध्यान का अभ्यास करे, जैसा नं० ५३ में ५८ तक
में कहा गया है। अंत में वही दिशा में पड़े हो नौ दफा मन्त्र
पढ़कर भूमि पर दण्डवत् करे।

आधत्त शिरोनति का हेतु चार दिशाओं में स्थित दूर, गुरु

आदि पुत्र पदार्थों को जिनय है। ऐसा सामायिक हर एक के ४८ मिनट करे तो अच्छा है, इतना समय न दे मफे तो जितनी देर अभ्यास कर सके करे। ॐ

(६) दान—अपन और दूसरे के हित के निष्ठ प्रेम भाव से देना सो जान है। इसमें दो भेद हैं —

१ पात्र दान—जिसको भक्तिपूर्वक करना चाहिये । जिसमें स्तत्रय धर्म पाया जाये वनरा पात्र कहत हैं । वे तीन प्रकार हैं :—

१ उत्तम—दिगम्बर जैन मुनि २ मध्यम—व्रती भावक ३ अधम—व्रत रहित भट्टायान गृहस्थ स्त्री पुरुष ।

२, पशु दान—जो कोई मनुष्य, पशु या जन्तु दुखी हो उसका कष्ट को मिटाना ।

देन योग्य चार पदार्थ हैं—आहार, औषधि, विद्या या ज्ञान तथा अभयपना या प्राण रक्षा । गृहस्थ जब भोजन करे तो पहले आहार दान दे ले, कम से कम एक मास ही दान के निमित्त निष्कात देवे ।

इन छ निमित्त कर्मों का गृहस्थ इन तरह करे—सूर्योदय से पहले उठकर साधारण जल से शुद्ध हो प्रथम स्नान करे अर्थात् सामायिक करे, जमी समय समय की प्रतिष्ठा करके फिर नित्य की शरीर क्रिया करके देवपूजा करे, गुरु हो तो गुरुभक्ति करे, फिर

* सामायिक पाठ भूमिनामस्मृत्य छन्द के भावार्थ सहित ॥
जाने में दक्षतर दिगम्बर जैन धर्मावादी सूरत धार से मिल सकता है ।

दो मन्त्र जपते हैं। एक ण्य दाने पर पूर्णमन्त्र फिर तीन दानों पर सम्यग्दर्शनायनम, सम्यग्ज्ञानायनम, सम्यक् चारित्रायनम कहते हैं।

यदि कोई छोटा मन्त्र अपना चाहे तो नीचे लिखे मन्त्र भी जपे जा सकत हैं।

१ अरहन्त सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वमाधुष्योन्म
(१२ अक्षर) २ अरहन्त सिद्ध (६ अक्षर) ३ असि आ ४
सा (५ अक्षर) ॥ अरहन्त (४ अक्षर) ॥ सिद्ध (२ अक्षर)
६ ॐ (५ अक्षर) ।

ॐ पाँच परमेश्वरी का वाचक है, क्योंकि इनके प्रथम अक्षरों से बना है। अरहन्त का अ, सिद्ध को अशरीर कहते हैं इसका अ, आचार्य का आ, उपाध्याय का उ, साधु को मुनि कहते हैं अतः इसका प्रथम अक्षर म् मिलकर ओम् या ॐ बना है।

इस मन्त्र के प्रभाव में परिणाम निर्मल हो जाते हैं। बहुत स प्राणा मरते समय श्मशान मन्त्र सुनकर निर्मल भावों से शुभ गति में चले जाते हैं।

६८. मन्त्र प्रभाव की कथा

श्री रामचन्द्र मुमुक्षुहृत् पुण्याय कथा कोष में इस महा मन्त्र की अनेक कथाएँ हैं उनमें से एक कथा यहाँ दी जाती है —

धनारस के राजा अकम्पन की कन्या सुलोचना विष्णुपुर के राजा विष्णुकीर्ति की कन्या विष्णुश्री के साथ विद्याभ्ययन करती

धी। एक दूजे फूलों को चुनते हुए विध्यधी को एक ताम्र ने फाटा, सभी समय सुलोचना १ शुभाकार मन्त्र सुनाया जिसके प्रभाव से वह घर पर गङ्गादेवी उत्पन्न हुई। इस मन्त्र के द्वारा भावों में शांति आने से शुभ गति में जीव चला जाता है।

६६. श्रावक का साधारण चारित्र्य

एक अज्ञात श्रावक गुरुस्थ को साधारणरूप से आत्मा की वृत्ति के हेतु से नित्य नीचे लिखे छः कर्मों का अभ्यास अपनी शक्तियों के अनुसार करना चाहिए —

(१) देवपूजा—अरहन्त और सिद्ध भगवान का पूजन करना जिसका वर्णन न० १८ में किया जा चुका है।

(२) गुरु भक्ति—आचार्य, व्याख्याय या साधु की भक्ति और सेवा करना व उनसे उपदेश लेना।

(३) श्राव्याय—प्रमाणिक जैनशास्त्रों को रुचि से पढ़ना, सुनना व उनके भावों का मनन करना।

(४) समय—५ इन्द्रिय और मन पर क्राय रखने के लिए नित्य सवेरे ४ घंटे के लिये भोग व उपभोग के पदार्थों का अपना काम के लायक रख व शेष का त्याग करना। जैसे आज मिष्ट पदार्थ न खाएंगे, सासारिक गान न सुनेंगे, वस्त्र इतने काम में लेंगे आदि तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु वनस्पति और उस इन छः प्रकार के जीवों की रक्षा का भाव रखना, व्यर्थ उनकी कष्ट न देना।

(५) तप—अन्नदान आदि १२ प्रकार तप का अभ्यास

अच्छी तरह जाने हैं । इसी साधु पद का ही अरहन्त व सिद्ध पद प्राप्त होना है । ❀

६६. आचार्य उपाध्याय व साधु का अन्तर

साधुओं में हा काय की अपेक्षा तीनों पद हैं । जो दूसरे साधुओं की रक्षा करते हुए उनसे शिक्षा लेकर, उन पर अपनी आज्ञा चला कर, उनके चरित्र की शुद्धि करते हैं वे साधु आचार्य हैं ।

जो साधु विशेष शास्त्रों व ज्ञानां होकर अन्य साधुओं को शिक्षा पढ़ाते हैं वे उपाध्याय हैं ।

जो मात्र साधन करते हैं वे साधु हैं ।

१४ गुणस्थानों में से जो छठे सातवें गुणस्थान में हो रहते हैं वे आचार्य व उपाध्याय हैं जो छठे से लेकर बारहवें तक साधते हैं वे साधु हैं ।

६७. जैनियों का एमोकार मंत्र व उसका महत्त्व

सर्व जैन लोग जोचे लिखा महामन्त्र जप करते हैं और उसको अनादि मूलमन्त्र कहते हैं ।

“एमो अरहन्ताण, एमो सिद्धाण, एमो आइरीयाण ।

एमो उवग्गयाण, एमोनोए सव्व साहूणम् ॥

❀ २८ मूल गुण —

यदसमिदिदियरोजो षोवावरसकं मचेळ मरादाण ।

सिदि सवण मइसवण, ठिदिओपव जेव भत्तव ॥ ८ ॥

(मन्त्रचक्रसार चरित्र)

इसमें ७ + ५ + ७ + ७ + ९ = ३५ अक्षर हैं तथा ११ + ९ + ११ + १० + १६ = ५६ मात्राएँ हैं । इसका अर्थ है—

लोक में सब अरहन्तो को नमस्कार हो, सर्व सिद्धों को नमस्कार हो, सर्व आचार्यों को नमस्कार हो, सर्व उपाध्यायों का नमस्कार हो, सर्व साधुओं को नमस्कार हो । इस जगत् में सबसे अधिक माननीय ये ही पाँच पद हैं ।

अरहत शरीर रहित परमात्मा हैं भिनका गुणस्थान १३ वा य १४ वा है । सिद्ध शरीर रहित परमात्मा हैं । आचार्य वीक्षा दाता गुरु व उपाध्याय ज्ञान ज्ञाना मुनि, ये दोनों छठे सातवें गुणस्थान में होते हैं । इनके निधाय मात्र साधन बल से छठे से १० वें गुणस्थान तक साधु कहलाते हैं । भवे ० ईशदि देव व चक्रवर्ती भी इनके चरणों को नमस्कार करते हैं ।

यह मन्त्र १०८ दफे जपा जाता है, क्योंकि १०८ प्रकार की जीवों के बंध के आधार भाव हुआ करते हैं ।

किसी काम का विचार करना कुरुम्भ है, उसका प्रयत्न समारम्भ है, उसको शुरू कर देना आरम्भ है । हर एक मन, वचन, प्रयत्न द्वारा हो सकने हैं, इनसे भी भेद हुए । इन तीनों को स्मरण करना, करना व किन्हीं १ क्रियाओं का अनुमोदन करना, इससे २७ भेद हुए । हर एक क्रोध, मान, माया, लोभ से होते हैं, इस तरह १०८ भेद हुए। —

माला ॥ १११॥ दाने होते हैं । तीन दाने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र के सूचक होते हैं । जप करते हुए १००

शास्त्र पढ़े या सुने, फिर घर आकर दान दे भोजन करे । सध्या को भी पहले सामायिक करे, फिर जिन मन्दिर में जा दर्शन करे, शास्त्र पढ़े, या सुने । सोते वक्त शांत चित्त हो कम से कम नौ बार मन्त्र पढ़कर सोवे । उठने हुए भी पहले नौ बार मन्त्र पढ़ ले फिर राधा छोड़े ।

दान में यह विचार रखें कि अपनी कुल आप का चौथाई अरस्य दान करे—एक भाग नियत छर्चमें दे, एक भाग विवाहदि छर्च के लिये, एक भाग सचय के लिये व एक भाग दान के लिये अलग करे ।

यदि दान में चौथाई न कर सक तो इठा करे या कम से कम दसवा भाग अलग करे व उस आवश्यकानुसार चार दानों में व अन्य धर्म कार्यों में खर्चे । ७

साधारण गृहस्थों को इन आठ धानों का भी त्याग करना चाहिये । ये गृहस्थ के ८ मूलगुण हैं—

१ मद्य, २ मांस, ३ मधु, ४ स्त्रुता (सकला) व्रतहिता ५ स्त्रुज असत्य, ६ स्त्रुज चारी, ७ स्त्रुज कुशील, ८ स्त्रुल परिग्रह ।

स्त्रुता से प्रयोजन अन्याययुक्त का है । गृहस्थो मासाहार व धर्म व शौक आदि से पशुओं का नहीं मारता है । अति

७ दशरूप गुरुपास्ति स्वाध्याय सवमस्तव ।

दान चेति गृहस्थानां षट् कर्मो वि दिने दिने ॥ ७ ॥

[पञ्चमदि पञ्चोपनिषद् आपकाचा]

(राज्य कर्म), मसि (लिखना), कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या या पशुपालन, इन छ कार्यों से पैसा कमाता है। इन में जो दिमा होता है वह सफाई नहीं है, आरम्भी है, उसको गृहस्थों के पास नहीं सकता, तो भी यथाशक्ति बचाने का ध्यान रखता है।

गृहस्थी राज्य कर सकता है, दुष्टों व शत्रुओं को दण्ड दे सकता है व सेन से युद्ध कर सकता है।

राजदण्ड व लकड़हट हो ऐसा मूठ बोलता नहीं व पैसा पारी करता नहीं, अपनी विवाहिता स्त्री में सन्तोष रखता है अपना समस्त घटान को सम्पत्ति व परिणाम कर लेता है कि इतना धन हो जाय पर मैं राज्य सन्तोष करके धर्म व पुण्यकार में जीवन बिताऊँगा।

मास से कमी शरीर पुष्ट नहीं होता है, यह दिखाकारी अमात्यिक आहार है। मद्य नशा लावा है, शन को प्रिया होती है।

मधु मक्षियों का उगाज है, इनमें शत्रु छड़े पैदा होने रहते हैं व मरत रहन हैं।

इन तीनों को औपधियों में भी रहन चाहिए।

७ मद्य मांस मधु त्यागो साधुनाम्बर।

भेदी मूढगुणार्णवः गुरिर्नान्तरिका इति॥

७० श्रावकों का विशेष धर्म

ग्यारह प्रतिमाएँ

श्रावकों व लिए अपने आचरण की उन्नति के लिये ग्यारह श्रेणियाँ हैं जिन में पहली पदलो श्रेणी का आचरण पाते रह कर आगे का आचरण और बढ़ा लिया जाता है। इन ही को प्रतिमा कहते हैं। प्रतिमा जैसे अपने आसन में रह रही है वैसे ही स्वकृतंध्य में श्रावक को मजबूत रहना चाहिये।

(१) दर्शन प्रतिमा—

सम्यग्दर्शन में २५ दोष न लगाना। सम्यग्दर्शन का घारी निम्न आठ अङ्ग पालना है —

(१) नि राक्षित—जैन के तत्त्वों में शङ्का न रखना तथा शीरसा के साथ जीवन बिताने हुए इस लोक, परलोक, रोग, मरण, भरसा, अगुप्ति, अक्समात्, इन सात तरह के भयों को चित्त में न रखना।

(२) नि काक्षित—भागों को अक्षुप्तिकारी व क्षय भङ्गुर व वध का कारण जान कर उन की अभिलाषा न करना।

(३) निर्विचिक्षित्ता—दुष्क्री व मलीन चेतन व अचेतन वस्तु पर धृष्टा न करना।

(४) अमूढदृष्टि—गूर्वता से देखा देखो कोई अधर्म किया धर्म जान कर न करना।

(५) वस्त्र—दूपों के औगुण न प्रकट करना ।

(६) स्थितिकरण—धर्म में आप को व दूसरों को दृढ़ करना ।

(७) वात्सल्य—धर्म व धर्मात्मा में प्रेम रखना ।

(८) प्रमादना—धर्म का वनवि करना ।

इन आठ का न पालना मो आठ दोष तथा अति (माता का कुटुम्ब), कुल, धन, वन, रूप, विद्या, अधिकार तथा वप, इन का अभिमान करना, ऐसे ८ दोष—

देव, गुरु और लोक की मूढ़ता, ऐसी तीन मूढ़ता अर्थात् लोगों का देखा देखी जो देव गुरु नहीं हैं उनको मानना व जो किया करने योग्य नहीं हैं, उनको करना । स्वर्ग कलम दायात आदि पूजना ।

कुदेव कुगुरु और कुशास्त्रों की तथा इनके सेवकों की संगति रखना, यह छ अनायास । ऐसे २५ दोष दूर रख कर निर्मल भद्रा रखनी चाहिये । नाथे विरहे मात व्यसन आदि अति बार सजित दूर कर देना —

१ अन्नान खेलना और न सास, चौपड़ आदि बदकर खेलना ।

२ माम्रान खाना और न उन पदार्थों को खाना जिन में मांस का संसर्ग हो । जैसे मर्यादा से बाहर का भोजन । भोजन की मर्यादा इस तरह है—

दाल, भात, कढ़ी आदि को छ पटे की, रोटी पूरी आदि

की दिन भर, मरुगान सुदान लादू आदि की २४ घण्टे की, जल
 बिना अन्न व शक्कर स गता हुई की पिसे आटे के समान
 अर्थात् (मारतवर्ष की अपेक्षा) वर्षा ऋतु में ३ दिन, उष्ण में
 ५ तथा शीत ऋतु में सात दिन । बिना अन्न व जल के बूरे
 आदि की वर्षा १७, उष्ण में पन्द्रह दिन तथा शीत में एक मास ।

बूध निगलने पर ४८ मिनट के भीतर छोटे हुये की २४
 घण्टे, दही की भा २४ घण्टे, आचार मुरब्बे की २४ घण्टे ।

मस्खन को ५८ मिनट के अन्दर सा फर घो बना लेना
 चाहिये । उसका जहा तक स्वार १ बिगड़े, शरपादि मर्यादा के
 भीतर भोजन करना ।

३ मदिरा आदि सब तरह का मादक पदार्थ न लेना
 जिस औषधि में शराब का मेल हो न पाना ।

४ आटेद—शौक में पशुआ न शिकार न करना व उन
 के पित्रास, मूर्ति आदि को कपाय स श्रम न करना ।

५ चोरी—पराग माल न चुराना, न चोरी न मान लेना ।

६ बेरपा—बेरपा सेवन न करना, १ उनकी सगति करना
 न इनका नाच देखना, न इनका गाना सुनना ।

७ परस्त्री—अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रिया के स
 स्त्रील व्यवहार न रखना ।

८ मधु न खाना, न इन पृथों को खाना, जिनमे मधु पद
 होता है । इसमें मक्खियों को कष्ट दिया जाता है, इनके प्रा
 त्तिये माले व मधु में अनेक जन्तु पैदा होकर मरते हैं ।

[१७७]

है कृमि संहित का न घाना-जैसे पोपन, घड़, गूर
पाकर व अस्थार के फा। अन्य फलों को भी तोड़ कर देना कर
गाना।

१० पानी कुण, घाववा नदी का जो स्वभाव से घृता हो
वसुधा दोहरे गाढ़े वस्त्र में धान, उसके जंतुओं को वहीं पहुँचा
कर सहास जल गिरा दे बर्तना।

११ रात्रि को भोजन पान न करना, यदि अशक्य हो तो
पयसास्ति त्याग का अभ्यास करना।

१२ देर पूजा आदि छ कर्मों में लीन रहना।

(२) व्रत प्रतिमा —

इस प्रतिमा का भारी बारह व्रतों का पालन करे। पाच
अंगुष्ठों की सर्वाचार (दोष) रहित विषय से पालना। उसके
सहायक सात रोलों को पालना व उनके अतीव त्यों के टालने का
अभ्यास करना। पाच अंगुष्ठ ये हैं —

१ अदिसा अंगुष्ठ-सहन करके उस जंतुओं को न
मारना। इसके पाच अक्षार हैं-कषाय से प्राणी को घृन में
डालना, लाठी चाबुक से मारना, अन्न वस्त्र छेदना, किसी पर
अधिक बोझ लादना, अपने आधान मनुष्य या पशुओं को
मोक्ष पान ममक पर न देना व कम देना, य दोष न लगाने
आदिये। न्याय व गुम भावना से यह कार्य किये जायें तो दोष
नहीं है।

२ अथ अंगुष्ठ-स्यून मूठ न चोना। इसके भी ५

अतीचार हैं—दूतों को मूठा व मिथ्या मार्ग का उपराध देना, पति पत्नी का गुप्त आता को छद्मना, मूठा लस निबन्ध अधिक परिमाण में रक्खा हुई वस्तु को अल्प परिमाण में मागने पर दे देना, शेर अश्व को जान बूझकर अग्न्या लेना, दो चार का गुप्त सम्मति कषाय से प्रगट कर देना ।

३ अर्चोर्ध्व अनुव्रत—अधून घोरी न करना । इसके ५ अतीचार हैं—दूतों का चारों का उपाय मताना, चारों का माग लेना, राज्य में गड़बड़ होने पर अन्याय सत्तन देन करना, मर्यादा का उल्लंघन, कमती बढ़ना तोटना नापना, सबों में मूठो वस्तु मिला सबो कद कर बेचना या मूठो रुपया चलाना ।

४ मध्यचर्च अनुव्रत—अपनी स्त्री में संतीष रखना । इसके पांच अतीचार बधाना—अपने पुत्र, पुत्री सिवाय दूसरों को सगाई विवाह करना, बेरयाओं से सगति रखना, उग्रभिचारिणी पर मित्रियों में सगति रखना, काम का नियत अंग छोड़कर और अंगों में बेष्टा करना, स्त्रियों से जो अनिराग काम चेष्टा करनी ।

५ परिग्रह परिमाण अनुव्रत—अपने इच्छा तथा आक रषकता के अनुसार निम्न १० प्रकार की परिग्रह का जीवन पर्यन्त परिमाण कर लेना :—

१ क्षेत्र—छात्री जमीन खेतादि, २ वस्तु—मकानादि, ३ धन—गाय भैंस घोड़ा आदि, ४ धान्य—अन्नादि, ५ दिगम्ब—घोरी आदि, ६ सुवर्ण—सोना जवादिपट आदि, ७ दासी, ८ दास, ९ कुम्भ—काँड़े १० ग्राह—वर्तन ।

एक समय में इतने से अधिक न रक्खना देना परिमाण कर ले। इनक पाँच असाधारण ये हैं कि इन दूग वस्तुओं के पाच आड़े हुए, इन में से एक आड़े में एक की मर्यादा बढ़ा कर दूसरे का पटा लेना, जैसे क्षेत्र रक्खे ये ५० बाघे, भूखान ये दश, तब क्षेत्र ५५ बाघे करके मकान एक घरा देना। साथ हीन ये हैं :—

(१) दिग्घत—जन्म पर्यन्त सासारिक कार्यों के लिए दश दिशाओं में जाने आना, साल भेजन भगान का प्रमाण बाध लेना, जैसे पूर्व या २००० कोरा संक। इसके निम्न पाच अनीचार हैं—ऊपर को लोभ या भू से अधिक चने जाना, नाचे को अधिक जाना, आठ दिशाओं में किसी से अधिक चने जाना, किसी तरह मर्यादा बढ़ा लेना, किसी तरह पटा देना, मर्यादा को पाद न रखना।

(२) देशघत—प्रति दिन व नियमित काल एक दिग्घत में की हुई मर्यादा को पटा कर रख लेना। इसके निम्न पाच अनीचार हैं :—मर्यादा के बाहर से भगाना या भेजना, बाहर धाले से बात करना, उस रूप दिखाता या कोई पुद्गल फेंक कर काम बढ़ा देना।

(३) अनर्थदृष्ट विरति—अनर्थ पाप से बचना, जैसे दूसरों को पाप करना का उपदेश देना, उनका गुना विचारना, हिंसाकारी वस्तु खंडन व बरखी आदि मागे देना, ग्योटी कपार्ये पढ़ना, सुनना आलस्य से बचना, जैसे पाप व्यर्थ फेंकना आदि। इसके निम्न पाच अनीचार हैं—असम्य भण्ड बचा कटना,

काय की कुचेष्टा सहित भगवद् ध्यान कहना, बहुत बुरावाद करना, बिना विचारे काम करना, व्यर्थ मोम उपभोग को एहन करना । इन तीन को गुणधैर्य कहते हैं ।

(४) सामायिक—नित्य तीन, दो व एक सध्या को धर्मध्यान करना—जसा प ल तप आवश्यक में कहा जा चुका है । इसके निम्न पाच अताचार हैं उनको बर्धाना —

मन में अशुभ विचार, अशुभ वचन कहना, अशुभ कार्य को धर्ताना, अन्याय रमना, पाठ आदि भू जाना ।

(५) मोपशोखास—मास में दो अष्टमा, २ चौदस, इ बार दिन उपवास करना अथवा एक भुक्त करना व धर्मध्यान में समय निताना । इसका पाच अताचार ये हैं —बिना दले व बिना भाड़े कोई वस्तु रखना, कोई वस्तु उठाना, चढ़ाई आदि विद्याना, अन्याय करना, धर्ममाधन को प्रियाया की मुला देना ।

(६) भोगोपभागपरिमाण—पाचों इन्द्रियों के योग्य पदार्थों का नियम परिमाण करत । गृहस्थों के नियम निम्न १७ तरह के नियम प्रसिद्ध हैं —१ भोजन के दूके २ पाचो भोजन निषाद के दूके ३ दूध दही घी शक्कर निमक तेल इन ५ रसों में किम का त्याग ४ तल उबटन के दूके ५ फून मँघना के दूके ६ सोवूना खाना के दूके ७ साधारण गाना बजाना के दूके ८ साधारण नृत्य देखना के दूके ९ काम करने नहीं या के दूके १० स्नान के दूके ११ वस्त्र कितने जाड़े १२ आमूषण कितने १३ बैठने क सा १४ सोने का शय्या कितनी १५ सराये

द्विनायक के दके १६ हरी तरकारा व सचित्त वस्तु कितनी
 (७) सर्व भोजन पान वस्तुओं की सरया । इनमें से जिस किसी
 का न भागा हो, बिल्कुल त्याग देवे । इसमें पांच अतोचार हैं—
 भूलसे छोड़ी हुई सचित्त वस्तु खालना, छोड़ी हुई सचित्त
 पर रखी हुई या उससे ढंका हुई वस्तु खाना, छोड़ी हुई सचित्त
 से मिली वस्तु खालना, कामोदीपर रम खाना, अपक व दुष्पक्व
 पदार्थ खाना ।

(७) अतिथिसंनिभाग—अतिथि या साधु को दान
 देकर भोजन करना । अपने कुटुम्ब के लिये बनाये भोजन में से
 पहले कहे तीन प्रकार के पात्रों को दान देना । नौ प्रकार भक्ति
 योगसम्भव पानना—भक्ति से पैदा होता है (घर में ले जाना),
 पूजन आना देना, पग धोना, नमस्कार करना, पूजना, माँ शुद्धि,
 पत्नी शुद्धि, काय शुद्धि, भाजन शुद्धि रखना । साधु के लिये नौ
 भक्ति पूर्ण करने योग्य है । इसमें निम्न पांच दोष बचाना
 चाहिये, जो साधु व सचित्त स्वामी को दान की अपेक्षा से हैं —
 सचित्त (हरे परो) पर रखी वस्तु दान, सचित्त से ढकी वस्तु
 देना, आपसुतापर स्वयं न दान द दूसरे को दान करना को कह
 कर चल जाना, इर्ष्या से देना, समय उल्लंघन पर देना ।

इन अन्त के चार को शिक्षाप्रत कहल है ।

(३) सामायिक प्रतिमा—

इसमें इच्छा यात बढ़ जाती है कि मायिक को नियमपूर्वक
 तीनों दूँते सामायिक करनी हावी है—सर्वदे, दोषहर और सौम्य ।

कम से कम समय ४८ मिनिट का लगाना चाहिये । किमो विशेष
अवसर पर कुछ कम भी लग सकता है । सामान्यिक पांच दोष
रहित करना चाहिये ।

(४) मोषधोषवास प्रतिमा—

इसमें एक मास म दो अष्टमी दो चौदस बार एक उप-
वास करना और उमके पाँच दोष दानना । इनके दो तरह के
भेद हैं :—

प्रथम यह कि पहले व तीसरे दिन एक एक भोजन, बीच
में १६ पहर का उपवास, मध्यम पहले दिन की संध्या से तीसरे
दिन प्रातः का तक १२ पहर, जपम्य भोजन पान इतने काल
छोड़ते हुए व्यापार व आरम्भ का त्याग केवल अष्टमी तथा
चौदस को आठ पहर ही करना ।

दूसरा भेद यह है कि पहले और तीसरे दिन एक मुक्त
करना तथा १६ पहर धर्म ध्यान करना । मध्यम यह कि इस मध्य
म केवल जल लेना । अपन्य यह है कि जल व सिवाय अष्टमी या
चौदस को एक मुक्त भी करना । जैसी शक्ति हों उसके अनुसार
उपवास करना चाहिये । उपवास का दिन सामान्यिक, स्वाध्याय,
पूजा आदि में विराम चाहिये ।

(५) संचित त्याग प्रतिमा—

यात्री वनस्पति आदि कच्ची अर्थात् एकेन्द्रिय जीव संहित
दशा में न लेना । जिह्वा का स्वाद जीतने को गर्म या प्राशुक पानी
पीना व रसी दुर्द या विन्न भिन्न का दुर्द या लोण आदि से मिली

हुई सरकारी खाना । सचित्त व स्वाभाविक मात्र का यहा त्याग है । सचित्त के व्यवहार या व सचित्त को अचित्त बनाने का त्याग नहीं है । सचित्त को अचित्त बनाने की रीति यह है—

सुककं पक्कतत्त अवलल्लभयेहि मिस्सियदब्बं ।

ज ज तेण्य छरणं स सर्वं पासुर्यं भणियं ॥

‘अर्थात्—सूखी, पकी, गर्म, छटाई या नमक से मिली हुई तथा चमत् से धिन्न भिन्न की हुई वस्तु माशुक है । पाणी में हाथ आदि का घूरा बालन से यदि उसका ‘घरणं’, रस बदल जाये तो वह अचित्त होता है । पके फल का गूदा माशुक है । बीज सचित्त है । इसमें भोगोपभाग क ५ दोष प्रधाना चाहिये ।

(६) रात्रि भुजितत्याग प्रतिमा—

रात्रि को जलपान व भोजन न आप करना, न दूसरों को कराना । दो घण्टी अर्थात् ४८ मिनट सूर्यास्त से पहले तक व ४८ मिनट सूर्योदय होने पर भोजन पान करना, रात्रि को भोजन सम्बन्धी आरम्भ भी नहीं करना, पूर्ण संतोष रखना ।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा—

अपनी स्त्री भोग का भी त्याग कर देना । सदृशीन वस्त्र पहनना, वैराग्य भावना में लीन रहना ।

(८) आरम्भत्याग प्रतिमा—

कृषि नाशिम्य आदि व रोटी बनाना आदि आरम्भ विस्तृत छोड़ अपने पुत्र व अन्य कोई भोजन के

लावे तो जीम आना, अपने हाथ में पातो रख न लेना । जो कोई दे उमम अपना व्यवहार बड़े मन्तोप म करना ।

६) परिग्रह त्याग प्रतिमा—

धन धायादि परिग्रह दात के लिये स्नेह रोग पुत्र पौत्रों को दे देना, अपने लिय कुछ आवश्यक वस्त्र व भोजन रख लेना और घर्मजाला आदि न ठहराना, भक्ति में मुलाये जान पर जो मतों से तोप न जान लेना ।

१०) अनुमतित्याग प्रतिमा—

सामारिक कार्या में सम्मति देना का त्याग न था सो इसमें न पित्तुरा त्याग देना । भोजन के समय मुलाये जाने पर जीम लेना ।

११) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा—

अपने निमित्त किये हुए भोजन का त्याग यदा होता है । जो भोजन गृहस्थ ने अपना शुद्ध मन से किया हो वसा न स भिक्षा द्वारा भक्ति से दिये जान पर लेना उचित है । इसका निम्न दो भेद हैं —

१ क्षुत्लक—एक खरब चादर व एक कोपीन या लगोठ रखते हैं व मोर पंख की पीत्री व कमण्डल रखते हैं । बालों को कतराते हैं । गृहस्थी के यहाँ एक दिन में एक दफे से अधिक नहीं जीमते । भोजन थाली में रख कर बैठे हुए करते हैं ।

२ ऐलक—जो केवल एक लगोटी ही रखते हैं । मुनि की क्रियाओं का अभ्यास करते हैं । गृहस्थी के यहाँ बैठकर

हाथ में जो रत्ना लाने उसे ही जीमते हैं। स्वयं मस्तरु, दाढ़ी मूत्र के केशों को उखाड़ डालते हैं।

जब लंगोटा भी छोड़ दी जाती है तब साधु के २८ मूल गुण धारण किये जाने हैं जिनका वर्णन न० ६५ में किया जा चुका है।

इन ग्यारह प्रतिमाओं में आत्मध्यान का अभ्यास बढ़ाया जाता है तथा इससे धीरे-२ वन्नति होती जाती है। ॐ

७१. जैनियों के संस्कार

जिन त्रिषास्त्रों में धर्म का संस्कार मानव की बुद्धि पर पड़े ऐसे संस्कार श्री महापुराण (जिननेनाचार्य छन) अ० ३८, ३९, ४० में हैं।

सन्तान को योग्य बनाने के लिये इनका किया जाना अनिवार्य है। जो जन्म के जैनी हैं, उनको नियत कर्त्र-व्यय क्रियाएँ ५३ बताई गई हैं तथा जो मिथ्यात्व छोड़ कर जैनी बनने हैं, उनके लिये ही सान्त्वय नाम की ४८ क्रियाएँ हैं।

इन क्रियाओं में प्रायः पंच परमेष्ठों का पूजन, होम, विधानादि होता है, हम जरा यहाँ नोचे बहने सर्वेष्वयं मात्र विश्रुताः हैं।

● दसणवय सामायिय वीसह सच्चित्तराय भवेय ॥ ब्रह्मरूप-परिणाद भणुमल मुष्टिह दस विरयेदे वर॥ (कुन्दकुम्भेह्नद्वारा-गानुमेष्ठा) भावक पदार्थन देवेदेकादशोपनिर्गानियप्रसमु। एष गुणाः पूर्व गुण सद-छोत्पिते त्वम निवृत्ताः ॥ १३६॥

[विशेष देखो रत्नकरभट्ट श्लोक १३० से १३०]

[१] गर्भाधान क्रिया—पत्नी रजम्भना होकर पाचवें या छठे दिन पति सहित देव पूजादि करे, फिर रात्रि को सङ्ग्राह करे ।

[२] मीति क्रिया—गर्भ से तीसरे महीने पूजा व उत्सव करना ।

[३] शुभ्रीति क्रिया—गर्भ से पांचवें मास में पूजा व उत्सव करना ।

[४] पृति क्रिया—गर्भ पृथ्वि के गिये ७ वें मास में पूजा व उत्सव करना ।

[५] भोद क्रिया—नौवें मास में पूजा व उत्सव काके गर्भिणी के शिर पर मंत्र पूर्वक बीजाक्षर लिखना व रक्षासूत्र बाधना ।

[६] विषोद्वव क्रिया—जन्म होने पर पूजा व उत्सव करना ।

[७] नाम कर्म क्रिया—जन्म से १२ वें दिन पूजा कराके गृहस्थाचार्य द्वारा नाम रक्षशान्ता व उत्सव करना ।

[८] बहिर्यान क्रिया—दूसरे, तीसरे या चौथे मास पूजा कराके प्रसूनिगृह से बाह्यक सहित मा का बाहर आना ।

[९] निषया क्रिया—बालक को धिठाने की क्रिया पूजा सहित करना ।

[१०] अन्न माशन क्रिया—७ या ८ या ९ मास का बालक हो नवउत्तपूजा व उत्सव पूर्वक अन्न चित्ताना शुरू करना ।

[११] व्युष्टि क्रिया—एक वर्ष होने पर पूजा मंदिर वगैरह करना।

[१२] केशवाय क्रिया—जब बालक २, ३ या ४ वर्ष का हो जावे तब पूजा करके मर्ब केशों का मुन्हेन कगारे चोटा रहना।

[१३] लिपि सम्मान क्रिया—जब पाच वर्ष का बालक हो जावे तो पूजा के साथ उपाध्याय के पास अक्षरारंभ करना।

[१४] उपनोति क्रिया—आठवें वर्ष में बालक का पूजा व होम सहित तथा योग्य नियम कराकर रत्नत्रयसूचक लनक देना।

[१५] ब्रतचर्या क्रिया—ब्रतचर्य पालते हुए गुरु व शाल विद्या का अभ्यास करना। भावक के पाच व्रतों का अभ्यास करना।

[१६] व्रताचरण क्रिया—विद्या पढ के यदि वैराग्य हो गया हो तो मुनिदीक्षा ले, नहीं तो ब्रतचर्य छान का भेष छोड़ भव घर में रहकर योग्य आजोबिकादि करे व धर्म पाले।

[१७] विवाह क्रिया—योग्य कुल व वय की कन्या के साथ पूजा उत्सव सहित लग्न करना। सात दिन तक पति पत्नी ब्रतचर्य रह, फिर मोदरों के दर्शन कर कंकण होरा छोले और सुगान व चिये सदवास करें।

इन १७ संस्कारों में जो पूजा की जाती है, वसकी विधि मन्त्र सहित संक्षेप में गृहस्थ धर्म पुस्तक में दी हुई है।

[१८] चर्णलाभक्रिया—मोर्ता पित्त से द्रव्य ले खा सहित जुदा रहना ।

[१९] कुलचर्षा क्रिया—कुल के योग्य आजीविका करके देव पूजादि गृहस्थ के छः कर्मों में लीन रहना ।

[२०] गृहोशिता क्रिया—गान व सदाचारादि में प्रवीण होकर गृहस्थाचार्य का पद पाना, परोपकार करने में लीन रहना, विद्या पढ़ाना, औषधि देना, भय दूर करना ।

[२१] प्रशान्ति क्रिया—पुनः जो घर का भार सौंप आप विरक्त भाव से रहना ।

[२२] गृहत्याग क्रिया—घर छोड़ कर त्यागी हो जाना ।

[२३] दोक्षाय क्रिया—आयक की ग्यारह प्रतिमाओं को पूर्ण करना ।

[२४] जिनरूपिता क्रिया—नम हो ब्रह्मादि पारमह त्याग मुनिपद धारण करना ।

[२५] मौनाध्ययन व्रत्ति क्रिया—मौन महिष शास्त्र पढ़ना ।

[२६] तोर्यदूरपदोत्पादक भावना—मोलेह कारण भावना विचारनी ।

[२७] गुरुस्थापनाभ्युपगम—आचार्य पद व काम का अभ्यास करना ।

[२८] गणोपग्रहण—उपदेश करना, प्रायश्चित्त देना ।

[२६] स्वगुरुस्थानसंक्रांति—आचार्यपदको स्वीकार करना ।

[३०] निःसंगत्वात्म भावना—आचार्य पदको शिष्य को देकर आप अपने विहाय करना ।

[३१] योग निर्वाण संपाप्ति—माकी एवात्मता का अनुभव करना ।

[३२] योग निर्वाण साधन—आज्ञापरि त्याग समाधिभरण करना ।

[३३] इन्द्रोपपाद—भरण करके इन्द्र पद प्राप्त ।

[३४] इन्द्राभिषेक—इन्द्रात्मन का नन्दन होना ।

[३५] विधि दान—दूमरों से विमान ऋषि आदि देना ।

[३६] सुखोदय—इन्द्र पद का सुख भोगना ।

[३७] इन्द्र पद त्याग—इन्द्र पद त्यागना ।

[३८] गर्मावतार—तीर्थंकर होने के लिये माँ के गर्भ में आना ।

[३९] विरूपगर्भ—गर्भ में आने के कारण छ मास रहने से रत्नवृद्धि होता ।

[४०] मन्दरेन्द्राभिषेक—तीर्थंकर का जन्म होकर सुमेरु पर अभिषेक ।

[४१] गुरु पूजन—तीर्थंकर को गुरु मान इन्द्रादि देव पूजते हैं ।

[४०] रौराज्य—भीरु का सुवर्ण होना ।

[४१] म्वराज्य—भीरु का स्वर्ण माना ।

[४४] पञ्चलाय—चक्रवर्ती पर क विर ती निर्ध

१४ राज का राज ।

[४५] निगिजय—य स्वर्ण दृष्टा ज्ञान का निरुजय ।

[४६] पकामिषेक—भीटा पर चक्रवर्ती का निर्मिषक

[४७] माध्याय—अपनी आत्मासुखार राजाया हो चलाता ।

[४८] निष्क्रान्ति—युद्धों को राज्य द क्षोपा सेना ।

[४९] योग सौम्य—कव्यता प्राण करता ।

[५०] आर्हन्त्य—अमवगारण का रचना होना ।

[५१] विहार—पर्यवेत्ता दन के निधि विहार करता ।

[५२] योगत्याग—याग को रोककर अयोगी दान ।

[५३] अग्र निरुति —माध्याय राज ।

इन क्रियाओं में सर्वकार प्राण बालक भीरु होकर मोक्ष पर प्राण कर मवता है ।

जो अम म ज्ञान गदी है और ज्ञानम स्वीकार कर उमका दीवान्यय क्रियाये निम्न ४८ हैं —

१ अवतार क्रिया—कोई अपने किसी ज्ञान आधार

गृहस्थाचार्य क पाप जाकर प्रार्थना करे कि मुझे जैनधर्म का रूप कहिए, तब गुरु उसे समझावे।

२. व्रत लाभ क्रिया—शिष्य धर्म को सुनकर उस पर प्रसाद करता हुआ स्थूल रूप से पाच अणुव्रत ग्रहण करता और मदिरा, मधु, मांस, तीन मगार का त्याग करता है।

३. स्थान लाभ—शिष्य को एक उपवास व पूजा करा कर उसको परित्र करे व शमोकार मन्त्र का उपदेश देवे।

४. गण गृह—शिष्य के घर में जो अन्य देवों की स्थापना हो सो उनका विमर्जन करे।

५. पूजाराध्य—भगवान् की पूजा करे; द्वादशम गिन वाणी सुने व पारे।

६. पुण्य यह क्रिया—१४ पूर्व शिष्य सुने।

७. दृढ चर्या—जैन शास्त्रों को जान कर अन्य शास्त्रों को जाने।

८. उपयोगिता—हर अष्टमी बौद्ध को उपवास करे, स्थान करे।

९. उपनीति—इसको यज्ञोपवीत ग्रहण करावे।

१०. व्रतचर्या—अनेक लेकर कुछ काल व्रतचर्य पाला गुरु से उपवासकाध्ययन या श्रावकाचार पढ़े।

११. व्रतावरण—गृहस्थाचार्य के निकट प्रसाधारी के सेव्य प्यारे।

१२. विवाह—जो पहिली विवाहिता स्त्री हो तो श्राविका मनावे । यदि न हो तो वर्णनामक्रिया करके विवाह करे ।

१३. वर्णलाभ—गृहस्थाचार्य इसकी योग्यता देखकर उसका वर्ण स्थापित करें और फिर सव्य आचकों से जो उस वर्ण के हों उसके साथ विवाहादि सम्बन्ध करने को वदे ।

इसके आगे की क्रिया कर्त्रन्यय के समान म० १९ से २३ तक जाननी । पहिले १८ क्रियार्ये कही थीं, यहा १३ कही, ये ही ५ क्रियार्ये कम हो गई ।

७२. जैनियों में वर्णव्यवस्था

जैनियों में भी इस भरसचेष्ट के इस कल्प में प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने उस समय जब कि समाज में कोई वर्ण व्यवस्था प्रकटरूप से न थी, जिन लोगों के आचारव्यवहार को सत्रियों के योग्य समझा उनको सत्रिय, जिनके आचार को वैश्य के योग्य समझा उनको वैश्य तथा जिनके आचरण को शूद्र के योग्य समझा उनको शूद्र वर्ण में प्रसिद्ध किया ।

सत्रियों को आजीविका के लिये असि कर्म या शास्त्र विद्या, वैश्या को गृहसि (लेखन), कृषि, वाणिज्य तथा शूद्रों को शिल्प विद्या (कला आदि) कर्म नियत किया तथा प्रत्येक को अपने २ वर्णों में विवाह करना ठहराया ।

इसके पीछे जो आवश्यक धर्म अच्छी तरह बालावे थे, दया-भान थे, उनको प्रशस्त वर्ण में ठहराया गया ।—महापुराण के पर्व ८ में कहा है कि—

मनुष्य जातिरप्यैव जाति नामोदयोद्भवा ।

वृत्तिमेवा हि साहोपात्ता तुर्विध्यमिहावृत्ते ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणाग्रत मन्कारात् क्षत्रिया शस्त्र धारणात् ।

वाणिज्योऽप्यार्जनेन व्याप्यान् शुद्रान्यगृह्यत्तिसंश्रयात् ॥ ४६ ॥

भाषा है—जाति नाम कर्म के लक्ष्य से मनुष्य जाति एक ही है तथापि जीविका के भेद से यह भिन्न २ चार प्रकार की हो गई है। प्रत्येक के संस्कारों से ब्राह्मण, क्षत्र धारण करने से क्षत्रिय, व्याप से वृह्य कमान से वैश्य, जीव पृथक् का आश्रय करने से शुद्र कहलाते हैं।

यह भी ध्यान रखना चाहिये कि आवश्यकता हुई तो ब्राह्मण क्षत्रियादि अन्य तीनों वर्णों की, क्षत्रिय वैश्यादि दो वर्णों की वरिय शुद्र की कन्या भी ले सकता है।

जैन पुराणों में तीनों वर्णों में परस्पर विवाह होने से भी अनेक उदाहरण हैं—जैसे क्षत्रिय की कन्या का वैश्य पुत्र को विवाह जात और इसकी कोई निन्दा नहीं की गई है। ❀

७ शुद्राऽर्जनेन बोध्या नाम्ना र्वा सा च वैश्याः ।

बोधाध्याने च राज्ञ्या र्वा हि भग्ना स्वचिकित्ता ॥ २४७ ॥

[आदिपुत्राण इति १९]

भाषा है—शुद्र शुद्र की कन्या से विवाह करे—भूमृ से नहीं, वैश्य वैश्य की कन्या से तथा शुद्र की कन्या से भी क्षत्रिय क्षत्रिय की कन्या से व वैश्य व शुद्र की कन्या से भी, ब्राह्मण ब्राह्मण कन्या से व भूमृ क्षत्रिय, वैश्य व शुद्र की कन्या से भी। (चर्च १० पृष्ठ १०० पृष्ठ १००) । ,

७३. जैनियों में स्त्रियों का धर्म और उनकी प्रतिष्ठा

जैनियों में स्त्रियों के लिये वे ही धर्म क्रियाएँ हैं जो पुरुषों के लिये हैं। भ्रातृक धर्म की ब्यारब्द प्रतिमाएँ वे पाल सकता हैं। वे नम्र नहीं हो मरुती। इसाभिये साधु पद नहीं धारण कर मरुती और न उसा जन्म से निर्माण लाभ कर सकते हैं। उनका कठुष्ट आचरण आर्यिका का होता है जो एक सफेद साड़ी (धोता) रस मकता हैं।

ऐलकके समान मोर पिच्छिका व कर्मठल रजती व भिक्षावृत्ति स भ्रातृक क यदा बैठकर हाथ में भोजन करती, व मेरों को लाव करती हैं।

रजोधर्म म चार दिन तक, प्रसूत में ४० दिन तक व पाच मास की गर्भावस्था में पूजा, अभियेक व मुनिदान स्वयं नहीं कर सकती हैं, फिर अभियेक पूजा व दान बराबर कर सकती हैं।

स्त्रियों की प्रतिष्ठा यहा तक है कि राजा लोग उनको अपने मिहामन का आधा आसन देते थे। वे पति के न होने पर कुल सम्पत्ति की स्वामिनी हो सकती व पुत्र गोद ले सकती हैं।

७४. भरतक्षेत्र में प्रसिद्ध चौबीस जैन तीर्थंकर

भरतक्षेत्र जिसके भीतर हम लोग रहते हैं व खण्डों म बटा हुआ है। पाच म्नेच्छ खण्ड एक आर्यखण्ड। आर्य-
—इमें अवस्थाओं का विरोध परिवर्तन हुआ करता है।

एक कल्पकाल बीस कोड़ाकोड़ी सागर का होता है ।

१ सागर में अनगिनती वर्ष होते हैं। इस कल्प के दो भेद हैं—

१ अवसर्पिणी २ उत्सर्पिणी ।

जिसमें आयुभाव घटती जाय वह अवसर्पिणी, और जिसमें बढ़ती जाय वह उत्सर्पिणी है ।

इन दोनों के ६-६ भाग हैं । अवसर्पिणी के ६ भाग ये हैं —

१ सुषमा सुषमा—चार कोड़ाकोड़ी सागर का २ सुषमा—तीन कोड़ाकोड़ी सागर का ३ सुषमा दुषमा—दो कोड़ाकोड़ी सागर का ४ दुषमा सुषमा—४२००० वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागर का ५ दुषमा—२१००० वर्ष का ६ दुषमा दुषमा—२१००० वर्ष का ।

उत्सर्पिणी में इसका चला प्रम है। जो छूटा है वह यहा (उत्सर्पिणी में) पहिला है ।

दोनों कालों का समय मिलकर ही वास कोड़ाकाड़ा सागर है । सुषमा सुषमा, सुषमा व सुषमा दुषमा का मैं म भोगभूमि की अवस्था अवकाति रूप रहती है और दोष तीन म कर्मभूमि रहती है ।

जहां कल्पवृक्षों से आवश्यक वस्तु लेकर स्त्रा पुरुष संतोष से जीवर बिनाते हैं वसे भोगभूमि व जहा जमि (रात्र कर्म), मसि (लखन), कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या व परिश्रम करके धन कमाते, वससे वनादि से भोजनादि बनाते, भगान उत्प १ करते हैं वसे कर्मभूमि कहते हैं ।

हर एक अवमर्षिणी के चौथे काल में चौथोम महापुरुष ज्ञान पुरुष समय २ पर जन्मते हैं। वे धर्मवीर्य का प्रकाश करते हैं इसलिये उनको वीर्यकर कहते हैं। वे वृत्तो जन्म से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे ही अवमर्षिणी के तीसरे काल में उन जोवों से भिन्न जाव की २४ तीर्थहर होते हैं। इस तरह इन भारतक्षेत्र के मार्गसंस्त में सदा ही २४ वीर्यकर भिन्न २ जीव होते रहते हैं।

वर्तमान में यहा अवमर्षिणी का पौषर्षी काल चल रहा है। अब चौथे काल में तीन वर्ष साढ़े आठ मास शेष थे तब भी महाभार भगवान्, जो श्रीगुरु गौतमपुरु के समकालान व उनसे पूर्व जन्मे थे, माघ पंचारे थे। अब सन् १९३९ में आर निर्माण सन् २४६१ चलता है।

गत चौथे काल में जो २४ महापुरुष जन्मे थे, वे सब क्षत्रिय वरा के राज्य कुलों में हुए थे।

इनमें से पहिले १५ व १९ व २१ व २३ व २४ वें इक्ष्वाकुवंश में व २२ वें यदुवंश में जन्मे थे। श्रीपार्श्वनाथ का उमर्षेश व श्रीमहावीर का नाथवंश भी कहलाता था।

ॐ चण्डीसवार तिथि तिथ्यपरा छवि सह सरस्वती ।

दुर्गि के काले होतिहु तेवही सखान् पुरिसाते ॐ ८०३ म

(त्रिछोकरार)

भावार्थ—भारतक्षेत्र के चौथे काल में प्रसिद्ध शकाका पुरुष जन्म रहते हैं। २४ वीर्यहर, १२ चक्रवर्ती, ९ नाशपण, ९ बलमंद, ९ प्रणिनारायण ।

२४ वें म १६ राज्य करके गृहस्था होकर फिर माधु हु९ ।
केवल पाँच—अर्थात् १२, १९, २२, २३ व २४ न कुमारवय सेह
मुनिपद ले लिया, विवाह नहीं किया ।

भरतहोत्रम जो तीर्थंकर पद ध धारा होते हैं वे जगत में
भ्रमण करन बाक जावों में से हो होने हैं । जिनने तीर्थंकर हो
से पाले सामरे भव में तपस्या करक व आत्मज्ञान प्राप्त करके,
आत्माक आनन्द की रुचि पाकर संसार के उद्विग्न सुप्त को आकु-
शतामय जाना हा तथा सर्व जीवों का अज्ञान मिटे व उनको मया
मार्ग मिल, तेमा नृद भावना का हो पहा विशेष पुरुष विशेष
पुण्य बावकर तीर्थंकर जन्मना है । कोई ईश्वर या शय या मुरत
आत्मा शरीर धारण नहीं करता है ।

हर एक तीर्थंकर इतन पुण्यारणा होने हैं कि इंद्रादि देव
उनके जावन क पाच विशेष अवसर पर परम अस्तव करने हैं ।
इन अवसरों को पंच कल्याणक कहत हैं ।

१. गर्भ कल्याणक—जब माता क गर्भ में तिष्ठने हैं, तब
सीधे में माता के समान माता को विरा कष्ट दिये रहने हैं । गर्भ
समय माता निम्न सोलह स्वप्ने देखती है —

(१) हाथी (२) बैल (३) सिंह (४) लक्ष्मीदेवी
का अभिषेक (५) दो मालाएँ (६) सूर्य (७) चन्द्र (८)
दो गधली (९) कनकषट (१०) कमल मण्डित सरोवर (११)
समुद्र (१२) सिंहासन (१३) देव विमान (१४) २

भयन (१५) रत्नगशि (१६) अग्नि । इन का फल महापुरुष का जन्म सूचक है ।

इन्द्र की आज्ञा से गर्भ में छ मास पूर्व से १५ मास तक माता पिता के नगर मरत्ता की वर्षा का आनन्द रहता है । राजा गानो गृध्र दान देने हैं ।

गर्भ समय से अनन्त द्रविया माना को सेवा करता रहता है ।

२. जन्म कल्याणक—जन्म होते ही इन्द्र व दैव आते हैं और बड़े उत्सव से सुमेरु पर्वत पर ले जाकर पाहुक या भ पाहुक शिला पर बिगजमान करके चार समुद्र के परित्र जल से स्नान कराते हैं ।

उसी समय इन्द्र नाम रखता है व पग में चिह्न देकर चिह्न स्थिर करता है ।

तीर्थंकर महाराज अव न गृहस्थावस्था में रहने तक इन्द्र द्वारा भेजे वस्त्र व भोजन ही काम में लते हैं । इनका जन्म स ही मति, धुन, अवधि तीन ज्ञान होते हैं । इस से तीर्थंकर को बिना किसी गुरु के पास विद्याध्ययन क्रिय सर्व विद्याओं का परोक्षज्ञान होना है । आठ वर्ष की आयु में ही गृहस्थ धर्ममयी श्रावक के मता को आचरण लगते हैं । यदि कुमारवय में वैराग्य न हुआ हो तो विवाद करके सत्त्वान का लाभ करते व नीति पूर्ण राग्य प्रबन्ध चलाते हैं ।

३. तप कल्याणक—जब वैराग्य होता है, तब जो इन्द्र आदि देव आते हैं और अभिषेक कर नये वामनाथ पर पालकी पर चढ़ा अपने कंधों पर बदन में ले जाते हैं। वन एक शिवा पर दक्ष के नाचे बैठ कर, प्रभु वामनाथ का अपने ही हाथों में अपने कंधों को ग्राह (लौच) डालते हैं। मित्र परमात्मा को तमसकार कर स्वयं मुनि की क्रियाओं को पालन लगाते हैं। आत्मज्ञान पूर्वक तप करते हैं, मात्र स्त्रीर व सुस्थाते नहीं। आत्मानन्द में इतने मग्न हो जाते हैं कि देव गुरु व धनलक्षान (पूर्यज्ञान) प्रगटे तब तक मौन रहते हैं।

४. ज्ञान कल्याणक—जब पूर्यज्ञान हो जाता है, तब वह भावमुक्त परमात्मा हो जाते हैं, उस समय उनकी शरीर बनते हैं। उनके अतन्तज्ञान, अनन्तशक्ति, अनन्तबल, अनन्तकला, गता, अनन्त सुख आदि स्वभाविक गुण प्राप्त हो जाते हैं। शरीर नहीं रहता है, भूय, प्यास, मर्षा, गर्भी शोक आदि नहीं होता है। शरीर कर क ममान गुण परानुष्ठान के द्वारा जाता है, आहार में शिवा आहार देने का विज्ञान प्राप्त है। उस समय इन्द्रादिक देव आकर एक समानता प्राप्त है, उन मर्षा को समन्वयण कहते हैं। इसका दण्ड नहीं होता है, त्रिभुव देव, मनुष्य, पशु सब केने हैं। मन्त्रार्थकर आ दिव्यवाणी द्वारा धर्मामृत को वशा दान है। इस धर्मानी में माया में समझते हैं। जो साधुओं के गुणगुणर होत है वे धर्मानी में लकर मध्य रचना करते हैं।

५. मोक्ष कल्याणक—अन आयु एक माम या कम रई जाती है तब विदार व उपदेश बन्द हो जाता है । एक स्थल पर नीर्थकर ध्यान मग्न रहते हैं ।

आयु समाप्त होने पर सर्वसूक्ष्म और स्थूल शरीरों में मुक्त होकर, पुरुषाकार ऊपर की गमन करके लोक न अन्त में विराजमान रहते हुए, अनन्तराल के लिए अन्म मरण से रहित हो आत्मानन्द का भोग किया करते हैं ।

इस समय इनको परमात्मा या मित्र कहते हैं । इस समय भी श्रद्धादि आकर शेष शरीर की दग्ध किया करके बहुत बड़ा उत्सव मनाते हैं तथा जहा से मुक्ति हाथी है वहा बिन्दु छ कर देते हैं । यह सिद्ध क्षेत्र प्रसिद्ध होता है ।

● चिद करन का प्रमाण—

ककुदभुव स्वधरयोऽपदुचितसिम्बरैरुदृत ।

मेघपटल परिवारतटस्तव वक्ष्यमानः । नमिस्तान वज्रिणा ॥ १२३ ॥

बहतीत्य तीर्थमृषिमिदं सततमभिगम्यतः ।

प्रीति चित्त इदमे परितो भुशमूञ्जत इति विभुतोऽधर ॥ १२४ ॥

भावार्थ—पृथ्वी का ककुद, विचारों की सिद्धियों को भावमान, मेघों से भाष्पादित वह निरन्तर पर्वत जिस पर इस में चिद अद्वित किये, भक्तिवान मुनियों के द्वारा तीर्थरूप प्रसिद्ध है ।

(भी नमिस्तुति स्तवम् स्तोत्र)

इसमें विशेष बात यह हुई कि श्री आदिनाथ या ऋषभदेव चौथे काल के शुरु होने में जब तान वर्ष साढ़े आठ मास बाकी थे तब ही मोक्ष चल गये थे ।

श्री ऋषभदेव के पिता नाभि राजा थे, इनको १४ वा कुलहर या मनु कहते हैं । इनके पहल निम्नलिखित १३ कुलहर हुए —

१ प्रतिश्रुति २ सन्मति ३ हेमकर ४ हेमधर ५ सीमकर ६ सामधर ७ त्रिमज्जादा ८ चक्षुषमान् ९ यशस्वान् १० अभिषट् ११ चन्द्राभ १२ मरुदेव १३ प्रमेनजित ।

तीसरे काल में जन-एक मलय का ८ वा भाग शेष रहा तब म फलावकों की कमी होने लगा । तब ही इन कुलहरों ने जो एक दूसरे के बहुत काल पीछे होते रहे हैं, ज्ञान देकर और लोगों की चिन्ताएँ भेटीं ।

पहिल तीन कालों में यहा भोगभूमि थी । युगल श्रा पुरुष साथ-जुते थे व वल्यमुखा से इच्छित वस्तु लेकर मतोष मय मन्द कपाय में कालसेव करते थे । अतः में वे एक जोड़ा वस्त्रान कर मर जाते थे ।

ये कुलहर महापुरुष विशेष ज्ञाना होते थे । नाभि राजा के समय में वल्यवृक्ष विस्तुल न रहे, तब नाभि ने लोगों को घर्तन बनाने व यज्ञादि से घान्य व फलादि को काम में लान आदि की रीति पताई । इनकी महाराणी मरुदेवी बड़ा रूपवती व गुणवती था ।

भा ऋषभदेव के गर्भ में ज्ञान क पहिने हो छ मास इन्द्र
 १ अश्विनी जगती स्थावित करके शोभा करो । मितो आषाढ
 सुदी २ को भगवान् सरदेवाके गर्भ में जाये । चैत्रकृष्ण ९ को प्रभु
 का जन्म हुआ । स्वभाव से ही विद्वान् ओ ऋषभदेव ने कुमार
 बाल को बिया, कला आदि का उपभोग करते हुए बिताया ।

युवावस्था में नाभिरामो ने राजा कच्छ महाकच्छ की दो कन्या यशस्वती और सुनन्दा से प्रभु का विवाह किया। यशस्वती के संबंध से भरत, दूषभमेन, अनेतविजय, महामेन, अनंतवार्य आदि १०० पुत्र व एक कन्या प्राप्ता उत्पन्न हुई। सुनन्दा के द्वारा पुत्र बाहुवनी व पुत्री सुन्दरा उत्पन्न हुई।

प्रभु ने विद्या यद्वा का मार्ग ज्ञान के लिये सबसे पहिल
 दोनों पुत्रियों को अहुर व अह्व विद्या, व्याकरण, छन्द, अलंकार,
 काव्यादि विद्यायें सिखाई व एक १०० अध्यायों में स्वायम्भुव
 नाम का व्याकरण बनाया, फिर १०१ पुत्रों को अनेक विद्यायें
 सिखाई । विशेष विशेष विद्याओं में विशेष पुत्रों को बहुत प्रमाण
 किया—नैम भरव को नात्रि में, अनन्त विजय को चित्रकारी व
 गिल्फकला में, कृषनसेन को सङ्गाठ और वाग्ज म, बाहुबलि को
 वैद्यक, धनुष विद्या और कामशाम्भ में, इत्यादि ।

श्री श्रीपद्मेश्वर चोद-द्रुमुमार इत्येने मुक्षीराणे, अथता,
इदवान्, बह्व, वृद्ध, पुत्र, मर्द्ध, अपनक, गम्बक, कुरु, काशी,
वलिग, भसुडक, कल्लान्, याल्य, कल्लन्, वाम, पचान्,
माधव, मल्लान्, कल्लन्, मल्लन्, लिङ्ग, कल्लन्, मल्लान्

मुराष्ट्र, आंध्र, कर्णाटक, बनारस, आंध्र, कर्णाटक, काशी, चोल, करल, दारु, अभिमार, सौरा, सूरमा, अगस्त, विदह, सिंधु, गांधार, यवन, चेदि, पल्लव, काकाज, आरद, वात्सल, तुरुष्क, शक, ककय आदि अनेक देशों में आय बरह का विभाग कर दिया।

भगवान् प्रजा को आजीविता व साधन के लिए निम्न लिखित कर्म बताये —

असि (शास्त्र), मसि (लखन), कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या।

प्रजा का योग्यता दृष्ट कर अमिकर्म करने वाले को चरित्र धरा, मसि, कृषि, वाणिज्य, पशु पालनादि कर्म करने वालों को वैश्य धरा व शक कर्म करने वालों का क्षत्र धरा में नियत कर दिया।†

हर एक वर्ग वालों को अपने-२ कामों में प्रवेश होने के लिये सोमा बाध रा। आपाद कुण्ड २ को ऊनपुत्र का प्राग्भ हुभा। फिर अभिराजा ने अपने पुत्र को स्वयं राज्य-पद पर आरोहण किया। क्योंकि भगवान् ने लोगों का इष्टुत्त वाग का उपदेश किया था, इसलिये भगवान् का इच्छाकु कहते थे। इसलिये यह वरा इच्छाकु वरा कहलाया।

† जो वन पूर्व की पौड़ी दर पौड़ियों में मो था, किन्तु कारण न मिलने से प्रच्छन्न हो गया था, वही अतान्द्रिय वर्गों अपमर्देय न शक कर दिया।

(सम्पत्ति प० मानिकवन्दनी)।

भगवान् १ अपने वंश के मित्राय चार वंश और स्थापित किये । राजा सोमप्रभ को कुरुवंश का स्वामी, हर्षि को हरिवंश का अधिपति को नायवंश का व काश्यप को उग्रवंश का नायक बनाया तथा पुत्रों को भी पृथक् २ राज्य बना कर दश नियत कर दिए ।

इस ही प्रकार जोनिपूर्वक श्री ऋषभदेव ने ६३ लाख पूर्व तक राज्य किया ।

एक दिन भगवान् राज्य सभा में बैठे थे, एक स्वर्ग की मोलाशतदेवी सभा में भगवत्कृत नृत्य करती करती मरण कर गई । इस क्षणिक अवस्था को देखकर प्रभु को वैराग्य हो गया, आप बारह भावनाओं का चिन्तन करने लगे । तब पंचवें स्वर्ग में लौकिक द्रव्यों में आनन्द प्रभु के वैराग्य को दृढ़ करने वाली स्तुति की । भगवान् ने साम्राज्य पर बड़े पुत्र भारत को दिया । फिर इन्द्र, भगवान् को पानकी पर विराजमान करके बड़े उत्सव से सिद्धार्थ वन में ले गया, वहाँ एक शिला पर बैठ सर्व वस्त्र आभूषण उतार कर, केशों को लोंच कर प्रभु ने नम अवस्था में मुनि का चरित्र धारण किया । यह चैत बढ़ी ६ माँ दिन था ।

प्रभु के साथ उनके स्नेह में पड़ कर ४००० राजाओं ने भी मुनि भेष धारण किया । भगवान् ने ६ मास का योग ले लिया और श्वाण में मग्न हो गये । तब ही भगवान् को चौथा मन पर्यवसान पैदा हो गया । वे ४००० राजा भी उसी तरह मृदे

हो गये। वनो का मास तक ता मड़ रह मके, विष पकड़ा गये और भूख प्यास से पाड़ित हो वन के फराई व जंग की गारा पोन लग।

इस लोगों ने भृष्ट हो कर अपने मास दंडो, दिदरका आदि मत स्थापन कर लिये। इस में आदीश्वर प्रभु का पोठा मारीच भी था।

छ मास का याग पूर्ण कर प्रभु आहार के लिये नगर म गये। मुनि को आहार देना का विधि न जानने म छ मास तक प्रभु को अन्तराय रहा—भोजन न मिल सका। पाछे दलितगुरु व राजा भेयास को, जो पूर्व जन्म म उनकी स्त्री रह चुका था, यथावक पूर्व जन्म की स्मृति हो आई। हमने विधि सांग वैशाख सुदी ३ को इमुरस का आहार दिया। इसीय इस मितो को अच्छा सुताया कहते हैं।

भगवान ने १००० वर्ष तक मौन रह कर आत्म-व्यापन करत हुए, यत्र यत्र भ्रमण कर तब किया। अन्त में फागुन पक्ष ११ को पुरमिताल नगर के निहट शकट का सवार पातिया फर्मा को नाश करके केरलक्षेत्र प्राप्त किया, तब भगवान आवनमुख परमात्मा अरदन्त हो गये। इंद्र ने समवशाख व रचना की। छपदस प्रगटा और उसस आक जायों ३ जैनधर्म धारण किया।

मुनि समुदाय के गुरु रूप गणधर ८४ हुए, जिनमें मुर वृषभसेन, सोमप्रभ, श्रेयांस थे। प्राप्ति और सुन्दरी ने, जो

शुपभदेव की पुनिया थी, विनाद १ किया तथा प्रभु के पास आकर आर्पित (साधो) हो गई और गव आर्पितओं में सुख हुई ।

कुल शिष्य भगवान के ८४०८४ साधु, ३१०००० आर्पित कार्ये, ३ लाख भ्रातृ और ५ लाख आर्पितकार्ये थी । अनेक देशों में विहार कर प्रभु ने धर्म का उपदेश दिया । फिर कैलारा पर्यंत पर से १४ दिन तक आत्मध्यान में लीन हो माप वरी १४ को निर्वाण प्राप्त किया । ७

भी शुपभदेव का वंश अर्थात् इक्ष्वाकु व सूर्यवंश धरापर भी महावीर स्वामी के समय तक चलता रहा । इसी वंश में अनक तार्थकर व भा रामचन्द्र लक्ष्मण आदि भा हुए ।

७ भी शुपभदेव के चारित्र का प्रमाण इन तरह है —

प्रजापतिर्ष प्रथम त्रिभोविषु, शशाङ्कहृष्यादिषु कमसु प्रजा ।
मनुव्रतस्य पुन १५भुतोदयो, समत्वतो निर्विबिदे विदार ॥ २ ॥
स्वदीपमूल स्वसमाधितप्रभा, निमग्न योनिर्देव भस्मसाम्निधाम् ।
अगाधतस्य अगनेर्ध्वनेऽऽवसा, बभूव च महा पदामृतद्वर ॥ ३ ॥

(स्वपद स्तोत्र)

भावार्थ—जिस प्रजापति ने पहिले प्रजा की रूचि आदि का उपदेश दिया फिर तात्वज्ञानी वैरागी हुए, आत्मसमाधि के तेज से उन्होंने ही अपने आत्मा के दोषों को जलाकर जगत को तत्त्वों का उपदेश दिया और निरुपद्रव के रूप में हो गए ।

७६ सत्पिप्त चरित्र श्री नेमिनाथ जी

हरिवंश की एक शाखारूप यदुवंश का द्वारका का राजा समुद्रविजय थे। उनका पटरानी शिवादेवा का गर्भ में कार्तिक शुद्ध ६ के दिन १६ वर्ष का देवमन का साथ श्री नेमिनाथ जी का आत्मा जन्म-वर्ष रिमान से अहमिद्र पद को छोड़ कर आया और श्रावण सुदी ६ को प्रभु का जन्म हुआ।

समुद्रविजय के छोटे भाई वसुदेव जी के पुत्र नौवें नारायण भ्रातृव्य थे। यह भी बड़े प्रतापशाली थे। एक दफे मगध के राजा प्रतिनारायण जरासिंध ने चढ़ाई की। तब श्री कृष्ण ने श्री नेमिनाथ जी को नगर की रक्षा का भार सौंपा। प्रभु ने शब्द कहकर स्वाकार किया और मुरझा दिया, जिससे श्री कृष्ण को विजय का निश्चय हो गया। कृष्ण जरासिंध का भार करके तीन पण्ड देश का स्वामी हो लौट आया।

एक दफे वनक्रीड़ा को नेमिनाथ जी कृष्ण की सत्यभामा आदि पटरानियों के साथ गये। बड़ा घाता हो जाता में सत्यभामा ने नेमिनाथ जी को नीचा दिखाने की इच्छा से यह सावित करना चाहा कि वे श्री कृष्ण के समान पराक्रमी नहीं हैं।

इसको सुनकर स्वामी जी ने अपना वल दिखाने को आयुध शाला में आकर गौरी शय्या पर चढ़ धनुष चढ़ाया तथा शङ्ख बजाया। शत्रु को सुनकर श्री कृष्ण श्री नेमिनाथ जी का कार्य जानने और चर्यान्वित हुए और यह विचारने लगे कि यदि ये इतने पराक्रमी हैं तो इनके सामने मैं राक्षस कर सकूंगा, इसलिए

इन्हीं वैराग्य हो जावे, 'प्रेमा उपाय करना चाहिये । इन्हीं दिनों
नेमिनाथ का विवाह सम्वत्सी राजा समसेन की कन्या राजमति
से होने वाला था । हप्त निश्चित हुई और धारान सज धज के
साथ चाने लगी । उधर श्री कृष्ण ने नेमिनाथ को वैराग्य प्रदान
कराने के लिये धारान के मार्ग में बहुत से पशुओं को बन्द कराके
मक्कों का बर समझा दिया, कि यदि श्री नेमिनाथ जो पहले तो
पद कह देना कि श्री कृष्ण ने आपके विवाहोत्सव में स्नेह
अतिथियों के सत्कारार्थ इन्हें इकट्ठा कराया है ।

यह कबल मात्र एक भान थी । पशु मारकर मांस तान
का भाजन था । जब श्री नेमिनाथ उधर पहुँचे, तब पशुओं का
कहणु मन्दन और चीत्कार सुन व्याकुल हो, उठे । पूछने पर
जब उन्हें मादूम हुआ कि श्री कृष्ण ने मेरी शादी में आप
स्नेह अतिथियों के सत्कारार्थ इनको इकट्ठा कराया है, तब
इन्हीं विवाह करने का निश्चय किया और मुदकगुप्तों
को मधन से छुड़ाकर सब समारंभ, वैरागी हो गये ।
१६ दिन श्री गिरनार पर्वत के सहस्रस्र वन में शरणा
धारण करली । ५६ दिन तक कठिन तपस्या करके
को गिरनार पर्वत पर ही असीज सुदा १६ दिवस
हो गया । तब आप जीवमुक्त परमात्मा हो अद्वैत और
धर्मोपदेश देने हुए विहार करने लगे ।

आपके शिष्य १००० मुनियें, १००० ब्रह्मचर्य आदि
११ गणधर थे । राजमसी भी विशिष्ट रत्न थे ।

लौटने पर ससार से उदाम हो गई और वह भी आर्यिका के
 घत रोकर नमिनाथ की शिष्या ४० हजार आर्यिकाओं में मुरप
 हुई। भ्रातृष्ण बलदेव अपनी २ रानियों सहित सप्तदश सुनने को
 आये। तत्र बृष्ण का रुक्मिणी, सत्यभामा आदि-आठ पत्नी
 नियों ने आर्यिका के घत धार लिये। भगवान ८६९९ वर्ष ९ मास
 ४ दिन विहार किया। आपनो आयु १००० वर्ष का था, फिर
 एक मास श्री गिरनार पर्वत पर योग निरोध कर आपाद सुदी ७
 को मोक्ष पधारे।

७७. सच्चित्त चरित्र, श्री पारश्वनाथ जी

आपारश्वनाथ भगवान का जीव अपने जन्म से दो जन्मों
 पहिले आनन्द राजा थे। वह मुनि हो घोरतप करके ब हीर्यकर
 नामकर्म बाध कर १३ वें स्वर्ग में इन्द्र हुये थे। वहा स आकर
 काशी देश के बनारस नगर के काश्यप गोत्रीय राजा विश्वसेन
 की रानों मन्नादेवा के गर्भ में वैशाख वदी २ को पधारे। वीषवरी
 ११ को प्रभु जन्मे, तब इन्द्र ने उत्सव किया। १६ वर्ष की उम्र
 में एक दिन घन विहार को गये, वहा महोन्नत राजा अजैन
 तपसों पचासि तप लकड़ी जलाकर कर रहा था। वह एक लकड़ी
 को चारने के लिये लकड़ी में कुल्हाड़ी मारता ही वाला था कि
 भगवान ने अवविज्ञान से यह जानकर कि इसके मोतर सर्प
 सर्पिणी हैं उसे काटने के लिये मना किया। उसने घबन न
 माना। लकड़ी पर चोट पड़ते ही दोनों प्राणी धायल हो गये तब
 भगवान के साथ जो अथ राजकुमार थे, उन्होंने इनका धर्मो

मर्ग सुनाया, जिससे वे शाश्वतभाव में भरकर भवनगामी देवों में धारणेंद्र व पद्मावती हुए ।

यदुत्तमो पूर्व जन्मों में प्रभु के जीव का वैरा था । यहाँ भाइसही इस वृत्ति से लज्जित होना पड़ा । इस कारण इसका हृदय में शत्रुता का भाव और भी ज्यादा बढ़ गया । अन्त में मरकर पद्मानि तप क कारण ज्योतिषदेव हुआ ।

३० वर्ष तक प्रभु कुमारारूपा में रहे । एक दिन अयोध्या के राजा उपसेन ने कुछ भेंटें प्रभु को भेजीं, तब दूत से भगवान ने इस नगर का हाल मालूम किया । यह उस नगर में उत्पन्न हुए भी अपभ्रष्ट आदि महापुरुषों का वणन करने लगा । यह सुनकर प्रभु को अपना भी ध्यान हो आया कि मैं भी तो बर्ष कर ही हूँ । अभी तक क्यों गृह न मोह में पँना हूँ ? ऐसा सोच कर आप भी वैराग्यवान् हो गये और रीतिवत् पोष वृष्टि ११ को अरब वन में तप धारण कर लिया ।

भगवान का पहला आहार गुग्गुलु नगर के राजा धन्व ने किया, जिसका दूसरा नाम ब्रह्मदत्त भी था । भगवान ने ४ मास तक तप करते हुए विचार किया, फिर प्रभु अहिर्बुध्न राम नगर (जो घरेला न पाम है) के वन में आये । यहाँ ध्यान में बैठे थे, तब इनके वैरा वसी ज्योतिषो देव ने घोर वरसर्ग किया किन्तु प्रभु ध्यान स न ढिगे । इतने ही में सर्पों के जीव धारणेंद्र और पद्मावती आये । व होने सर्प का ही रूप धारण कर अपने फणों द्वारा तप में तीव्र भगवान को उपसंग मे रचा का । इनके

अब स. य. ज्योतिषी देन मान गया। इसी कारण यह स्थान
अद्विष्टप्रतिप्रसिद्ध है।

। इसी समय चैत वर्ष १३ का मगवान न केवलज्ञान प्राप्त
किया और कारी, कौश, पावत, मरुटा, मारु, मगव,
अदती, अन्न, वग आदि वस्तुओं में विहार कर धर्मोपदेश दिया।
स्वयम्भू आदि १० गणपतों को लेकर कुन १६००० मुनि,
३६ ०० आदिछात्रों, एक लाख भक्त व ३ लाख आदिछात्रों
शिष्य हुए।

— कुल कम ८ वर्ष विहार करके श्रीनन्दोद शिखर पर्वत स
सावन सु. ७ को मगवान मोक्ष पधारे। ३-

७२. सत्सिद्ध जीवनचरित्र श्री महावीर स्वामी ।
। श्री महावीर स्वामी अपने पूर्व जन्मों में भारत के पुत्र
मारीच थे, जो श्री आपभद्र के साथ लहर झट्ट हा गये थे।
यही मारीच भ्रमण करते हुए विश्व नारायण हुए थे। वे ही
नंद राजा के भक्त में उत्तम भावनाओं को नकार १६ वें स्वर्ग में

३ श्रीपार्वतीजी के उपसर्ग के समय में कथन है कि—
श्रीपार्वतीजी मन्दपत व श्रीपार्वतीजीपदोपसर्गिण्य। इत्य
नामो धामोपराधर, विराय सत्वा सदिदमुपेय ॥ १३२ ॥
(स्वयम्भू स्तोत्र)

। भावार्थ—धरमत्र के उपसर्ग में प्राप्त मगवान के ऊपर अपने
। भावार्थ—धरमत्र के उपसर्ग में प्राप्त मगवान के ऊपर अपने

हृदय दूर ! वहा से आकर भरत क्षेत्र के विदेह प्रात के कुन्दपुर
या कुन्द ग्राम में नाथवंशी कश्यप गोत्री राजा सिद्धार्थ की रानी
विशाला या प्रियकारिणी के गर्भ में आपाढ़ सुदी ६ को पधारे।
चैत सुदी १३ को भगवान का जन्म हुआ। उस समय इन्द्र ने
मेघ पर अभिषेक करके भगवान के धर्द्धमान और वीर ऐसे दो
नाम रये।

प्रभु ने आठवें वर्ष अपने योग्य भाषक के १० व्रत धार
लिये, क्योंकि प्रभु को जन्म मे ही तीन ज्ञान थे। वे धर्म को
अच्छी तरह समझते थे।

एक दिन सजय और विजय दो चारण मुनियों को कुछ
बुद्ध हुआ। आतक घोर के दूर से दर्शन प्राप्त करते ही उनके
सम्बद्ध मिट गये। तब उन्होंने सन्मति नाम प्रसिद्ध किया।

एक दूजे वन में वीर कुमार अन्य बानरों के साथ मीठा
कर रहे थे। इनके वीरत्व की परीक्षा लेने को एक देव महालय
का रूप रख उस वृक्ष से लिपट गया, जिस पर सब बाँक
बढ़े थे। सब बाँक तो सर्प को देखकर डर गये और दूर, दूर
कर भाग गये, परन्तु वीर ने निर्भय हो उससे क्रीड़ा की। तब देव
बहुत प्रसन्न हुआ और भगवान का “अतिवीर” नाम सम्बोधित
कर वापिस चला गया।

भगवान को जिना ही पढ़े मन फला व जिज्ञाएँ प्रगट थीं।
भगवान ने तीस वर्ष तक की सप्त मन्द राग से धर्म साधते व
शुभ ध्यान करते हुए बिताई। जब आप तीस वर्ष के हुए, तब

पिता न विवाद के लिये कहा । उस समय अपनी ४० वर्ष की आयु शेष जानकर प्रभु स्वयं ही विचारते विचारते बैरागी गये और अपना नाम के वन में जाकर, मगधिर धरी १० वेश लोंच कर नग्न हो साधु हो गए और वैसे (दो उपवास) का नियम लिया ।

पहला आचार कूल नगर के राजा कूल ने कराया । प्रभु १२ वर्ष तप किया । इसी मध्य में एक दूरे भगवान् दशरथ के वन में ध्यान लगा रहे थे, वहां स्थाणु महादेव ने इन्हें आर्द्र विद्या से बहुत कष्ट दिये । अतः ध्यान में निरुद्ध वेद लज्जित हो गया और प्रभु का माहात्म्य वेद "महावीर" प्रसिद्ध किया । इस तरह वीर अतिथार, महावीर, सन्मति धर्मेमान ऐसे पाच नाम प्रभु के प्रसिद्ध हुए ।

प्रभु जू भिक्षा ग्राम के बाहर खजुल्ला नदी के तट शाल वृक्ष के नीचे ध्यान कर रहे थे, तब अ.प केवलज्ञानी कर अरहन्त पर म आ गए ।

समप्रशारण रहे जान पर ६६ दिन तक जन उपदेश हुआ, तब इन्द्र ने विचार किया कि कोई व्यक्ति यहां वाणी धारण करने योग्य नहीं मालूम होता है ।

ज्ञान से विचार कर इन्द्र न वृद्ध पुरुष का रूप रख गृही में रहने वाले एक गौतम ब्रह्मण को भगवान् का मुख गणधर होने की शक्ति रखने वाली जान, उसे भगवान् के

भगवान के पास इस तरह नहीं आएगा, इन्द्र ने उसके पास जाकर उसमें निम्न श्लोक का अर्थ पूछा —

त्रैलोक्यं द्रव्यं पट्कं नम पदं सहितं जीव पट् काय लेख्या ।
 पचायचास्तिकाया प्रस समिति गति ज्ञान चारित्र भेदा ॥
 इत्येतमोक्षा मूलं त्रिभुवनं भविते भोक्त मर्दद्गिरीश ।
 प्रत्यसि भद्रधाति स्पृशतिष मतिमाय सवे शुद्ध दृष्टि ॥

यह प्राश्नक इस श्लोक में साकेतिक शब्दों के कारण इसका अर्थ १ समझ सका । तब वह अपने दोनो भाई व ५०० शिष्यों को लेकर समग्रशरणा में गया । भगवान के दर्शन मात्र से इसका मन कीमल हो गया और भगवान की नमन करके प्रणम किये । तब ही भगवान की कृपा भी प्रगटो ।

सात वर्षों का भाषण सुनकर ये तीनों भाई शिष्यों सहित मुनि हो गये । इन्द्र ने गौतम का दूसरा नाम इन्द्रभूति रखा । मनु ने ६ दिन कम ३० वर्ष तक बहुत से देशों में विहार करके धर्मोपदेश दिया । राजमही के विपुलाचल पर बहुत दफे बाण्डी भण्डो । वहाँ का राजा भेषिक या विन्वसार भगवान का मुख्य भक्त था ।

चन्दना मठा वैशाली के राजा चेटक की लक्ष्मी कुमार अवस्था में ही आर्यिका हो गई । वह सब आर्यिकाओं में उसी प्रकार मुख्य हुई जैसे सर्व साधुओं में मुख्य गौतम या इन्द्रभूति थे । भगवान के इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्म, मौर्य, मीढ, पुश्र, मैत्रेय, अकपन, अधवेत तथा प्रभास, ये ११ गणधर

थे। सर्व शिष्य १४००० मुनि, ३६००० आर्यिकायें, १ लाख आवक, ३ लाख आर्यिकायें हुई।

फिर भगवान पागानगर के वन से वार्तिक कृष्ण १४ वीं रात्रि को अन्त समय, स्वाति नक्षत्र में मोक्ष पधारे। आप ही के समय में बौद्धमत के स्थापक क्षत्रो राजकुमार गौतम बुद्ध हो गये हैं। जैन शास्त्रानुसार पहले यह जैन मुनि हो गये थे। अज्ञानता से इन्होंने कुछ शस्त्र उत्पन्न कर अपना भिन्नमत स्थापित किया। इनके साधुओं से जैन साधुओं का सदा ही वादानुगत हुआ करता था। बौद्ध साधु वस्त्र रखते हैं, आत्मा को नित्य नहीं मानते हैं। जैनियों की तरह पान पान की शुद्धि पर ध्यान नहीं रखते। बुद्ध ने गृहस्थों को मासाला के निषेध का ऐसा बड़ी आज्ञा नहीं दी जैसा जैन गृहस्था को तीर्थङ्करों ने दी है।

७६ भरतक्षेत्र के वर्तमान प्रसिद्ध १२ चक्रवर्ती

इस भरतक्षेत्र के छ विभाग हैं। दक्षिण मध्य भाग में आर्यखण्ड व शेष ५ को म्लेच्छखण्ड कहते हैं। काल का परि वर्तन आर्यखण्ड में ही होता है, म्लेच्छखण्डों में सदा दुःखमा सुखमा काल की कभी उदृष्ट और कभी अधन्य रीति रहती है। जो इन छहों खण्डों में स्वामी होते हैं, उनको चक्रवर्ती राजा कहते हैं। हर एक चक्रवर्ती में नीचे लिखी बातें होती हैं।

१ १४ रत्न—७ चेतन—जैष्ठ सेनापति, गुरोहिष्ठ, पटरानी, दायी, घोड़ा। ७ अ—

१२३ खड्ग, चूड़ामणि चर्म, काचिखा। इन हर एक क सेवक
द्वारा होते हैं।

२ नौ निधियें या भण्डार—काग, महाकाल, नेपथ्य
पाहुक, पद्य, माण्ड, विगज, रात्र, मरत्तन जो क्रम म पुस्तक,
अमिमपसाधन, भाजग, धान्य, वस्त्र, आयुध, आभूषण,
वादित्र, वस्त्रों क भण्डार होते हैं। इनके रक्षक भा द्य होते हैं।

३ ३०००० मुकुटबद्ध राजा व २०००० ग्रा व
१८००० आर्यगण्ड के स्लेज राजा (आधान होते हैं)।

४ ८४ करोड़ हाथी, ८४ लाख रथ, १८ करोड़ घोड़े, ८४
करोड़ प्यादे, ३ करोड़ गौशाल्यें आदि सम्पत्ति होती है।

छ पक्षों ने राजाओं को दिग्विजय के द्वारा अपने
आधान करते हैं व न्याय स प्रजा को सुखी करते हुए राज्य
करते हैं। ऐम १० चक्रवर्ती २४ तीर्थंकरों के समय म नाचे
प्रकार हुए हैं —

(१) भरत—अपमन्द के पुत्र। यह बड़े धर्मात्मा थे।
एक ग्रे इनको एक माध तान समाचार मिले—भी अपमन्द का
पेनाछानी होना, आयुधशाला में सुदर्शनचक्र का प्रगट होना
अपना पुत्र का जन्म होना। आपन धर्म को श्रेष्ठ समझ कर पहले
अपमन्द के दर्शन किये, फिर लौटकर दोनों लौकिक काम किये।

भरत ने दिग्विजय करके भरतगण्ड को वश किया।
मुख्य सेनापति हस्तिनापुर का राजा जयकुमार था। छोटे भाई
न इनको सम्राट नहीं माना, तर इनका युद्ध ठहरा।

मंत्रियों की सम्मति से सेना की व्यवस्था में जिससे जिस भी प्रकार की क्षति न हो, इस कारण परस्पर तान प्रकार के युद्ध ठहरे—
दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध, मण्डयुद्ध ।

ताओं युद्धों में भरत ने बाह्वलि से हार कर मोहित हो बाह्वलि पर चक्र चला दिया । किन्तु चक्र भी जब बाह्वलि का रुद्ध न बिगाड़ सका, तो भरत बहुत लाजग्रस्त हुए । तब बाह्वलि अपने बड़े भाई भरत का राज्य जक्ष्मी के शोभ में पेंस होने के कारण, यह दुष्टदृष्ट देश और अपने द्वारा बड़े भाई का अपमान हुआ समझ, राज्य-जक्ष्मी की निशंकर सुरत वैरागी साधु हो गये और बहुत ही बटिन तपश्चरण करने लगे । एक वर्ष तक लगातार ध्यान में लड़े रहने से इनके शरीर पर बेलें तक बढ़ गई । अंत में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षपद प्राप्त किया ।

भरत बड़े ग्यायी थे । इनका बड़ा पुत्र अर्ककीर्ति था । काशी के राजा अकम्पन ने अपनी पुत्री सुलोचना के सम्बन्ध के लिये स्वयम्बर मण्डप रचा । तब सुलोचना ने भरत के सेनापति जयकुमार के घर में बरमाना छापी । इस पर अर्ककीर्ति ने रुष्ट होकर युद्ध किया और युद्ध में हार गया । चक्रवर्ती भरत ने अपने पुत्र की अन्यायप्रवृत्ति पर बहुत रोद किया और उसका किसी भी प्रकार की सहायता नहीं दी । भरत बड़े आत्मज्ञानी व राज्य करते हुए भा वैरागी थे ।

एक दफे एक किसान ने भरत से पूछा कि आप इतना प्रवर्ध करते हुए भी तत्त्वज्ञान का भजन कैसे करते हैं ? आपने

उसे एक तेज का फटोरा दिया और कहा तू मेरे कटक में घूम आ, परतु यदि इस फटोरे में से एक धूँ भी गिरेगी तो तुझे दण्ड मिलेगा। यह फटोरे को ही देखता हुआ लौट आया। महाराज ने पूछा कि क्या देता ? उसने कहा कि कुछ नहीं कह सकता, क्या कि मेरा ध्यान फटोरे पर था। यह सुनकर भरत ने कहा कि इसी तरह मेरा ध्यान आत्मा पर रहता है। मैं सब कुछ करते हुए भी अलिप्त रहता हूँ।

एक दिन दर्पण में मुख देखने हुए शिर में एक सफेद बाल दृष्ट कर आप साधु हो गए। पीने दो घड़ी के ही आत्मग्यान से आपको केवलज्ञान होगया। आयु का अन्त होने पर मोक्ष पधारें। आपने कैलाश पर्वत पर भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों चौबीसियों के ७२ मन्दिर बनवाये थे।

-(२) सगर—यह अजिननाथ के समय में हुए। इक्ष्वाकुवंशी, पिता समुद्रविजय, माता सुमाला थी। सगर के १०००० पुत्र थे। एक दफे इन पुत्रों ने सगर से कहा कि हम कोई कठिन काम बताइए। तब सगर ने कैलाश के चागु सरक पारो रोड कर गङ्गा नदी बहाने की आज्ञा दी। ये गये, पारो रोडा। तब सगर के पुत्र जन्म के मित्र मणिकेतु देव ने अपने वचन के अनुसार सगर को वैराग्य उत्पन्न कराने के लिये उन सब कुमारों को अचेत करके सगर के पाव आछर यह मिथ्या समाचार कहे कि आपके मृत्यु पुत्र मर गये। यह सुनकर सगर को वैराग्य हुआ गया और भगीरथ को राज्य मिला।

आप साधु होगए । पुत्र जब सचेत हुए और पिता का माधु होना सुना तो यह सुने हो ये सब भी माधु होगए ।

(३) मधवा—यह चक्रवर्ती सगर से बहुत पाल पाढ़ श्री धर्मेनाथ प द्रुहधे तीर्थकर के मोक्ष जान के बाद हुए । इक्ष्वाकु वशीय राजा सुमित्र और सुमित्रा के पुत्र थे । अयोध्या राजधानी थी । बहुत पाल राज्य कर प्रिय मित्र पुत्र को राज्य देकर, साधु हो तप कर मोक्ष पधारे ।

(४) सनत्कुमार—चौथे चक्रवर्ती धर्मेनाथजी के समय में अयोध्या के इक्ष्वाकु वशीय राजा अनन्तवीर्य और गान्धी सहदेवी के पुत्र थे । आप बड़े न्यायी सम्राट् थे तथा बड़े रूपवान थे ।

एक दिन आप अस्त्रादे म व्यायाम कर रहे थे । तब आप के रूप की प्रशंसा इन्द्र के मुख से सुनकर एक देव दत्तन हो आया और देतकर बहुत प्रसन्न हुआ । फिर राजसभा में प्रकट हो मिलान की गया । उस समय बतनी सुन्दरता न देख कर मस्तक हिलाया । सम्राट् ■ मस्तर हिलाने का कारण पूछा । उत्तर में देव द्वारा अपने रूप की क्षणमात्र में हा कम हो जाने की बात सुन चक्र की सत्कार की अन्त्यता देख कर वैराग्य हो गया । उसी समय पुत्र देवकुमार को राज्य दे वे शिवगुप्त मुनि से दीक्षा ले तप करक मोक्ष पधारे ।

तब के समय एक दफे कर्म के उदय स पुष्ट्यादि भयङ्कर रोग होगये । एक देव परीचार्य वैद्य के रूप में आया और कहा कि आप श्रीपति ले । मुनि ने उत्तर दिया कि आत्मा के जो जन्म

मरणादि रोग हैं यदि उन्हें आप दूर कर सकते हैं तो दूर करें, मैं आपकी दी हुई अयधस्तुष्टि लेकर क्या करूँगा। देव ने मुनि के चारित्र्य में दृढ़ता देख कर उनकी स्तुति की और अपने स्थान को वापिस चला गया।

(५) १६ वें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ—यह एक दिन दर्पण में अपने दो मुँह देखकर संसार को अनित्य विचार अपने नारायण पुत्र को राज्य दे साधु हो गये। आठ वर्ष पीछे ही वैरागी हो अन्त में मोक्ष पधारे।

(६) १७ वें तीर्थंकर श्री कुपुनाथ जी—एक दिन वन में झीड़ा करने गये थे। लौटते समय एक दिगम्बर साधु को देखकर वैरागी हो गये। १६ वर्ष तप करके केवलज्ञानी होकर मोक्ष पधारे।

(७) १८ वें तीर्थंकर श्री अरहनाथ जी—राज्यावस्था में एक दिन शरदऋतु में मेघों का आकार नष्ट होना देख आप वैरागी हो गये। १६ वर्ष तप कर अरहन्त होकर उपदेश दे अन्त में मोक्ष पधारे।

(८) सुभाष—श्री अरहनाथ तीर्थंकर के मोक्ष के बाद हुए। अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशी राजा सहस्रबाहु और रानी चित्रमती के पुत्र थे। आपका जन्म एक वन में हुआ था। इनके पिता सहस्रबाहु के समय में इनके बड़े भाई कृतवीर्य ने एक दक किसी कारण से राजा जमदग्नि को मार डाला, वध जमदग्नि के पुत्र

परशुराम और श्वेतराम ने यह बात जान कर बहुत क्रोध किया और सहस्रशत्रु तथा वृत्तवोर्य को मार डाला। तब सहस्रशत्रु के बड़े भाई साहस्य ने गर्भवती रानी चित्रमता को वन में रक्खा जहाँ सुभीम पैदा हुए।

यह १६ वें वर्ष में चक्रवर्ती हुए। एक दिन परशुराम को निमित्तज्ञानी से मालूम हुआ कि मेरा मरण जिसमें होगा वह पैदा हो गया है। निमित्तज्ञानी ने उसका परीक्षा भी बताई कि जिस के आगे मारे हुए राजाओं के दात भोजन के लिये रखे जावें और वे सुगन्धित चाबूत हो जायें, वही शत्रु है। इस लिये परशुराम ने अनेक राजाओं को सुभीम के साथ बुलाया। सुभीम के सामने दात चाबूत हो गये। सुभीम को ही शत्रु समझ परशुराम ने सुभीम को पकड़ा, परन्तु तब ही सुभीम को चक्रवर्ती घोषित हुई। उस पक्ष से ही युद्ध कर सुभीम ने परशुराम को मार दिया।

विजय कर सुभीम ने बहुत काल राज्य किया। यह बहुत ही विपयलपटी था। एक दिन इसको एक शत्रु तान ने व्यापारी के रूप में बड़े स्वादिष्ट अपूर्व फल खाने को दिये। जब वे फल न रहे, तब चमो ने और मागे। व्यापारी ने कहा कि ये फल एक द्वीप में मिल सकेंगे। आप जहाज पर मेरे साथ चलिए। बड़े तोलुपों चला दिया। मार्ग में उस देव ने जहाज को डुबो दिया और चक्रवर्ती छोटे ध्यान से मर कर सानवें तर्क गया।

(९) नीवें चक्री १६ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ के समय में

फासीनगरी के रंगमा इक्ष्वाकुवशीय पञ्चनाभ और ऐरा रानी के सुपुत्र पद्म थे । बादलों को नष्ट होत देखकर बैरागी हो गये और साधु होकर मोक्ष पधारे ।

(१०) इसमें चक्रो श्री हरिप्रेम भगवान् मुनिमुनिनाथ के काल में भोगपुर के राजा इक्ष्वाकुवशीय पञ्च और ऐरा रानी के सुपुत्र थे । आकाश में चन्द्र घट्ट देख आप माधु हो गये तथा जन्म में सर्वार्थसिद्धि गये, मोक्ष न जा सके ।

(११) ग्याहर्षे चक्रवर्ती जयसेन श्री नेमिनाथ तीर्थंकर के समय में समदेश के कौण्डिन्यो नगर के इक्ष्वाकुवशी राजा विजय और रानी प्रभाकरी के पुत्र थे । एक दिन आकाश में इक्ष्वाकु देख कर बैराग्यवान् हो माधु हो गये । तब परते हुए अन्त में श्री सम्मेर शिखर पर पहुँचे । वहाँ चारण नाम की योगी पर समाधिमरण कर सर्वार्थसिद्धि में जा अहमिंद्र हुए । एक जन्म मनुष्य का और ले मोक्ष पधारेंगे ।

(१२) श्री नेमिनाथ के समय में १८वें चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त हुआ । यह ब्रह्मा राजा व रानी वृजदेवी का पुत्र था । यह विषय भागों में बँस रहा । अन्त में मर कर सावनों नई गया ।

८०. भरतक्षेत्र में ६ प्रतिनारायण,
६ नारायण और ६ धलमद्रों का परिचय

विदित हो कि हर एक अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी काल में ६३ महा पुरुष होते रहते हैं, अर्थात् २४ तार्थंकर जो समय मोक्ष

जाते हैं, १० चक्री जिन में कोई मोक्ष कोई स्वर्ग और कोई नर्क जाने हैं और ९ प्रतिनारायण ९ तारायण व बलभद्र जिन में ९ नारायण और ६ प्रतिनारायण त्रिपय भोग में तन्मय होने के कारण नर्क जाते हैं, परन्तु वामन साधु होकर कोई मोक्ष तथा कोई स्वर्ग जाते हैं ।

नारायण और बलभद्र एक ही पिता के पुत्र होने हैं । प्रतिनारायण नारायण के जन्म से पहिले ही भरत व दक्षिण तीन स्वर्गों को जीतकर अपने वरा करते हैं और चक्ररत्न को पाकर अध्वचक्री हो राज्य करते हैं । कारणवशा नारायण से इनको शत्रुता हो जाती है, दोनों पोर युद्ध करते हैं, अन्त में नारायण वसी के चक्र रत्न को पाकर वसी से प्रतिनारायण का मस्तक छेदा कर स्वयं अध्वचक्री हो जाते हैं और बड़े भाई बलभद्र के साथ राज्य करना लगते हैं ।

नारायण के पास निम्न ७ रत्न होते हैं —

धनुष, छद्ग, चक्र, शस्त्र, दण्ड, गदा, शक्ति ।

बलभद्र के पास भी निम्न चार रत्न होते हैं —

गदा, माल, हल, मूमल ।

ये सब ही ६३ महापुरुष मोक्ष के अधिकारी हैं । जो इस जन्म से मोक्ष न जावेंगे, वे अगामी किसी जन्म से पहुँच थोड़े काल में ही मोक्ष प्राप्त कर लेंगे । नारायणादि का परिचय इस भाँति है —

(१) सेवासनाय तीर्थङ्कर के समय में भरत व विजयार्ध

पर्वत पर उत्तर भेणो म अलकापुरी के राजा मयूरमोव का पुत्र अश्वघोष नाम का पहिला प्रतिनारायण हुआ। इसी समय में पोटनपुर के राजा प्रजापति के मृगावती रानी से पहला नारायण तृपृष्ठ (यह भरत पुत्र मारीच अर्थात् महावीर स्वामी का जाय है) और दूसरी रानी जयावती से विजय नाम के बलभद्र हुए।

अश्वघोष और तृपृष्ठ ने युद्ध का कारण यह हुआ कि अश्वघोष के पास किसी राजा द्वारा भेजी हुई भेंट को तृपृष्ठ ने बलपूर्वक ले लिया था। युद्ध में प्रतिनारायण मर कर नर्क गया। नारायण पृथ्वी का स्वामी हुआ और राज्य करके अन्त में यह भी मोक्ष से मर कर नर्क ही म गया। पाछे बलभद्र ने सुवर्ण हुम मुनि से दोषा ल मोक्ष प्राप्त किया।

(२) श्री वासुपूज्य के समय में भोगवर्धनपुर के राजा भीधर के पुत्र दूसरे प्रतिनारायण तारक हुए। उसी समय झारिकापुरी के राजा ब्रह्म भी सुभद्रा रानी से दूसरे बलभद्र अचल और ऊषा रानी से दूसरे नारायण द्विपृष्ठ जन्मे।

तारक ने दूत भेजकर नारायण को आज्ञानुवर्ती रहन को कहा, जिसे स्वीकार न करने क कारण परस्पर युद्ध हुआ। तारक चक्र से मरा और सातों नर्क गया। द्विपृष्ठ राजा हुआ और राज्य कर यह भी मरकर नर्क ही गया, फिर अचल ने साधु हो मोक्ष प्राप्त किया।

(३) श्री विमलनाथ तीर्थंकर के जीवन काल में ही रत्नपुर

का राजा मधु नाम का तीसरा प्रतिनारायण हुआ। तब ही द्वारका के राजा रुद्र के सुभद्रा दत्तो राजा से तीसरे पाभद्र सुधर्म व पृथ्वी दत्तो से तीसरे नारायण स्वयम्भू हुए।

जिसी राजा द्वारा मधु को मेत्री हुई भेंट स्वयम्भू ने छीन ली, इससे परस्पर युद्ध हुआ। मधु मरकर नर्क गया। स्वयम्भू ने भी राज्य कर मोर से भर ७ बा नर्क पाया। सुधर्म ने विमलनाथ भगवान से दीक्षा ले मोक्ष पद पाया।

(४) भी अनन्तनाथ तीर्थङ्कर के समय काशी देश के राजा के यहाँ मधुसूदन नाम का चौथा प्रतिनारायण हुआ। तब ही द्वारका के राजा सोमप्रभ की रानी जयावती व सुप्रभ नाम के चौथे पाभद्र तथा रानी सीता से पुरुषोत्तम नाम के चौथे नारायण हुए।

मधुसूदन ने पुरुषोत्तम से राज्य कर मागा। न देने पर युद्ध द्विज गया। मधुसूदन मारे गए व सातव नर्क गये। पुरुषोत्तम ने मग्न हो राज्य किया और अन्त में मर कर यह भी सातवें नर्क गया। सुप्रभ न दीक्षा ले तपकर मोक्ष प्राप्त किया।

(५) भगवान धर्मेनाथ के समय में हस्तिनापुर में मधुकैटभ नाम का पाँचवाँ प्रतिनारायण हुआ। तब ही रणपुर के राजा इन्द्रावुषशी सिद्धमेन की रानी विजयादेवी से ५ वें पाभद्र सुदर्शन व अविहादेवी से ५ वें नारायण पुरुषसिंह हुए।

मधुकैटभ व नारायण से कर मागा, न देने पर परस्पर युद्ध हुआ। कैटभ मर कर नर्क गया। पुरुषसिंह भी राज्य कर

अन्त में मर सातवें नर्क गया । बलभद्र सुदर्शन ने धर्मनाथ तार्थ
हूर के पास दीक्षा ली और तपकर मोक्ष पधारे ।

(६) श्री अरुनाथ के तीर्थकाल में सुभीम चक्रवर्ती के
पीछे निमुभ नाम का छठवा प्रतिनागायण हुआ । तब ही चक्रपुर
के महाराज वरमन के वैजयन्ती रानी स छठवें बलभद्र नन्दिपेण
और लक्ष्मीरता रानी स छठवें नारायण पुंढरीक हुए । इन्द्रपुर
के राजा ज्योत्स्न ने अपना कन्या पद्मावती का विवाह नारायण
पुंढरीक से किया । इस पर निशु म अमन न हो युद्ध को आया ।
युद्ध में निशु म मर कर नर्क गया । पुंढरीक राज्य में मोक्षित हो
अन्त में मर कर छठे नर्क गया । बलभद्र नन्दिपेण न वैराग्यवान
हो तपकर मोक्ष प्राप्त किया ।

(७) श्री मस्तिनाथ के तीर्थकाल में विजयार्थ पर्वत पर
बलिन्द नाम के ७ वें प्रतिनारायण हुए । सभी समय बनारस
के इक्ष्वाकुवंशी राजा अग्निशिख के अश्वमेधा रानी से ७ वें
पद्मभद्र नन्दमित्र तथा करारता रानी स ७ वें नारायण दत्त
हस्तन हुए ।

दत्त के पास श्रीदेव नाम का बड़ा सुन्दर हाथी था । इस
बलिन्द ने मागा । दत्त ने बदले में कन्या विवाहने को कहा । इस
रात के न माने आन पर परस्पर युद्ध हुआ । बलिन्द मर कर नर्क
गया । दत्त ने भी राज्य कर भोगों में लीन हो अन्त में सातवा नर्क
पाया । नन्दमित्र ने तपकर मोक्ष प्राप्त किया ।

(८) मगध के मुनिमुद्रव के तीर्थकाल में लका के राजा

रत्नश्रवा के कैवला रानी से ८ वें प्रतिनारायण रावण हुए। तब ही अयोध्या के राजा दशरथ के कौशल्या रानी से ८ वें धरमद्व रामचन्द्र तथा सुमित्रा रानी से ८ वें नारायण लक्ष्मण हुए। रामचन्द्र को रानी सीता पर मोहित हो रावण ने उसे हरण किया। इस पर रामचन्द्र ने लक्ष्मा पर चढ़ाई की। युद्ध में लक्ष्मण ने रावण को मारा। वह नर्क गया। लक्ष्मण ने सीता को छुड़ाया। बहुत काल तक दोनों भाद्यों ने राज्य किया। लक्ष्मण भोगों में अत्यन्त लिप्त रहते थे।

एक दिन किमी ने रामचन्द्र की मृत्यु की मूठो खबर लक्ष्मण को दी, जिस को सुनते ही एक दम शोकाकुल हो जाने से लक्ष्मण के प्राण निकल गये।

रामचन्द्र ने कुछ काल पीछे दीक्षा ले तपस्त्र मुक्ति पाई।

(९) श्री नेमिनाथ स्वामी के समयमें मगध का राजा अरा सिधु नीबों प्रतिनारायण हुआ। उसी समय मधुरा के यदुवशी महा राजा वसुदेव के रानी देवकी से श्रीकृष्ण नाम के नीबें नारायण हुए।

राजा वसुदेव की के पुत्रों का शत्रु था। इससे बसक भय से वसुदेव ने पैदा होते ही कृष्ण को जमना पार गङ्गा में ले जाकर एक नन्द गोपाल को पालन के लिये सौंप दिया।

महाराज वसुदेव की दूसरी रानी रोहिणी से ६ वें बलभद्र पद्म नाम के हुए। किसी कारण से कंस ने कृष्ण का जन्म जान लिया तब कृष्ण के मारने के लिये अनेक उपाय किये, पर वे सब निष्फल हुए।

जब कृष्ण सामर्थ्यान्वान हुए तब पड़िने ही उन्हींने कम को युद्ध में मारा । कम की रानी जीववशा ने अपने पिता प्रतिनारायण जरासंध को पति के मरण का हाल सुनाया । जरासंध ने अपने पुत्र कालवसन को युद्ध के लिए भेजा । शत्रु को घलाना जानकर यादवा ने सूरिपुर हस्तिनापुर व मथुरा को छोड़ कर समुद्र के पास द्वारकानगर में वास किया । यहाँ भी नेमिनाथ जी का जन्म हुआ ।

कुछ फल पाये जरासंध कृष्ण के मारने के लिये सेना लेकर चला । इधर कृष्ण ने भी सेना ले पाचों पाण्डवों के साथ वृक्षेत्र में आकर जरासंध को सेना के साथ युद्ध किया । अतः जरासंध ने सुदर्शनचक्र चलाया वह कृष्ण के हाथ में आगया, उसी से ही कृष्ण ने जरासंध को मारा । वह मर कर नर्क गया, फिर कृष्ण ने तीन पण्ड राजा पाकर द्वारका लौटकर, नारायण पद में बल्लभ सद्धि राज्य किया । इनका शरीर नीच वर्ण का था । कृष्ण की रुक्मणी आदि आठ पटरानियाँ थीं ।

नेमिनाथ जी को अधिक प्रतापी जान कृष्ण ने कुछ देवी चेष्टा की जिससे नेमिनाथ वैराग्यवान हो, मुनिहो बप करने लगे । इधर बलदेव और नारायण राज्य करने लगे ।

कृष्ण के मोक्षगामी जम्बू मधुसूत आदि पुत्र हुए । कृष्ण ने पाण्डवों की सहायता देकर कौरवों का निधन कराया और पाण्डवों को राज दिलाया । अन्त में एक दफे कोई अद्विधारी तपस्वी द्वापायन द्वारका के बाहर बप कर रहे थे । उन पर यादवों के

वालकों ने उपसर्ग किया । मुनि को क्रोध आगया, जिससे द्वारका भस्म होगई । बड़ी कठिनता से कृष्ण, बल्लदेव भागकर बचे ।

कौशाम्बी के एक वन में पहुँचे । वहाँ कृष्ण का भाई जरहूमार, जो बहुत वर्ष पहले बाहर निकल गया था और कुसगति में पड़ शिकार खेलने लगा था, रद्द करता था । कृष्ण जी वनमें प्यास से पादित हो सो गये थे, बल्लदेवजी पानी लेने गये थे । जरहूमार ने दूर से कृष्ण को मृग जानकर बाण मारा, जिससे कृष्ण का देहान्त हो गया ।

बल्लदेवजी न भी क्रुद्ध बान पीछे मुनिप्रवृत्ति लिये और वे पाचवें स्वर्ग पधारे । पाचों पाण्डवों ने दीक्षा ली और सेतुंजय पर्वत पर ध्यान कर बुधिष्ठिर, भीम, अर्जुन ने मोक्ष पाइ तथा नहुल सहदेव सार्थार्थसिद्धि पधारे ।

८१. जैनियों के तिहार

जिन जिन मिलियों में जिस जिस तीर्थङ्कर ने मोक्ष पाइ है वे सब ही धरतल के योग्य हैं । वर्तमान में नाचे निम्ने दिवस अति प्रसिद्ध हैं —

(१) कार्तिक, फागुन आषाढ के अंत के आठ दिन, जिनको आष्टान्हिका व नन्दोरवर पव कहते हैं ।

(२) कार्तिक वदी १४ अर्थात् निर्वाण चौदस—जिसकी पिद्धली रात्रि को श्री महावीर स्वामी ने मोक्ष प्राप्त किया ।

(३) कार्तिक वदी १५—श्रीतम स्वामी ने केवलज्ञान पाया ।

(४) चैत्रसुदी १३—श्री महावीर भगवान का जन्म दिवस ।

(५) वैशाख सुदी ३ (अक्षय्य सृतीया)—श्रद्धामदेव श्री अयोध्या द्वारा प्रथम मुनिदान इस ही दिन हुआ ।

(६) जेठ सुदी ५—क्षेत्र पूजन का पवित्र दिन ।

(७) भाद्रपद सुदी १५—रक्षारघन पर्व, इस ही दिन मा विष्णुदुमार मुनि द्वारा ७०० मुनि सभ को अग्नि से बचाया गया था ।

(८) भाद्रपद सुदी १ से भाद्रपद सुदी १५ तक—बोहरा काण्य व्रत, जिसका प्रारम्भ भाद्रपद सुदी १५ से होकर समाप्ति कुषार वदा १ को होती है ।

(९) भाद्रपद सुदी १५ से भाद्रपद सुदी १४ तक—दश-लक्ष्य पर्व ।

(१०) भाद्रपद सुदी १०—सुगंध वा घूप दशमी ।

(११) भाद्रपद सुदी १३, १४, १५—स्तनत्रय व्रत, प्रारम्भ भाद्रपद सुदी १२, समाप्ति कुषार वदा १ ।

(१२) भाद्रपद सुदी चौदस—अर्न्त चौदस, दशलाक्षणी का अन्त दिवस ।

८२, जैनियों के भारतवर्ष में मसिद्ध कुछ तीर्थ
व अतिशय क्षेत्र

(१) बंगाल, बिहार, उड़ीसा प्रान्त—

१. श्री सम्प्रेक्षित्वर पर्वत या पार्ष्वनाथ पहाड़ी—यहा

सै सदा ही भरतक्षेत्र के २४ तीर्थंकर मोक्ष जाया करते हैं। इस कल्पमाला में किसी विशेषता में श्री ऋषभ, वासुपूज्य, ममिनाथ और श्री महावीर के सिवाय २० तीर्थंकर मोक्ष प्राप्त हुए। यह सर्व पर्वत परम पवित्र माना जाता है। जैन लोग नगे पैर यात्रा करते हैं, भोजनादि न,चे बरकर करते हैं। ई० आ० ३० रेल्वे के पारमनाथ स्टेशन से १२ मील -बाराबाग जिले में है।

२. मन्दारगिरि—भागलपुर से करीब ३० मील एक रमणीय पर्वत है। इसी से श्री वासुपूज्य भगवान ने मोक्ष प्राप्त की थी।

३. चम्पापुर—भागलपुर से ४ मील, नार्थनगर स्टेशन से १ मील। यहाँ श्री वासुपूज्य भगवान के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान यह चार कल्याणक हुए हैं।

४. पावापुर—बिहार स्टेशन से ७ मील। यहाँ श्री महावीर भगवान ने मोक्ष प्राप्त की है।

५. कुण्डलपुर—पावापुर से १० मील के करीब। यहाँ श्री महावीर भगवान का जन्म प्रसिद्ध है।

६. राजगृह और त्रिपुलावल आदि पाँच पर्वत—बिहार लाइन में राजगृह स्टेशन है। यहाँ अश्विनी आदि अनेक जैन राजा हुए हैं। महावीर स्वामी के समय शरण आये हैं।

यहाँ से श्री गौतम गणधर, श्री जीवधर कुमार आदि

७. नो—परतु उनका जन्मस्थान मुजफ्फरपुर जिले में बसाई ग्राम के पास होना चाहिये। वहीं स्थान बनना चाहिये।

आफ महात्माओं ने मोक्ष प्राप्त की है। श्री मुनिसुव्रत नाथ तीर्थंकर का जन्म स्था है।

७ गुणावा—सजगृह से ५ मील के दक्षिण। यहाँ श्री गौतम स्वामी ने तप आदि किया। नगराष्टेशन है।

८. श्री खण्डगिरि उदयगिरि—उड़ीसा के भुवनेश्वर स्टेशन से ५ मील। यहाँ बहुत प्राचीन गुफाएँ हैं और साधुओं ने ध्यान किया है। सन् ई० स १५० वर्ष पूर्व का जैन राजा खारघेन का शिलालेख पायी गुफा में है। तीर्थंकरों की मूर्तियाँ चिह्न सहित कोरी हुई हैं।

(२) युक्तमात—

(१) बनारस—यहाँ श्री सुपार्ष्वनाथ ७ वें तीर्थंकर का जन्मस्थान भद्वैनी घाट पर है। यहाँ दिगम्बर जैना का श्री स्याद्वाद महाविद्यालय है जो सन् १९०५ ई० में स्थापित हुआ था। मेलपुरा में श्री पार्ष्वनाथ २३ वें तीर्थंकर का जन्मस्थान है।

(२) चन्द्रपुरी—बनारस से १० मील के दक्षिण गङ्गा तट पर श्री चन्द्रप्रभु ८ वें तीर्थंकर का जन्म स्थान है।

(३) सिंहपुरी—बनारस से ६ मील श्री भोयासनाथ ११ वें तीर्थंकर का जन्म स्थान है।

(४) खसुन्दी या निस्किन्यापुर—नुनखार स्टेशन से २ मील, गोरखपुर से ३० मील। यहाँ श्रीपुष्पनाथ भगवान् ९ वें तीर्थंकर ने जन्म प्राप्त किया था।

(५) कुशार्क—मलमपुर स्टेशन से ५ मील, गोरखपुर

से ४६ मील। यहा एक जैन मानस्तम्भ २४॥ फुट ऊँचा है। श्री पार्ष्वनाथ की मूर्ति अङ्कित है। इस पर गुप्त स० १४६ व ४५० सन् ६० का शिलालेख है।

(६) कोसाम या कौशाम्बी—बिला प्रयाग, महान-पुर स १२ मील। यहा भी पद्मपुत्र भगवान् ६ठे तीर्थंकर का जन्म हुआ है। बहुत प्राचीन स्थान है। यहा सन् ६० स दो शताब्दि पहिले के जैन शिलालेख हैं।

(७) अयोध्या—यहा भी आदिनाथ अभिननाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ व अनन्तनाथ ऐसे ५ तीर्थंकरों का जन्म स्थान है। यहा सदा ही भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों का जन्म हुआ करता है, किन्तु इस कल्प में यहा केवा ५ ही जन्मे।

(८) आवस्ती—या महेठमहेठ जि० गोंडा—या-रामपुर ॥ १२ मील। यहा भी समवनाथ तीमरे तीर्थंकर का जन्म हुआ है।

(९) रत्नपुरी—नैयागद से कुछ दूर सुहावल स्टेशन स १॥ कोस। यहा १५ वें तीर्थंकर श्री धर्मनाथ का जन्म हुआ है।

(१०) फम्पिला—बिला प्रहंखागद, कायमगाज स ६ मील। यहा भी विमलनाथ १३ वें तीर्थंकर ने जन्म प्राप्त किया था।

(११) अहिच्छत्र—परेली बिला आवला स्टेशन से ६ मील। यहा भी पार्ष्वनाथ भगवान् को फमठ न उपसर्ग किया था।

तब घरणोद्ग पद्मावती न सनकी रक्षा की थी और उनको य
मेघनाथानि प्राप्त हुआ था, ऐसा प्रसिद्ध है ।

(१२) मथुरा—घौरासी । यहा अतिम पक्षत
भी जम्बू स्वामी ७ मुक्ति प्राप्त की है ।

(१३) इस्तिनापुर—मेरठ जहर से २३ मील । य
भी शाम्भुनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ १६, १७, १८ वें तीर्थंकरों
जन्म आदि चार कल्याणक हुए ।

(१४) देवगढ़—शिला मामी आप्तलौन स्टेशन से
मील । यहा पहाड़ पर बहुत से दर्शनीय जैन मन्दिर व शिल
लेख हैं ।

(३) राजपूताना, मालवा, मध्य भारत—

१. श्रमणगिरी—सोत्रगिरि (दतिया स्टेट) से
माल । यहा से नङ्ग, अनङ्ग कुमार व पाच करोड़ मुनि मुक्त
हुए हैं ।

२. सिद्धवरकुट—इन्दौर स्टेट, मोरटङ्कला स्टेशन से
मील, नवदश पार । यहा से दो चक्रवर्ती, १० कामदेव व ३॥ करो
मुनि मुक्ति पधारे हैं ।

३. बटवानी—चूलगिरि धावनगजा, मऊ धावनी से
८० मील । यहा भी मेघनाथ, कुम्भकरण आदि ७ मुक्ति पा
है व घौरासी पुट ऊँची भी अप्समदेव की मूर्ति बहुत पुरानी है ।

४. महावीर जी—श्री महावीरजी स्टेशन (जयपुर स्टेट)
से ३ मील । यहा श्री महावीर जी की अविशय रूप

५. आबू जो—आबू रोड से १८ मील पर्वत है। घड़े
अमृत्य जैनमंदिर हैं।

६. नेशरिया जी—उदयपुर—से चालाम मील। यहा
अतिशयरूप श्री अष्टमदेव की मूर्ति है।

(४) मध्य प्रान्त वरार—

१. कुण्डलपुर—बमोह से १९ मील। यहा पर्वत पर श्री
महाबोर स्वामी की अतिशयरूप मूर्ति है बहुत स मंदिर हैं।

२. रैसदीगिरि या नैनागिरि—सागर से ३० मील,
दलपतपुर ॥ ८ मील। यहाँ से बरदत्ताद मुनि मोक्ष गये हैं।
पर्वत पर २५ मंदिर हैं।

३. द्रोणगिरि—ग्राम सेंदपा सागर से ६६ मील। यहा
स गुरुदत्तादि मुनि मोक्ष पधारे हैं। २५ जैनमंदिर हैं।

४. मुक्तागिरि—एलिषपुर स्टेशन से १५ मील यहा
३॥ करोड़ मुनि मुक्ति गये हैं। पर्वत पर बहुत मंदिर हैं।

५. रामटेक—नागपुर से २४ मील, रामटेक स्टेशन ॥
३ मील। यहा शातिनाथ जी का अतिशयरूप मूर्ति है।

६. भातकुली—अमरावती से १० मील। यहा भा
मनोश अष्टमदेव की मूर्ति चौये काल की है।

७. अन्तरीक्षपार्वनाथ—अकोटा से १९ फीस। यहा
श्री पार्वनाथ की मूर्ति सिरपुर ग्राम में अतिशयरूप है।

८. मरसीपार्वनाथ—चित्तौड़गढ़ जैन—सुकसी स्टेशन से
थोड़ी दूर। यहा चौये काल की पार्वनाथ जी की मूर्ति है।

१) बम्बई प्रांत —

१. तारङ्गा—नारङ्गा हिल स्टेशन से ३ मील। पर्वत पर खदर, सागररक्त तथा ३॥ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

२. सेत्रु जय—गाजीपान्थ स्टेशन पर्वत से श्री युधिष्ठिर, न, अर्जुन, य हीन गणेश व ८ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

३. गिरनार—वृगागड से ४ मील। यहां से श्री नेमि भगवान व प्रद्युम्न आदि ७० करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

४. पावगड—स्टेशन से २ मील। यहां से रामचंद्र के लव, कुश व ५ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

५. गजपन्था—नासिक से ९ मील। यहां से बलमद्रादि करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

६. मागीतुङ्गी—नासिक जिला मनसाड स्टेशन से ४० मील। यहां से श्री रामचंद्र, हनुमान, सुमोच आदि ९९ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

७. कुन्यलगिरि—बारसी टाउन स्टेशन से २२ मील। यहां से श्री देवभूषण कुंभभूषण मुनि मुक्ति पधारे हैं।

८. सजोत—गुजरात में अकलेश्वर से ६ मील। यहां से शिवलनाथ की प्राचीन दिव्य मूर्ति दर्शनीय है।

(६) दक्षिण मद्रास आदि—

१. श्रवणबेलगोल—जैनपट्टी मैसूरस्टेट मंदगिरि स्टेशन से १२ मील, हामन स्टेशन से ३० मील। यहां श्री बाहुबलि (गोम्मटस्वामी) की ५६ फुट ऊंची दर्शनीय मूर्ति है।

२. मूलचट्टी—मद्रलोर स्टेशन से २२ मील । यहा रत्न विम्व व भी घवलादि ग्रन्थ दर्शनीय हैं ।

३. कारकल—मूलचट्टी से १२ मील । यहा भी ३० फुट ऊँची भी बाहुबलि भी मूर्ति है ।

४. एनूर—यहा भी भी बाहुबलि की २८ फुट ऊँची मूर्ति है ।

५. पोन्नूरहिल—काचीदेश स्टेशन तिडिधनम् से २४ मील । यहा भी कुन्दकुन्दाचार्य जी की तपोभूमि है ।

८३. जैनियों के कुछ प्रसिद्ध आचार्य व उनके उपलब्ध ग्रन्थ

१ श्री कुन्दकुन्दाचार्य—वि० स० ४६ । भी पञ्चास्ति काय, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, अष्टपाहुड, रयणसार छादशभाषना ।

२ श्री उमास्वामी—वि० स० ८१ । भी तत्त्वार्थसूत्र

३ घट्टकेर स्वामी—श्री मूलाचार ।

४ श्री पुण्ड्रन्त मूतमणि—भा - घवना, जयधम्म, महाघवला ।

५ भा समन्तमद्राचार्य—वि० द्वि० शताब्दी । स्वयम्भू स्तोत्र, देवागम स्तोत्र, रत्नकरण्ड आनकाचार, २४ जिन स्तुति, युष्मानुशासन ।

६ शिपकोटी—वि० द्वि० शताब्दि । भगवती आराधनासार ।

७ श्री पूज्यपाद—वि० चतुर्थ शताब्दि । समाधिशास्त्रक, इष्टोपदेश, सवार्थसिद्धि, जैनेन्द्रव्याकरण, आरकाचार ।

८ श्रीभाणिक्यनन्दि—वि० छठो शताब्दि । परीक्षा मुख, न्यायसूत्र ।

९ श्री अकलङ्कदेव—वि० अष्टम शताब्दि । राजवार्तिक, अष्टशती ।

१० श्री जिनसेनाचार्य—वि० अष्टम शताब्दि । श्री आदि पुराण, जयधवल टीका का भाग ।

११ प्रभाचन्द्र—आ प्रमेयकमल मार्तण्ड ।

१२ पुण्ड्रितकवि—शास्त्र महापुराण आदि ।

१३ श्री जिनमेनाचार्य—वि० अष्टम शताब्दि । श्री हरि-
वत्स पुगण ।

१४ श्री गुणभद्राचार्य—वि० नवम शताब्दि । श्री वत्सर
पुगण, आत्मानुशासन, जिनदत्त चरित्र ।

१५ श्री विद्यानन्दि—वि० नवम शताब्दि । आप्तपरीक्षा
श्लोकवार्तिक, प्रमाणपरीक्षा, अष्टसहस्रो, पत्रपरीक्षा ।

१६ आनेमिषन्द्र सिद्धातधकरणी—वि० दशम शताब्दि ।
श्री गोमटसार, सन्धिसार, चण्डासार, त्रिलोकसार, द्रव्य
समद ।

१७ श्री अमृतचन्द्राचार्य—वि० दशम शताब्दि । पञ्चा-
स्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार पर सारुत वृत्ति, तत्त्वार्थसार,
पञ्चार्थ सिद्धशुभाय ।

१८ श्री देवसेनाचार्य—वि० दशम शताब्दि । आलाप पद्धति, तत्त्वसार, दर्शनसार, आराधनासार ।

१९ श्री जयसेनाचार्य—वि० दशम शताब्दि । प्रवचनसार, पञ्चास्त्रिकाय, समयसार पर समुत्तवृत्ति ।

२० अमृतगति—वि० ११ शताब्दि । आनकाचार, सामायिकपाठ, धर्मपरीक्षा, सुभाषितरत्नसदोह ।

२१ शुभचन्द्र—वि० ११ शताब्दि । श्री ज्ञानार्णव ।

८४. जैनियों में दिगम्बर या श्वेताम्बर भेद

यह पहिले ही कहा जा चुका है कि जैनधर्म अनादि है तथा इतिहास को खोज क बाहर है । प्राचीन सनातन जैनमार्ग यही है कि इसक साधु नग्न होने हैं तथा जहाँ तक वस्त्र त्याग नहीं कर सकते थे, वहाँ तक ग्यारह प्रतिमा रूप आनक का व्रत पालन होता था ।

श्री ऋषभ देव से आ महावीर तक बराबर यही मार्ग जारी था । श्री महावीर के समय में जैन मत को निर्मथ मत कहते थे, जैसा बौद्धों को प्राचीन पुस्तकों से प्रगट है । उस समय दिगम्बर या श्वेताम्बर नाम प्रसिद्ध नहीं थे । सम्बत् रहित प्राचीन जैन मूर्तिया जो विक्रम सम्बत् के पूर्व की या चतुर्थ बाल की समझी जाती हैं (जब लेख लिखन का रिवाज न था) सब गन हो पाई जाती हैं ।

श्री सम्मेद शिखर के पास पालगंज में जो दिगम्बर जैन

मन्दिर है जम में श्री पार्व्यनाथ की मूर्ति ऐसी ही है । निजाम
मानभूम जिले में देवन्दान ग्राम में जो प्राचीन दिगम्बर जैन
मंदिर है उस में मुख्य अष्टभुज की अथ तीर्थंकर सहित मूर्ति
सम्बन्ध रहित बहुत प्राचीन नग्न ही है ।

श्री भद्रबाहु श्रुतकेवलों के समय में महाराज चन्द्रगुप्त
मौर्य के राज्य में (सन् ३०० स ३०० वर्ष पश्चित) मध्य दश
१२ वर्ष का दुष्काल पड़ा । दुष्काल के प्रारम्भ में ही श्री भद्रबाहु
श्रुतकेवलान, जा २४००० शिष्या सहित बड़ा मौजू थे, स
सबको यह आज्ञा दी कि इस समय खर्ब सघ को दक्षिण
जाना चाहिये । क्योंकि बड़ा जैन बस्ती बहुत है, बड़ा भाद
आदि की कठिना नहों पड़ेगी । तब आधे सघ न ता आ
मानगो, किन्तु आधे ने न मानो । वे आधे वहीं रहे । कालांतर
दुष्काल पड़ने पर वे अपने साधु के चारित्र को न पाल सके
शिथिलताये हो गई । कात्र कधे पर डाला गये । भोजन ला
एक धान पर धान लगे । कुत्तों से बचने के लिए लठी रख लगे
उन को लोगों ने अर्द्धकालिक प्रसिद्ध किया ।

दुष्काल बीतने पर जब मुनि सघ लौटा, तब बहुतों
प्रायश्चित लेकर अपनी गुद्धि की । शेषों ने हठ किया । शि
लाचार चलता रहा । विष्णु मन्वत् १३६ में श्वेत वस्त्र धार
करने से श्वेताम्बर नाम पड़ा । तब स जो प्राचीन निर्मथ मत
अनुयायी थे उन्होंने अपने को दिगम्बर प्रसिद्ध किया अथ
जिनके साधुओं का दिशा ही वस्त्र है ।

पहले श्वेताम्बरों की बहुत कम प्रसिद्धि रही। धीरे-धीरे सम्पन्न ९०० के अनुमान गुजरात के बलाभीपुर में ज्ञानदेवदेवदेव नाम के एक श्वेताम्बर आचार्य ने अपने शिष्यों की सभा करके प्राकृत भाषा में प्राचीन द्वादशांग वाणी के नाम से अपने आचार्य आदि ग्रन्थ रचाए। ये वे नहीं हैं जिन्होंने १८००० आदि पदों में सकलन किया गया था। इन ग्रन्थों में इन्होंने बहुत सी पार्वे दिगम्बरों में भेद रूप सिद्ध कीं, जिनमें से कुछ ये हैं—

१. सबस्त्र साधु होकर महाश्रव पालना।

२. मिष्टान्न माग कर पात्र में खाना व एक नियत स्थान पर एक या अनेक दफे खाना।

३. स्त्री को भी मुक्ति पद होना। दृष्टान्त में १९ वें तीर्थंकर भस्मिनाथ को भस्मि तीर्थंकर लिखना। प्राचीन जैन आम्नाय में स्त्री उस ध्यान की योग्यता नहीं रख सकती, जिस से पबलगा हो सक। इसलिये स्त्री का जीव आगे पुरुष भव पाकर ही महाश्रव पान मोक्ष जा सकता है।

४. केवला भगवान् अरहत का भी प्राप्त रूप साधारण मनुष्यों के समान भोजन पान करना, मलमूत्र करना, रोगी होना। प्राचीन जैनमत में केवली परमात्मा के अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त सुख, अनन्त वीर्य प्रगट हो जाने से उनकी आत्मा में न इच्छाए होती हैं और न निर्जनताएँ। उनका सशरीर (अरहन्त) अवस्था में शरीर कर्पूरवत् बहुत ही निर्मल हो जाता है। उसमें धातु उपधातु बदल जाती हैं। वय जैसे वृद्धों का

शरीर चट्टु ओर के परमाणुओं से पुष्टि पाता है, उसी तरह केवली का शरीर दीर्घ काच रहन पर भी चारों तरफ के शरीर याग्य परमाणुओं के ग्रहण से पुष्टि पाता है । केवला के शरीर में न रोगादि होने और न मलमूत्र होता है ।

५. मूर्तियों को लगोट सहित ध्यानाकार बनाकर भी उनके गृहस्थ के समान मुकुट आदि आभूषण पहिनाते, गृह्णार करते, अगर लगाते, पान पिलाते हैं । दिगम्बर जैन मूर्तियों नग्न ध्यानाकार सजे पड़े आसन होते हैं । उनमें कोई धन का चिह्न नहीं होता न वे अलङ्कृत की जाते हैं ।

६. काल द्रव्य का कोई श्वेताम्बर ग्रन्थकार निश्चय से स्वीकार नहीं करते । केवल धडा धरटा आदि व्यवहार काल मानते हैं । दिगम्बर जैन काल द्रव्य को द्रव्यों के परिवर्तन का निमित्त कारण मानकर अवश्य उसका सत्ता स्वीकार करते हैं ।

७. महावीर भगवान का प्रासङ्गिक यहाँ गर्भ में आना और इन्द्र के द्वारा गर्भ हरण कर त्रिशला के गर्भ में स्थापित करना, दिगम्बर जैनी इसे स्वीकार नहीं करते । त्रिशला के गर्भ में ही वे आये थे ।

८. आ महावीर भगवान का विवाह हुआ था । दिगम्बर जैनी कहते हैं कि वे कुंवारे ही रहे और तप धारण किया ।

इत्यादि कुछ बातों में अंतर पड़ा । सात सत्त्व, नौ गुण्य, पारस परीक्षण पांच महाशत्रु, आदि सब ही जैनी मानते

श्री जमा स्वामी महाराज सम्बन्ध ८१ में हुये हैं, उन्होंने जो सत्त्वार्थसूत्र रचा है, जिस की मायता दिगम्बरों में बहुत अधिक है, उसको श्वेताम्बर भी मानते हैं। यही इस धान का प्रमाण है कि उस समय मेद बहुत स्पष्ट नहीं हुआ था, पीछे से कुछ सूत्रों में परिवर्तन हुआ है।

द्वारे यहाँ बड़े प्रसिद्ध आचार्य १३ वीं शताब्दि में श्री हेमचन्द्र की दुर हैं, जिन्होंने बहुत सा संस्कृत में ग्रन्थ रचे और राजा कुमारपाल जैन की सहायता से गुजरात में धर्म का बहुत विस्तार किया। तब ही से श्वेताम्बरों की बहुत प्रसिद्धि हुई है। इन्हीं में से स्थानकवामी यादू दिये १५ वीं शताब्दि में हुये हैं, जिन्होंने मूर्ति मानने का त्याग किया और जो सबस माधुओं की ही सूर्यद्वार के समान मान कर पूजते हैं। अतएव यह है कि माधु लोग मलीन वस्त्र पहिने और मुँह में पत्थी बाधने हैं, इस भाव से कि कोई कीट न चला जावे। भोजन पीच, ऊँच जो दूध उसी से ले लेते हैं।

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिया जिल्द २५—ग्यारहवीं दशाब्द १९११ (Encyclopedia Britannica Vol 25, 11th edition 1911) में यह वाक्य जैनमत के सम्बन्ध में है—

The Jains are divided into two great parties, Digambara and Svetambara. The latter have only as yet been traced and that doubtfully as far back as 5th century A. D. after Christ, the former are almost certainly the same as Nirgranthas who are referred to in numerous passages of Buddhist Pali

Pitakas and must therefore as old as 6th century B C. The Nirgranthas are referred to in one of Asoka's edicts (Corpus Inscription Plate XX)

The most distinguishing outward peculiarity of Mahavira and his earliest followers was their practice of going naked whence the term Digambar

Against this Custom Gotam Budha especially warned his followers, and it is referred to in the wellknown Greek phrase Gymnoso phist used already by Megasthenes, which applies very aptly to Nirgranthas

भारार्थ—जैनियों में दो बड़े भेद हैं—एक दिगम्बर दूसरा श्वेतम्बर। श्वेतम्बर भोदे काल में शायद बहुत करके इसा की पाचवीं शताब्दि से प्रगट हुए हैं। दिगम्बर निश्चय से क़रीब २ वे हो निर्मग्न हैं जिनका वर्णन बौद्धों की पाली-पिटकों (पुस्तकों) में आया है और वे लोग इस लिये सन् ६०० से ६०० वर्ष पहले के तो होने ही चाहियें। राजा अशोक के स्तंभों में भी निर्मग्न्यों का लेख है। (शिलालेख न० २०)।

श्री महावीर जी और उनके प्राचीन मानने वालों में नम्र भ्रमण करने की क्रिया का होना एक बहुत ही प्रसिद्ध बाहरी विशेषता थी, जिससे शब्द दिगम्बर बना है।

इस क्रिया के विरुद्ध गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यों को खास तौर से सिखाया था, तथा प्रसिद्ध युन्वनी शब्द 'जैन सूका'

श्री उमास्वामी महाराज सम्बन् ८१ में हुये, ने इस शब्द
 तत्त्वार्थसूत्र रचा है, जिम की भाषा क साध निर्मियों
 अधिक है, उसको श्वेताम्बरी भा मानते हैं।
 प्रमाण है कि उस समय में बहुत
 कुछ सूत्रों में परिवर्तन हुआ है। H Wilson M A

and lectures on the

इन्ने यहाँ बड़े प्रसिद्ध हैं—
 हेमचन्द्र जी हुए हैं, जिन्होंने—

राजा कुमारपाल जी are divided into two principal
 विस्तार किया है। इन्हीं 'and Svetambara' The former
 हैं। इन्हीं to have the best pretensions to
 to have been most widely diffused
 Decan. Jains appear to belong to the
 division. So it is said to the majority
 of Jains in Western India. In early philosophical
 writings of the Hindus, the Jains are usually termed
 Digambaras or Nagas (naked)

। भावार्थ—जैनियों में दो मुख्य भेद हैं—दिगम्बर और
 श्वेताम्बर। दिगम्बरी बहुत प्राचीन मालूम होते हैं और बहुत
 अधिक पैले हुए हैं। सर्व दक्षिण के जैनी दिगम्बरी मालूम होने
 हैं। यही हाल पश्चिम भारत के बहुत जैनियों का है। हिंदुओं के
 प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में जैनियों को साधारणता से दिगम्बर
 या नग्न ही लिखा है।

श्रीमहावीर स्वामी के समय में भरतक्षेत्र के प्रसिद्ध राजा

कुछ पुराणों के देखन से जो नाम उन राजाओं के
१ श्रीमहावीर स्वामी के समय में थे, नीचे दिये

१. रा—राजगद्दी का राजा श्रेणिक या 'विम्ब
कुल जैन था। कुमार अवस्था में बौद्ध हो गया
(१) जवाना में जैन हो गया। यह भविष्य में होने वाले २५
सार्धहजारों में पड़ता पद्मनाभतीर्थकर होगा। (इसका विस्तृत जीवन
चरित्र अलग पुस्तककार छप गया है। उसे भँगाकर पढ़ा)।

(२) सिंधुदेश—वैशाख नगर का सोमवशी राजाचेटक
जैनो था। उसकी गना भद्रा से निम्न १० पुत्र थे —

धनदत्त, भद्रदत्त, उपेद्र, सुदत्त, सिद्धभद्र, सुकभोज,
अक्कपन, सुवत्त, प्रमत्तन और प्रभास।

इनमें अक्कपन और प्रभास का नाम श्रीमहावीर स्वामी के
११ मुख्य साधु अथात् गणधरों में है।

इसकी ७ पुत्रियाँ यह थीं—

१ प्रियकारिणी—जो ताम्रशा कुडपुर (जिला मुजफ्फर
पुर) के राजा सिद्धार्थ जैनो का रिवाही गई थी व जो श्री
महावीर स्वामी की माता थी।

२ भृगवती—वत्सदेश के कौशाम्बी नगर के चद्रवशी
राजा शतानीर जैन को रिवाही गई थी।

३ सुप्रभा—जो दशार्ण दश (मन्सौर के निष्ठ) के हेरकच्छ नगर के सूर्यवंशी जैनी राजा दशरथ को विवाही गई ।

४ प्रमावती—जो कच्छ देश के रोरुठ नगर के जैनी राजा उदयन को विवाही गई ।

५ ज्येष्ठा—जिसको गंधार दश (कंधार) के महीनगर के राजा सात्यक ने मंगी थी ।

६ चेतना—जो राजगृह के राजा श्रेणिक या विम्बमार को विवाही गई ।

७ चन्दना—जो विवाह न कर आयिरा हो गई ।

(उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक १ से ३५)

(३) हेमागदेश—राजपुर का राजा सरयधर, ४ पुत्र जीवधर जैनी ।
(उत्तर पुराण पर्व ७५)

(४) विदेहदेश—राजपुर का राजा गणेश ।

(४० पु० पर्व ७५)

(५) चपानगरी का राजा जैनी श्वेताइन, फिर जैन मुनि धर्मरुचि ।

(४० पु० पर्व ७६ श्लोक ८-९)

(६) सुरम्यदेश—गोदापुर का राजा विट्द्राज ।

(७) भगवदेश—सुप्रतिष्ठ नगर का राजा जयमेन जैनी ।

(४० पु० पर्व ७६ श्लोक २१-२२)

(८) पल्लवदेश—चन्द्राभा नगरी के राजा धनपति ।

(अथ ब्रह्ममणि ल० ५)

(९) दक्षिण—क्षेमपुरा का राजा नरपतिन्द्र ।

(छ० चू० ल० ६)

(१०) मध्यदेश—हेमाभा नगरी का राजा हृदमित्र ।

(छ० चू० ल० ७ श्लोक ६८)

(११) विदेहदेश—धरणी तिनका नगरी का जैनी राजा गोविन्दराज ।

(छ० चू० ल० १० श्लोक ७-८-९)

(१२) चन्द्रपुर का राजा सोमशर्मा ।

(श्रेष्ठिक चरित्र सर्ग २)

(१३) वेणुपद्म नगर का राजा वसुपाल ।

(श्रेष्ठिक चरित्र पर्व ४)

(१४) दक्षिण परला का राजा मृगाक जैनी ।

(श्रेष्ठिक चरित्र पर्व ६)

(१५) हम्पद्म का राजा रत्नचूल ।

॥

(१६) कनिगदश के दत्तपुर नगर का राजा धर्मधो जैनी, फिर दि० जैन मुनि हो गये । (श्रे० च० सर्ग १०)

(१७) भूमि तिलक नगर का राजा वसुपाल जैनी, पोद्दा यही जिनपा नाम के मुनि हुए । (श्रे० च० सर्ग १०)

(१८) कौशाम्बी (प्रयाग के पास) के राजा परहप्रयो जैनी । (श्रे० च० सर्ग १०)

(१९) मण्डितदश में दारानगर का जैनी राजा मणि माली, पीछे मुनि हुए । (श्रे० च० सर्ग ११)

(२०) हस्तिनापुर का राजा विश्रमा ।

(श्रे० च० सर्ग ११)

(२१) पद्मरथ नगर का राजा वसुपाता ।

(श्रे० च० सर्ग ११)

(२२) अरुन्धा (मात्वा) दश म वज्रयना का राजा
अवनिपाल जैनी ।

(धन्यकुमार चरित्र अ० १)

(२३) मराधदेश का भोगवला नगर का राजा कामवृष्टि ।

(धन्यकुमार चरित्र अ० ४)

नोट—जिन राजाओं के जैनी होने में संशय था उन के
आग जैना शब्द नहीं लिखा गया है ।

८६. श्री महावीर स्वामी के समय में सामयिक स्थिति का दर्शन ।

(१) स्त्रियों का अर्द्धांगिना सम्मान जाता था व उनको
सम्मानित किया जाता था ।

उत्तरपुराण पर्व ७४ श्लोक २५९—

राजा सिद्धार्थ ने प्रियकारिणी को सभा में आने पर
अपना आधा आसन बैठने को दिया ।

(२) सात २ खन के मजान बनते थे ।

महावीरचरित्र, उत्तरपुराण पर्व ७४ श्लोक २५३—

विद्वह के कुण्डपुर में सप्ततला प्रासाद थे ।

(३-क) माक्षण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों में परस्पर संबंध होते थे ।

१ उत्तर पुराण पर्व ७४ श्लोक ४२४-२५—

राजा श्रेष्ठिक ॥ माक्षण का पुत्र से विवाह किया ।

२ उत्तर पुराण पर्व ७४ श्लोक २९—

सोक्षगामी, अभयकुमार इसी माक्षण पुत्री का पुत्र हुए थे ।

इसी स्थल पर श्लोक ४६१ से ४६५ में वर्ण का वर्णन यह है—

वर्णाक्षर्यादि भेदात् वेदेभिर्भक्ष्यं च दर्शितम् ।

माक्षणादिषु सूत्रानि गर्भाधानं प्रवर्तनम् ॥

मांसि जातिं कृणोभेदो मनुष्याणां गयारवत् ।

आवृत्तिं गृह्णात्तस्मादन्यथा परिकल्पते ॥

जातिं गोत्रादि कर्माणि शुद्ध ध्यानस्य हेतवः ।

येषु तेन्युस्त्रयोवर्णा शेषा सूत्रा प्रकीर्तिता ॥

अर्द्धशतं मुक्ति योग्याया विदेदे जाति सत्तने ।

तद्धेतु नाम गोश्राव्य जीवा विच्छिन्न सभवान् ॥

शेषयोगस्तु चतुर्थस्यात् बाले तज्जाति संततिः ।

एव वर्ण विभाग स्या मनुष्येषु त्रिणागमे ॥ ४९१ ॥

अर्थ—मनुष्य का शरीर में वर्ण आवृत्ति के ऐसे भेद नहीं देखने में आते हैं, जिससे वर्ण भेद हो । क्योंकि माक्षण आदि का सूत्रादि के, माय भी गर्भाधान देखने में आता है । जैसे गौ घोड़े आदि की जाति का भेद पशुओं में है वैसे जाति भेद मनुष्यों में नहीं है, क्योंकि यदि आहार भेद होता, तो ऐसा भेद होता । जिनमें

जाति, गोत्र व कर्म गुप्त ध्यान के निमित्त हैं वे ही तान वण प्राद्वण, द्रो, वैश्य हैं। इन्हें सिपाय शूद्र महे गये हैं।

मुनि के योग्य जाति की सन्तान विदेहों में सदा चली जाती है। क्योंकि ऐसे नाम, गोत्र व घाटी सदा होते रहते हैं। भरत और ऐराज में चौथे वान में ही वर्ण की सन्तान व्यक्त रूप में चली है, राय कालों में अव्यक्त रूप से। इस तरह जिन आगम में मनुष्यों के भातर वर्ण का भेद जानना आदि।

३ उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३००-३२५—

जीवधर कुमार वैश्य पुत्र प्रसिद्ध थे। सुत्रिय विद्याधर गरुड़ बेरा की कन्या गन्धर्वदत्ता को स्वयंवर में घोषा यज्ञ कर जाता और विवाह।

४ उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३४६-६५१—

जीवधर कुमार ने त्रिदेह देश के विश्व नगर के राजा गयेन्द्र की कन्या रत्नप्रती को स्वयंवर में चन्द्रकयत्र पर निशाना लगा कर विवाह।

५ उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लोक ३४६-४८—

प्रातः कर वैश्य को राजा जयमम ने अपनी कन्या पृथ्वी सुन्दर विवाही व आधा राज्य दिया।

६ सुत्र चूड़ामणि लम्ब ५ श्लोक ४२-४९—

पल्लवदेश के चन्द्राभानगर व राजा धनपति की कन्या पद्मा की जीवन्वर वैश्य ने सर्प विष नतार कर विवाह।

छ "शेष कालों में अव्यक्त रूप से चलती है" यह सम्मति य० भाणिकचन्द्र जी की है।

७ सूत्र चूडामणि लम्ब १० श्लोक २३-२४—

विदह देश की घरणीतिलका नगरी के राजा अर्थात् उम के मामा गोविन्दराज की कन्या का स्वयंवर हुआ । उसको घोषणानुमार तीन वर्णधारी धनुषधारी एकत्र हुए । जीवन्धर ने चन्द्रक यत्र को बेरा और कन्या विवाही ।

८ श्रेणिक चरित्र शुमचन्द्रकृत सर्ग २—

उपश्रेणिक ने भीलों के सत्रिय राजा यमदण्ड की तिलक धती कन्या को विवाहा जिसके पुत्र चिताता हुए और चतो को राज्य भा मिला ।

९ धन्यकुमार चरित्र छठ पर्व—

राजा श्रेणिक न धन्यकुमार सेठ को वैश्य जानकर गुणवती आदि १६ कन्यायें विधि पूर्वक विवाहा और आधा राज्य दिया ।

(३-८) विवाह युगाधन में ही होते थे, बालविवाह नहीं होते थे ।

१ उत्तर पुराण पर्व ७५—

मामा ने आक्षा दी कि पुत्र व कन्या जब तक युवा न हो सयवक अज्ञान रहें, विवाह न हो ।

अभ्यर्णायीवने यावद्विवाह समयोभवेत् ।

यावत् पृथग्बसे दस्मादिति मासुलवाक्यवत् ॥

२. सूत्रचूडामणि लम्ब ८ श्लोक ६९—

उदणा कन्या विमत्ता को जीवन्धर ने विवाहा

(४) समुद्र यात्रा जैसा करते थे ।

१ उत्तरपुराण पर्व ७१ श्लोक ११०—

नागदत्त ने समुद्र यात्रा की, जहाज पर चढ़ कर पलास द्वीप गये ।

२ उत्तरपुराण, पर्व ७६ श्लोक २५०—

प्रीत्यंकर जैन सेठ ने व्यापार के लिये समुद्र-यात्रा की ।

३ सुत्र घूढामखि लम्ब ०—

श्रीक्षेत्र धैर्य न व्यापारार्थ समुद्र यात्रा का है ।

(५) उच्च वर्ण यात्रा छोटे आचरण से पतित हो सकता है ।

उत्तरपुराण पर्व ७४—

एक भ्रातृ ने एक ब्राह्मण को जाति मूढ़ता व जाति मद हटाने को यह उपदेश दिया कि—

तस्य पात्रेण मूढयच युक्तिभिः स निराकृतः ।

गोमास भक्षणमगम्य गमाद्यैः पतिते क्षत्रात् ॥

भावार्थ—गो मास खाने व बेरयागमन करने आदि से ब्राह्मण पतित हो जाता है, ऐसा कह कर उसका जाति मूढ़ता को युक्तियों से खण्डन दिया ।

संवत्सरान्नं भोजन शुद्धि, छ आवश्यकों का पालन, जिन चैत्यालय, साधुसङ्गति न होने से समुद्रयात्रा निषिद्ध है । यदि उक्त योग मिल जायें तो कोई दोष नहीं है, किन्तु मद्य, मांस के भक्ष्यिक प्रचार होने पर उक्त बातें कदा से मिल सकती हैं । (सम्मत पञ्च भाषिकचन्द्रोदी) ।

(६) मामी के पुत्र के साथ बहिन का विवाह होता था ।

१ उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक १०९—

स्वमातुलानी पुत्राय नन्दिमाम निवामन ।

कुलवाणिज माम्ने स्वामनुभा मदित्तादरात् ॥१०५॥

२ सत्र चूड़ामणि १० लम्ब—

अपने मामा गोविन्दराज की कन्या विमला को जीवधर ने ब्याहा ।

(७) गर्भाधान आदि संस्कार होने थे ।

उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक २४०—

गंधोदक सेठ जब जीवधर बालक को घर ले गया तब उसने अन्नप्राशन किया भी—

तस्यान्यदा वणिग्रर्य कृतमद्भुतसत्क्रियः ।

अन्नप्राशन पर्यन्ते व्यवहारजीवधराभिषाम् ॥ २५० ॥

(८) गेंदक्रीड़ा भी की जाती थी ।

उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक २६२—

जीवधरकुमार गेंद खेलते थे ।

(९) कन्यायें अनेक विद्यायें सीखती थीं ।

१ उत्तरपुराण श्लोक ३२५—

गहङ्गेय की कन्या गंधर्वदत्ता धीर्या वज्राना जानती थी ।

२ उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३४९-३५७—

वैश्य वैशवर्षदत्त का कन्या सुरमधरी ने चन्द्रोदय चूर्ण बनाया ।

वैश्य कुमारदत्त की क्या गुणमाता ने सूर्योदय चूर्ण बनाया । दोनों वैद्य विद्या जानती था ।

(१०) दया का उदाहरण ।

उत्तर पुराण पर्व ७५—

जीव-घर कुमार १ मरते हुए कुत्ते पर दया कर उस शमोकार मात्र दिया ।

(११) पक्षी भा अक्षर स्वयं सीर लेते हैं ।

उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक ४५७—

गन्धोत्कट भठ क पुत्र निद्याभ्यास करते थे, उनको देख कर कबूतर कबूतर ने अक्षर सीर लिये ।

(१२) प्राक्षण, क्षत्रिय, वैश्य ताना बर्ण वाले मुनि हो सकते हैं ।

उत्तर पुराण पर्व ७६ श्लोक ११७—

जम्बूकुमार के साथ त्रिदुश्चोर और तीना वर्ण वालों ने दीक्षा ली ।

(१३) मोक्षगामी गृहस्थावस्था में आरमी हिंसा के त्यागी नहीं होते ।

१ उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लोक २८९-८८—

मोक्षगामी प्रात्यकर वैश्य ने दुष्ट भीम को तलवार से मारा ।

२ दत्तचूडामणि लम्ब ३ श्लोक ५१—

गन्धर्वदत्ता को बरते हुए मोक्षगामी जीमन्धर ने राजाभा से युद्ध किया ।

३ क्षत्रचूडामणि लंब १० श्लोक ३७—

जीवधर ने काष्ठागार को युद्ध में मारा, फिर लड़ाई बंद की, क्योंकि अपनी क्षत्री वृथा हिंसा नहीं करते। विरोधी के मरने पर पाछे नर-हत्या सकस्य हिंसा है।

अथ सप्तम सर्ग कौरवोऽमनारयन् ।

सुधा वधादि भीत्यादि क्षत्रिया प्रतिनोमताः ॥ ३८ ॥

४ श्रेणिकचरित्र भ० शुभचन्द्रव सगं ६—

मोक्षगामा जम्बुकुमार वैश्य ने हंसद्वीप के राजा रत्नचूल पर पदमर केरल नगरा जा ८००० सेना का विध्वंस कर राजा को बाध लिया।

(१४) गृहस्थ लोग मणि व मंत्र के प्रयोगों को सीखते थे।

वशर पुराण पर्व ७५ श्लोक ३६८—

जीवन्धरकुमार मणि व मंत्र ज्ञान में चतुर था।

(१५) राजमही का विपुलाचल पर्वत परम पवित्र है।

यहां से जनकों ने मोक्ष प्राप्त की है।

१ वशरपुराण पर्व ७५ श्लोक ६८६ ६८७—

जीवधर ने मोक्ष प्राप्त की।

विपुलाद्रो हवरोप कर्मा शर्मण्यु मेव्यति ।

दृष्टाष्ट गुण सम्पूर्णो निष्ठितात्मा निरजनः ॥ ६८७ ॥

२ वशर पुराण पर्व ७५ श्लोक ५१७—

गौतम स्वामी गणधर ने यहीं से मोक्ष प्राप्त की।

३ श्रेणिक चरित्र पर्व १४—

श्रेष्ठिक पुत्र अमयकुमार ने विपुलाघत पर केवलज्ञान पाकर मोक्ष पाइ ।

(१६) वैराग्य होने पर राज्य व कुटुम्ब का मोह नहीं रहता है ।

१ उत्तर पुराण पर्व ७६, श्लोक ८-३९—

चम्पानगरी के राजा श्वेतवाहन भी वीर भगवान का उपदेश सुनकर वैराग्यवान हो ज्ञान होने पर भी बालक पुत्र विमलवाहन को राज्य दे मुनि हो बननी हो गये ।

२ धन्यकुमार चरित्र ७वा पर्व—

धन्यकुमार मेठ व सालिमद्र सठ ने जवानी में ही दोहा धारण की और घोर तप किया ।

(१७) श्रेष्ठिक का पुत्र कुण्डिक या अज्ञातशत्रु जैनधर्म पालता था ।

१ उत्तर पुराण पर्व ७६ श्लोक ४१-४२—

जब महावार की मोक्ष और गौतम गणेश्वर को केवलज्ञान हुआ, तब राजा कुण्डिक परिवार सहित पूजन करने को आया ।

स्थास्याभ्येतत्समाकर्ण्य कुण्डिक चेलिनी मुनः ।

तत्पुराधिपति सर्वं परिवार परिष्कृत ॥

२ ४० पु० पर्व ७६ श्लोक १०३—

जब जम्भुकुमार दोहा लेंगे, तब कुण्डिक राजा अभिषेक करावेगा ।

(१८) पाच वर्ष पूर्ण होने पर बालक विद्या प्रारम्भ कर देता था ।

सत्र चूडामणि लम्ब १ श्लो० ११०-११२—

पाच वर्ष पूर्ण होने पर जीवन्धर कुमार ने आर्यनन्दि तपस्वी के पास निष्ठ पूजा करके विद्या प्रारम्भ की ।

(१९) अजैनों को उपास्यपूर्वक जैनी बनाया जाता था ।

१ सत्र चूडामणि लम्ब २ श्लोक ७-६—

जीवन्धर कुमार ने एक अजैन तपस्वी को जैनधर्म का उपदेश देकर जैनी बनाया ।

२ सत्र चूडामणि लम्ब ७ श्लोक २३-२०—

जीवन्धरकुमार ने एक श्रोत्रभार्ग को जैना बना कर आठ मूलगुण ग्रहण कराये तथा प्रसन्न हो अपने धामूपण उत्तार कर दिये ।

(२०) उस समय पाच अणुव्रत धारण व तीन मकार का स्वाग, इन आठ मूल गुणों के धारण करने का प्रचार था ।

सत्र चूडामणि लम्ब ७ श्लोक २३—

अहिंसा रुत्य मस्तेय स्वरत्री मित्तवसु गही ।

मद्य, मांस, मधु त्यागैस्तेषां मू० गुणाष्टकम् ॥

(२१) स्वयंवर में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तीनों वर्णधारी एकत्र होते थे ।

सत्र चूडामणि लम्ब १० श्लोक २४—

गोविन्दराजा की कन्या के स्वयंवर में तानों वर्ण वाले आये ।

(२२) शत्रु को विजयकर फिर दया व नीति से राज्य धार होता था ।

१ चतुर्चूडामणि लम्ब १०, श्लोक ५५-५७—

जीवधर ने काष्ठागार को मार कर फिर हमके कुटुम्ब को सुर से रखा तथा १० वर्ष तक प्रजा पर कर माफ़ कर दिया ।

“अपरामकरादार्त्तं वर्षाणि द्वादशाप्ययम्”

२. मेणिक चरित्र सर्ग २—

राजा उपश्रेष्ठ ने चन्द्रपुर के राजा सोमराम को सहस्र जान पशु दिया, फिर उसका राज्य उसे ही दे दिया ।

(२३) लोग समय विभाग के अनुसार सर्व काम करते थे ।

चतुर्चूडामणि लम्ब ११—

जावधरकुमार रात दिन का समय विभाग करके धर्म, अर्थ, काम का साधन करते थे ।

‘रात्रिं दिव विभागेषु नियतो नियतिं व्यधात् ।

कालातिपात मात्रेण वर्तव्यं हि विनश्यति ॥ ७ ॥’

भावार्थ—जो काल को लाघ कर काम करते हैं, उनका करने योग्य काम नष्ट हो जाता है ।

(२४) शुद्ध भोजन राजा लोग करते थे ।

मेणिक चरित्र सर्ग २—

भील राजा चत्रिव यमदण्ड ने उपश्रेष्ठ को भोजन के लिए कहा ॥ तब उसका गृहस्थाचार की क्रिया शुद्ध न देख कर

भोजन न किया । जब तिलकवती कन्या ने छुट्टी छोड़ दी, तब राजा ने भोजन किया ।

(१५) पिता के लिए पुत्र का दायम ।

श्रेष्ठिक चरित्र सर्ग ८—

सिन्धुदेश विराटनगर के राजा चन्द्र के चेलान्त कन्या थी । वह सिवाय जैनों के दूसरे को नहीं विवाहवा था । उस समय राजा श्रेष्ठिक चौदह बेटे तथा उस कन्या के विवाहने की चिन्ता न थे । तब पितृ भक्त पुत्र अमरकुमार जैनों धन, कई सठों को साथ ले, अनेक स्थानों में जैनपना प्रकट करते हुए चेलान्त की रथ में बिठा ले जाये ।

(१६) नियमपूर्णक मतो न होने पर भी गृहस्थी देवपूजा आदि छ' कर्म पालवे थे ।

श्रेष्ठिक चरित्र सर्ग १३—

राजा श्रेष्ठिक मतो न होकर भी निर्य छ' आवश्यक पालन करते थे ।

(२७) गृहस्थ राजा लोग भी आवश्यक की क्रियाओं की पालवे थे ।

अमरकुमार चरित्र सकलकीर्ति कृत अ० १—

दण्डायनी का राजा अननिपाल बड़ा यमात्मा था । प्रातः काल छठ सामायिक, ध्यान, फिर पूजन, मध्याह्न में पात्र दान करके भोजन, पर्यं विधि में उपवास करता था । बड़ा निस्पृही था, मैं सेठ धनपात्र को जो धन मिला था वह उसे ही

(२८) जै० किसान थे तथा वे त्यागी थे ।

धन्यकुमार चरित्र अ० २—

जैनो कृपक का भोजन करके धन्यकुमार सेठ हुए चलान लगा । वह स्वर्ण भरा कलस मिला । धन्यकुमार ने वह धन स्वयं न लिया, कृपक भी ग्रहण न किया । बादानुमार के पाछे धन्यकुमार धन वहीं छोड़ कर अले गये ।

(२९) ब्रह्म की स्त्रियों में भी नीति से वर्तन का प्रचार था ।

धन्यकुमार चरित्र अ० ४—

अष्टपुत्र्य की माता ब्रह्मभद्र के पुत्रों को स्त्रीर वत्ताकर पिनाती थी, परन्तु अपने पुत्रों को मिला अपने स्वामी ब्रह्म की आज्ञा के पुरा सी भी स्त्रीर नहीं देती थी ।

(३०) वैश्यों में इतनी चतुरता थी कि थोड़ी पूज्यसे अधिक धन कमा सकते थे ।

धन्यकुमार चरित्र अ० ६—

राजगृह के श्री कीर्ति सेठ ने यह प्रसिद्ध किया कि जो वैश्य ३ दमकी से १००० दीनार कमावेगा, उसे अपनी धन्य विवाहूगा । धन्यकुमार ने फूल की माला बना कर अश्विक् के पुत्र अमयकुमार को १००० दीनार में बेच दी ।

(३१) गरीब पिता व भाइयों का भा सम्मान करते थे ।

धन्यकुमार चरित्र अ० ६—

धन्यकुमार सेठ जब अश्विक् सम्मानित हो राजा हो गए, तब उनके पिता व सातों भाइ उज्जैनो स निर्धन स्थिति

में आए । सयका धन्यकुमार ने बहुत सम्मान किया व धनादि दिया । इन ही भाइयों ने द्वेष कर धन्यकुमार को घोषी में पटक दिया था, परंतु धन्यकुमार ने उस बात को भुला लिया ।

(३२) पत्तियों द्वारा संदेश भेजा जाता था ।

सुत्र चंडामणि लम्ब ३ श्लोक १२८-५३—

जीव-धर ने एक 'सोते' के द्वारा गुणमाला का पत्र भेजा था ।

(३३) धर्म कार्य करके विरोध लौकिक काम को करते थे ।

सुत्र चंडामणि लम्ब १०—

जीव-धर कुमार पात्र दान देकर फिर काष्ठागार पर पुनः को बंदे ।

(३४) धर्मों का पुत्रों के साथ व्यवहार ।

धन्यकुमार चरित्र अ० १—

'धनराल' सेठ ने धन्यकुमार को प्रिया, कला, विज्ञान जर्बान होने तक सिखाया । धन्यकुमार नित्य पूजा व दान करता था । पिता धन्यकुमार को कहता था कि प्रातःकाल धर्म क्रियाओं को करके लघु लघु भोजन का समय न ही व्यापार करना चाहिए । अभी घर विवाह का नाम भी गया ।

८७. श्री महावीर स्वामी के पीछे भारत में

जैन राजाओं का राज्य ।

जैसे महावीर स्वामी के समय में उनके पूर्व अनेक जैन राजा राज्य करते थे, वैसे ही उनके पीछे भी बहुत काल तक

में जैन राजाओं ने राज्य किया है। उनमें के कुछ प्रसिद्ध राजाओं का यहाँ दिग्दर्शन मात्र कराया जाता है —

महाराजा चन्द्रगुप्त मौर्य जैन सम्राट् थे—

इनका राज्य भारतव्यापी व बहुत परोपकार पूर्ण था। यह श्री भद्रनाथ शुन्केरली के शिष्य मुनि होकर दक्षिण कर्नाटक में गय और श्रृंगरी बेनगोल (मैसूर स्टेट) में गुरु की अन्त समय सेवा की, यह यात वहाँ पर अङ्कित शिलालेख से भली प्रकार प्राप्त है। वहाँ चन्द्रगिरि पर्वत पर चन्द्रगुप्त वस्ती नाम का जिनमन्दिर भी है। इनका पोता राजा अशोक भी अपने राज्य के २६ वर्ष तक जैनधर्म का मानने वाला था। पोछे बौद्ध मत धारी हुआ है।

दहली में जो स्तम्भ है उसके लेखों में जैनधर्म की शिक्षा झलक रही है। वल्हण कविकृत राज तरङ्गिणी में लिखा है कि अशोक ने काश्मीर में जैनधर्म का प्रचार किया था। राजा अशोक का पोता सम्प्रति भी जैन था, जिसका दूसरा नाम दशरथ था।

उडुसा व कलिङ्ग देश में जैनधर्म का राज्य बराबर चला आता था। खण्डगिरि की हाथी गुफा का लेख जो मन् ३० से पूर्व दूसरी शताब्दि का है जैन राजा खारवेल या भिक्षु राजा या मेघवाहन का जीवनचरित्र इसमें अङ्कित है। उडुसा देश में जैनधर्म के राजा १० वीं शताब्दि तक होते रहे हैं।

दक्षिण उच्चर कनाडा में कादम्बराज जैनधर्म का मानने

वाला था, जो दीर्घकाल में छठी शताब्दि तक राज्य करता रहा, जिसकी राजधानी बनवासा थी। चत्तर कनादा में भटकल और जरसप्पा में जैन राजाओं ने १७ वीं शताब्दि तक राज्य किया है। सन् १४५० में चम्पैरपुरकी जैन रानी का राज्य था। जिसने भटकल के दक्षिण पश्चिम एक पाशाण का पुल बनवाया था। १७ वीं शताब्दि के पूर्व जरसप्पा में भैरवदेवी का राज्य था। गुजरात से सूत रादेर के पास रादेर में जैन राजा दीर्घकाल से १३ वीं शताब्दि तक राज्य करते थे, तब वहाँ अरब लोगों ने जैनियों का मगाकर अपना राज्य स्थापित किया।

दक्षिण के गुजरात में राष्ट्रकूट मरा ने राज्य किया है, हममें अनक राजा जैनधर्म के अनुयायी थे। उनमें अति प्रसिद्ध राजा अमोघवर्ष हुए हैं, जो भी जिनसनाचार्य के शिष्य थे व अत में त्यागी हो गये थे। यह आठवीं शताब्दि में हुए हैं। इन्होंने संस्कृत में कनड़ी में अनेक जैनग्रन्थ बनाये हैं। संस्कृत में प्रश्नोत्तरमाला व कनड़ी में कनिराज माग कनड़ोकाव्य प्रसिद्ध है। इसकी राजधानी हैदराबाद स्टेट में मलखण्ड या मान्यक्रेट थी, जहाँ प्राचीन जिनमन्दिर अब भी पाया जाता है व कई स्तूप जिले में दबे पड़े हैं।

दम्बद के बंतागाम जिले में राष्ट्रकूट मरा ने १३ वीं शताब्दि तक राज्य किया है, जिसके राजा मरा जैनधर्म के मानने वाले थे।

वहाँ के शिलालेखों से उनका जैनधर्म के

प्रसिद्ध है। उनमें पहला राजा मेरु व चसका पुत्र पृथ्वीवर्मा था। सौदन्ती में राजा शांति वर्मा न सन् ६८० में जैन मन्दिर बनवाया था। येनगाम या किला व चसके सुन्दर पापाण के मन्दिर जैन राजाओं के बनवाये हुए हैं और लक्ष्मी देव मल्लिकार्जुन अतिम राजा हुए हैं। भादवाक जिते म गङ्गा वरा के अनक जैन राजा नौवीं दशवीं शताब्दि में राज्य करते थे। चालुक्य तथा पल्लव वरा के भी अनेक राजा जैनी थे। १ १

‘‘ बुद्धलक्ष्मण ’’ में जयलपुर के पामे त्रिपुरा राज्यधानी रहने वाले हैहय वशी कालाचार्य या कलचूरी या चेशी वंश के राजा लोग सन् ई० २४९ से १२वीं शताब्दि तक राज्य करते रहे। दक्षिण में भी इनका राज्य फैला था। १ - -

‘‘ इस वंश के राजा प्रायः जैनधर्म के मानने वाले थे। मध्य-प्रात में अथ भौ एक जाति लांछी को सरंथा में पाई जाती है- जिनको जैन कलवार कहते हैं। ये हैहयवंशी या कलचूरी वशी प्राचीन जैन हैं। ’’ (दिल्ली सी पी से मस रिपोर्ट सन् २३०)

‘‘ गुजरात में अनहिलवादा पाटन प्रसिद्ध जैनराजों का स्थान रहा है। पाटन का संस्थापक राजा वनराज जैनधर्मी था। इसने सन् ७८० तक बड़ा राज्य किया। इसका वंश चावडा था, जिसने सन् ९५६ तक राज्य किया। फिर चालुक्य या सोलंकी वंश ने सन् १०४० तक राज्य किया। प्रसिद्ध जैनराजा मूलराज, सिद्धराज व कुमारपाल हुए हैं।

८८. जगत की रचना

क्योंकि जगत् छद्म द्रव्या का समुदाय है और सर्व द्रव्य सत् रूप निरूप्य हैं, हममें जगत् सत् रूप निरूप्य है। क्योंकि सब ही द्रव्य जगत् में काम करने हुए बदलते रहते हैं व परिवर्तित होते रहते हैं, हमसे यह जगत् भी परिवर्तनशील अर्थात् अनिस्त है। इस निस्थानित्यात्मक जगत् की रचना को जैन आगम किम तरह बताता है, इस बात का जानना हर एक जैनधर्म के जिज्ञासु को आवश्यक होगा। इसलिए हम इस प्रकरण में यह वर्णन संक्षेप में करेंगे।

वर्तमान भूगोल की समालोचना करके जैन आगम में कहे हुए भूगोल वर्णन के सिद्ध करने का प्रयत्न पूर्ण सामग्री व पूर्ण पर्याप्त ज्ञान के अभाव में हम नहीं कर सकते। इतना अवश्य जानना चाहिये कि जगत् में ऐसा परिवर्तन हजारों लाखों वर्ष में हो जाता है कि जहाँ भूमि है वहाँ पानी आ जाता है व जहाँ पानी है वहाँ भूमि बन आती है।

वर्तमान प्रचलित भूगोल देखी हुई समोन्त का है। जैन जगत् की रचना का वर्णन सदा स्वर रचना (जो कहीं का बदलते रहने पर भी अपनी मूल स्थिति को नहीं बदलती है) को मात्र बनलाने वाला है तथा जो वर्तमान भूगोल है वह बहुत छोड़ा है और जैन भूगोल बहुत बड़ा है।

प्राक्प्रमास्य विद्वान् एतन् कर रहे हैं। समय है अधिक भूमि का पता लग जाये। इसीसे शास्त्रों को उचित है कि

फिर घटते हुये ऊपर को मध्य में एक राजू चौड़ा है। फिर ऊपर को बढ़ता हुआ शेष आधे, ऊ आधे में पांच राजू चौड़ा है। फिर घटते हुए अन्त में ऊपर को एक राजू चौड़ा है। दक्षिण कक्षर बराबर सात राजू लम्बा है। ऊ चौड़ा इस लोक की चौदह राजू है। इसका घनफलफल समे ३४३ (तीनसीवैतालीस) घनराजू प्रमाण है। इसका हिमाय इस तरह है—

$$\frac{6+1}{2} \times 6 \times 6 = \frac{6 \times 6 \times 6}{2} = 108 \text{ घनराजू}$$

शेष आधे ऊ आधे का घनफल यह है —

$$\frac{1+4}{2} \times \frac{6}{2} \times 6 = \frac{4 \times 6 \times 6}{2} = 72$$

शेष ऊपर का आधा भी $\frac{108}{2}$ है।

$$108 + \frac{72}{2} + \frac{72}{2} = 252 \text{ घनराजू हुआ।}$$

इस लोक में ८ पृथ्विया हैं। सात नीचे हैं। उनके नाम मध्यलोक से पाताल तक रतनप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पद्मप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा, महावनप्रभा हैं। ये एक दूसरे से कुछ कम एक एक राजू ऊ अंतर पर हैं तथा पूर्व पश्चिम लोक के एक ओर से दूसरी ओर तक फैली गई हैं। इनको मोटाई इन्हीं राजू में गर्भित है।

मातृगो पट्टियों के नीचे एक राजू स्थान और है। इसको मातृगोरा कहते हैं। फिर लोक का अन्त है।

एक पृथ्वी ऊर्ध्व लोक के अन्त में है।

इस लोक की तीसरी तरफ की पवन मेढ़े दिये हैं। पहिले घनोदधि पवन गाय व मूत्र समान बर्णवाला है। उसके ऊपर घनरात मृग अन्न बर्णवाला है, फिर उसके ऊपर तनुवात है, उसका बर्ण अत्यन्त है। इसके ऊपर मात्र आकाश है।

यह तीसरी तरफ की पवन आठों पृथ्वियों के भी हर एक के नाचे हैं। इनकी गंगाई लोर के नीचे तथा ऊपर एक राजू तक की ऊंचाई तक, नाचे व बर्ण में हर एक पत्रा २०००० (पास हजार) योजन मोटा है। फिर एक दूरी घट कर सातवीं पृथ्वी के पास क्रम से सात, पांच तथा चार योजन क्रम से मोटी है। फिर क्रम से घटते हुए पदलो पृथ्वी के पास पाँच, चार, तीन योजन क्रम से मुटाई है। यहा तक सात राजू की ऊंचाई हो गई, फिर क्रम से बढ़ते दिये हैं। राजू के बा जल्कर पाचवें स्वर्ग के पास सात, पांच, चार योजन मुटाई, फिर घटते दिये आठवीं पृथ्वी के पास पांच, चार, तीन योजन का मुटाई है।

लोक के ऊपर दो कोस घनोदधि, १ कोस घनरात तथा ४२५ धनुष क्रम १ कोस अर्थात् १५७५ धनुष तनुवात मोटी है।

यह गणना प्रमाणागुल से है, जो साधारण उत्सेधागुल से ५० (पांच सौ) गुणा है। आठ आड़े जो का एक अङ्गुल (अर्ध अङ्गुल), २४ अङ्गुल का एक हाथ, ४ हाथ का एक धनुष, २००० धनुष का एक कोस, ४ कोस का एक योजन छोटा।, इससे ५०० गुना बड़ा योजन होता है।

यहा जो कोस कहा है वह ५०० कोम के बराबर है व जो धनुष कहा है वह ५०० धनुष के बराबर है ।

इस लोक के मध्य में नाली के समान एक राजू लम्बा चौड़ा व चौदह राजू ऊँचा जो क्षेत्र है समको प्रसनाली कहते हैं, क्योंकि द्वीन्द्रियादि प्रमजीव इसके भीतर ही जन्मते हैं, इसके बाहर नहीं ज मते, जब कि स्थावर जीव सर्व स्थानों में जन्मते व मरते हैं ।

मनुष्य, पशु, नारसी और देव चारों गति के प्रसजीव इतने ही क्षेत्र में पाये जाते हैं । इमक बाद तीन सौ चत्तीस (३०९) घनराजू में नहीं पाए जाते । प्रसनाली का क्षेत्रफल १४ राजू है । अतः तान सौ चत्तानास में से १४ घटाने पर ३०९ घनराजू में केवल स्थान पाए जाते हैं ।

अधोलोक का वर्णन—नीचे की सात पृथ्वियों के नाम, ऊपर से नीचे तक क्रम से घम्मा, यशा, मेघा, अश्वना, अरिष्टा, मघवी तथा माघवी भा प्रनिद्ध हैं । इनकी हर एक का मुदाई क्रम से एक लाख अस्सी हजार (१८००००), दत्ताम हजार (३२०००), अट्ठाईस हजार (२८०००), चौबीस हजार (२४०००), बास हजार (२००००), सोलह हजार (१६०००), आठ हजार (८०००) योजन है ।

पहली पृथ्वी के निम्न तीन भाग हैं—

१. पदभाग—जो १६००० योजन मोटा है ।

२. पकभाग—जो ८४००० योजन मोटा है ।

३ अम्बुद्वनभाग—जो ८००० योजन मोटा है।

स्वरभाग में भी एक २ हजार मोटी १६ पृथ्वियों के भाग हैं, पहले भाग को 'चिन्ना' पृथ्वा व अन्त के भाग को 'शैना' पृथ्वा कहते हैं।

स्वरभाग व एकभाग में देव रहते हैं। अम्बुद्वनभाग में पहला नरक है। आगे की छः पृथ्वियों में छः नरक और हैं। इन सात नरकों में नारकियों के उपजन व रहन योग्य क्षेत्रों प्रोचित कहते हैं। वे कोई सत्यात कोई असत्यात योजन चौड़े हैं। सातों नरकों में कुल ८४ (चौरासी) लाख बिले नीचे स्थित है —

पहला नरक—३० लाख

दूसरा नरक—२५ लाख

तीसरा नरक—१५ लाख

चौथा नरक—१० लाख

पाँचवा नरक—३ लाख

छठा नरक—५ कम एक लाख

सातवा नरक—बबल पाँच

पहली पृथ्वा से पाँचवीं के ३ चौथाई भाग तक बहुत चप्यता है, फिर सातवीं तक बहुत श्लेथ है। ओ माखी अत्यन्त परिग्रह म मोड़ी, अन्यायकर्त्ता व दिसक हैं, वे ३ नरकों में जाकर अन्तर्मुहूर्त के भीतर पैदा हो जाते हैं। इन का शरीर चेक्रियफ होता है, जिसमें बदलने की शक्ति है। इनके उपजने

ये स्थान कैंट आदि क मुष् के संग ११ मुष् के व समान होते हैं । यद्वा से गिर कर गेद क समान होता है । १२ क शरीर पारे के समान होता है जो दुधदे २ दाने पा फिर पिना जाता है । इन नारकियों के अन्यत कोय होता है, पोर पर एक दूसरे को कट देते हैं । आपस कृपा मित्र, नारायण का पार होते हैं । इय हा शस्त्र रूप होकर मारत है । उनको मूष्, पाम् पडुत लगती है । वे लडा की दुर्गधित मिट्टी का स्नान व केरकी नदी का स्नानी पानी पाते हैं, परन्तु मूष्, ध्यास मित्रता नहीं है ।

ये नारकी दुष्ट सद्गति और विना आयु पूरा हुए मर नहीं सकते हैं । इनकी वच्छष्ट आयु कम म एक, सौन, सान, दश, सत्रह, आईम य सेवास सागर है । अपर आयु पान नर्क में दश हजार वर्ष है । बदले नर्क में जो, वच्छष्ट है, वह दूसरे म जपय है । तीसरे नर्क तक असुर कुमार देव भी आकर नारकियों को लडाते हैं ।

इनक शरीर की ऊपारी पहल नर्क में कम ३ कम काम हाथ व अधिक से अधिक ७ धनुष, २ हाथ २ अंगुल है । आगे के नरकों म, इसकी दूनी २ ऊपारी, अर्थात्, १५ धनुष, २ हाथ, ३२ अंगुल, ३१ धनुष १ हाथ, ६११ धनुष, १२५ धनुष, २५० धनुष तथा २०० धनुष है ।

धरमाण पद्ममाण, से वनकामी देवों क साथ करोड बहत्तर लाख भवन हैं । उन हर एक में एक एक जिन मन्दिर है । ये भवनवासी निम्न दश नारकों क होते हैं -

असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्यौपकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वातकुमार ।

नारकियों क देह भी मनुष्य के समान होते हैं, परन्तु भयावने व कुरूप होते हैं तथा देव के शरार भी मनुष्य समान होते हैं, परन्तु वैमिथिक बड़े सुन्दर होते हैं । इन में से कवन असुरकुमार पृथ्वीभाग में रहते हैं ।

व्यन्तरजाति के देव आठ प्रकार के होते हैं—

किन्नर, किपुम्प महोरग गार्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच । इन में राक्षस जाति के देव पृथ्वी भाग में रहते हैं, शेष शरभाग में रहते हैं । बहुत से व्यन्तर मध्यलोक में भी रहते हैं । इन दोनों को जयन्त्य आयु दश हजार वर्ष की है तथा वस्तुष्ट आयु भग्नवामी देवों की एक सागर व अन्य तरों की एक पत्न्य होती है ।

इन्हीं दश प्रकार भवनवासो व आठ प्रकार व्यन्तरों में दो दो इन्द्र व दो दो प्रतीन्द्र होते हैं, जो राजा के समान हैं । इसी तरह ४० इन्द्र भवनवासी के व ३२ इन्द्र व्यन्तरों के जानते चाहिये । भवनवासियों में असुरकुमारों का शरीर पचीस धनुष, शेष का दश धनुष ऊँचा होता है ।

व्यन्तर देवा का शरीर भी दश धनुष ऊँचा होता है ।

पहली रत्नप्रभा पृथ्वा के उत्तरभाग की पहला पृथ्वी चित्रा है। यह एक राजू लम्बा चौड़ा क्षेत्र है—इसमें अनेक महा द्वीप और समुद्र हैं। मुख्य महाद्वीपों और समुद्रों के नाम हैं—जम्बूद्वीप लवणोन्धि घातुनी द्वीप, कालोन्धि, पुष्करधरद्वीप व समुद्र, पारुणीयर द्वीप व समुद्र, क्षारयर द्वीप व समुद्र, घृतवर द्वीप व समुद्र, कौशवर द्वीप व समुद्र, नक्षरवर द्वीप व समुद्र, अरण्यवर द्वीप व समुद्र, अरुणामासवर द्वीप व समुद्र, कुण्डलवर द्वीप व समुद्र, शङ्खर द्वीप व समुद्र, रुचिकवर द्वीप व समुद्र, मुजगवर द्वीप व समुद्र, इरागवर द्वीप व समुद्र, कौचवर द्वीप व समुद्र, स्वयम्भूरमण द्वीप व समुद्र।

जम्बूद्वीप में सात क्षेत्र हैं—अरव, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत, मेरावत।

जम्बूद्वीप में छ महापर्वत हैं जो इन क्षेत्रों को अलग २ करवा बाल हैं—हिमवत, महाहिमवा, निरध, नील, रुक्मि और शिखरी। इनके वर्ण क्रम से सुवर्ण, चांदी, चाया हुआ सोना, नीलरत्न, चांदी व सोने का समा हैं।

इन सात क्षेत्रों में जो विशदक्षेत्र है, उसके मध्य में बहुत ऊँचा व सुन्दर सुदर्श मेरु है—यह मध्यलोक के मध्य में है। इसके ऊपर पौंड्रक वन है। उसमें पांडुक शिला है, जिस पर जन्म लेने वाले तीर्थंकरों का अभिषेक इत्यादि देव करते हैं।

छ पर्वतों पर छ महाद्रु हैं—पद्म, महापद्म, विगद्र,

वशर महापुण्डरीक, पुण्डरीक । इसे चीन्ह महानदिशा
निकली हैं, जो पर्यंत म गिर कर ब्रह्मदा ने दो नदिशा सातों
क्षेत्रों म क्रम म बढ़ती हैं—महागंगा, महासिंधु, रोहित, रोहि-
तास्या, हस्ति, हस्तिना, सीता, सीतादा, नारी, नरकदा, सुवर्ण
कृष्णा, रूप्यदा, रक्ता, रक्तदा ।

इस मध्यशोक म दो प्रकार की व्यवस्था है—ऊँची कर्म-
भूमि है, वहा भोगभूमि है । जहा अग्नि, मग्नि, कृषि, वाणिज्य
आदि पन्ना में परिश्रम करके उदर पोषण किया जावे, वह कर्म-
भूमि है और जहा वस्तुवृत्तादिकों से भोग्य-वस्तु, प्राप्त हो
सकें व जो पुरुष का युग साध पैदा हो, वह युगल एक
दूसरे युगल को उत्पन्न करके माथ हो मरे, वन भोग भूमि
कहा है ।

जम्बूद्वीप क भरत और ऐरावत क्षेत्र में तथा विरेह क्षेत्र
में कर्मभूमि है । शेष चार क्षेत्रों म भोगभूमि है ।

इन ती तें कर्मभूमि क क्षेत्रों में 'आर्य सगड और म्लेच्छ
सगड हैं । जिस क्षेत्र क रहन वाले किसी धर्म पर विरहाम
रखते हैं उसे आर्य सगड कहते हैं व जिस क्षेत्र के रहने वाले
धर्म का विनाश भी विचार नहीं करते हैं, परलोक,
पुण्य, पाप व परमात्मा आत्मा आदि को बुझ भी नहीं सम-
झते हैं—केवल शरीर में था इन्द्रियें हैं उनको इच्छानुसार भोग
विनाश करने में व भोगों के निये साधर्म्य फैलाने में लौन
ले हैं, वह क्षेत्र म्लेच्छ सगड कहलाता है । भरत व ऐरावत

हर एक में एक एक आर्य गरुड व पाच । २ मोरुछ गरुड हैं ।
त्रिदश में ३ आर्य गरुड व १२० मोरुछ गरुड हैं ।

ज्योतिषी देव

सूर्य, चंद्र, मङ्गल, बुध व तारे ऐस पाच तरह के होते हैं—ये सब मध्यलोक में ऊपर की तरफ हैं—ज्योतिषी देवों का शरीर सात धनुष ऊँचा होता है व आयु, कृष्ण १ पद्म व जषन्य पद्म का आठवा भाग है । इनके विमान मृदा बने रहते हैं । वामें देव पैदा होते हैं व मरते हैं । इनके विमानों में, तथा भवनवासी, व्यतर तथा ऊर्ध्वनाक में रहने वाले कल्पवामी देवों के विमानों में जिन मन्दिर हैं ।

ऊर्ध्व लोक का वर्णन

मेरु के तले एक नीचे से ७ राजू ऊँचा है, फिर मेरु के तले से ऊपर तक मान राजू ऊँचा है । मेरु तल से डेढ़ राजू तक मोक्षम इरान स्वर्ग के विमान हैं । उसके ऊपर १॥ गरुड में सनकुमार महेन्द्र स्वर्ग हैं । फिर आगे आधे राजू में ६ युगा अधातु प्रसन्न प्रसन्नोत्तर, सातव कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र, सत्तर महस्त्रार, आनत प्राणत, आरण अच्युत स्वर्ग हैं । ऐसे ६ राजू में १६ स्वर्ग हैं । फिर एक राजू में ९ मैत्रेयक, ९ अनुदिश व पाच अनुत्तर विमान और सिद्धसेत्र हैं ।

(नक्षत्रा देवों)

१६ स्वर्ग में १२ कल्पवासी देव हैं । इन स्वर्गों

इद्रादि १० पदविया हैं। इनमें १० इन्द्र होते हैं अर्थात् पहले चार स्वर्गों के चार इद्र, बीच के ८ के ४ और अत के चार के चार इद्र होते हैं। सोलह स्वर्ग के ऊपर ११ विमानों में अधमिन्द्र होते हैं। वे अपने विमान में सब बराबर के होते हैं।

पाच अनुत्तर के नाम ये हैं—विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, स्रवार्यमिद्रि।

इनमें सब विमानों की संख्या इस तरह पर है -

१ स्वर्ग में	३२ लाख
२ " "	२८ लाख
३ " "	१२ लाख
४ " "	८ लाख
५-६ " "	४ लाख
७-८ " "	५० हजार
९-१० " "	४० हजार
११-१२ " "	६ हजार
१३-१६ " "	७००
३ अधो प्रवेयक में	१११
३ मध्य " "	१०७
३ ऊर्ध्व प्रवेयक में	६१
१ अनुदिश में	६
५ अनुत्तर में	५

सुन विमान—८४६७०२३ हर एकमें एक २ जिन मंदिर है।

इनकी आयु नीचे प्रमाण है :—

१—२ स्वर्ग में उत्कृष्ट आयु	२ सागर ।
३—४ " "	७ सागर
५—६ " "	१० "
७—८ " "	१४ "
९—१० " "	१६ "
११—१२ " "	१८ "
१३—१४ " "	२० "
१५—१६ " "	२२ "

नौ प्रवेयक में क्रम से २३ से ३१ सागर तक ।

नौ अनुविश में ३२ सागर

पाच अनुत्तर में ३३ सागर

पहिले दूसरे स्वर्ग में जषय आयु १ पत्य है । पहिले युगात् स्वर्ग में जो उत्कृष्ट आयु है, वही दूसरे युगात् स्वर्ग में जषन्य है । इसी तरह आगे है । सर्वार्थमिद्धि में ३३ सागर से कम आयु नश है ।

इनका शहर बहुत सुन्दर वैत्रियिक होता है । ऊँचाई नीचे प्रमाण है :—

१—२ स्वर्ग में	जा हाथ की
३—४ "	६ हाथ की
५—८ स्वर्ग में	५ हाथ की

९-१० स्वर्ग म	४ हाथ की
११-१२ " " " " " "	३॥ हाथ की
१३-१६ " " " " " "	३, हाथ की
२ अधो ग्रैवेयक म	२॥ हाथ का
३ मध्य, ग्रैवेयक म	२ हाथ की
३ ऊर्ध्व ग्रैवेयक म	१॥ हाथ की
९ अनुदिश, ५ अनुत्तर में	१ हाथ की

स्वर्गों म देवियों की जघन्य आयु एक पत्न्य से, कुछ अधिक व उत्कृष्ट ५५ पत्न्य है ।

स्वर्ग के देवों में तथा व्यन्तर, भवन व उपोतिपिया में नाचे ऊँच पद के भी धारा होते हैं । ये पदवियाँ निम्न वृक्ष हैं —

१ इन्द्र—राजा के समान, २ सामानिक—पिता व भाई समान, ३ त्रायस्त्रिंश—मन्त्रों के समान, ४ पारिपद्—सभा सद, समान, ५ आत्मरक्ष—शरीर रक्षक ६ लोकरपाल—छोटे गवर्नर के समान, ७ अतीक—ज्ञान का रूप रखने वाले, ८ प्रकीर्णक—प्रजा के समान, ९ आभियोग्य—ग्राहक बनने वाले, १० त्रिदिविक—छोटे देव ।

व्यन्तर व्योतिपियों में त्रायस्त्रिंश व लोकरपाल यह दो पद नहीं होते हैं ।

आठवीं पृष्ठी पैंतालीस (४५) लाख योजन चौड़ी अर्ध चन्द्राकार सिद्धशिला है । इस ही को सोध में तनुवातचलय के

दिल्लुल ऊपरी हिस्से में ठीक बीच में सिद्धों का स्थान है, क्योंकि जहाँ तक धर्मद्रव्य है, वहाँ तक मोक्ष प्राप्त जीवों का गमन हो सकता है । पैतालिस लाख योजन का ढाई द्वीप । ढाई द्वीप से दो सिद्ध हुए हैं, होते हैं, ब होगे । इसमें सिद्ध क्षेत्र सिद्धों से परपूर्ण भरा है ।

देवों के इन्द्रियसुखों के भोगने की शक्ति अधिक है, शरीर को बदलने व अनरूप रूप कालेने की शक्ति है, बहुत दूर तक जानने व जाने की शक्ति है इस कारण जो जीव पुण्यात्मा हैं वे देवगति में जन्म पाते हैं । जो जीव अन्यायी, हिंसक, पापी हैं, वे नरगति में जन्मने हैं । जिनके पाप कम हैं वे मध्यलोक में पशेन्द्रिय पशु होते हैं । जिनके पुण्य कम हैं वे मनुष्य होते हैं । इस तरह यह जगत् की रचना पुण्य पाप के फल से विचित्र है । जो सर्व कर्म रहित हो जाते हैं वे सिद्ध होकर अनन्तकाल तक सिद्ध क्षेत्र में निवसते हैं ।

पाचवें स्वर्ग के अंत में लोकान्तर देव रहते हैं जो वैरागी होते हैं, देवी नहीं रखते । इन में सब बराबर हैं, आठ सागर की आयु होती है, तीर्थंकर के तप समय वैराग्य भावना माने उक्त तीर्थंकर की स्तुति करने आते हैं । ये एक भव लेकर मोक्ष जाते हैं ।

मर्य ही चार प्रकार के देवों के स्वास लने व आहार की इच्छा होने का हिसाब यह है कि जितने सागर की आय होगी उतने पत्र पीछे स्वास लेंगे व उतने दृश्यर वर्ष पीछे भूय लगेगी । 'भूय लगान पर कण्ठ म से स्वयं अमृत कर जाता है,

जिसमें भूय मिट जाता है । ये वादरा कोइ पदार्थ याउ पोते नहीं हैं ।

यह वर्णन श्री मिथिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती कृत त्रिनोकसार से दिया गया है ।

८६. जैनधर्म को हर एक हितेच्छु प्राणी पाल सक्ता है

जैनधर्म आत्मा की शुद्धि का मार्ग है, जैसा कि पूर्व में निर्याया जा चुका है । मनबाला विचारवान प्राणी, देव, नारकी, पगु या मनुष्य चाहे अमेरिका का हो या यूरोप का, एशिया का या हो या कहीं का भी हो, नीच हो या ऊँच, सब कोई इस धर्म का स्वरूप समझ कर उस पर विश्वास ला सकते हैं ।

मूल बात विश्वास करने की यह है कि आत्मा शक्ति से परमात्मा है । कम धन अङ्क पदार्थ का जो संयोग है उसके मिटने पर यह आत्मा परमात्मा हो सकता है । सब अनन्तकाल तक अनन्तज्ञानो व अनन्त सुखो रहेंगे ।

रागद्वेष माह से कर्म का बंध होता है, बीतराग भाव से कर्मबन्ध फटता है । बीतरागभाव पाने के लिये बीतराग-मर्षज्ञ, बीतराग भाषु व बीतराग निर्मय जैनधर्म की सेवा करनी उचित है ।

संसारमुक्त तृप्तिकारक नहीं है, आत्मोक्तसुख ही सच्चा सुख है । इस ज्ञान का पाना ही सम्यग्दर्शन (Right

Relief) है, जिसे हर कोई समझदार धारण कर सकता है । फिर वह अपने आचरण को ठीक करना है, जिसके लिये बताया जा चुका है कि उसमें आठ मूल गुण पालन चाहिये ।

एक ही उद्देश्य को लेकर आचार्यों ने ४५ प्रकार से आठ मूलगुणों का वर्णन किया है । सबसे पहला है—मद्य, मांस, मधु का त्याग तथा खून हिंसा मूठ चोरा कुशीन इन चारों का त्याग व परिमह का प्रमाण ।

जिनसेनाचार्य जी ने मधु के स्थान में जुर का त्याग रख दिया । पीछे क आचार्यों ने पाच पाप त्याग के स्थान में चन पाच फलों का त्याग रख दिया, जिनमें कीड़े होते हैं, जैसे बड़फल, पीपनफल, गूलर, पाकर और अखोर, जिससे लोग सुगमता से धारण कर सकें ।

जो कोई जैनी हो उसे कम से कम दो मद्यार तो त्याग ही दना चाहिये—एक तो मदिरा दूसरा मांस । ये दोनों मनुष्य शरीर के बाधक हैं व अशक्तिक आधार हैं ।

नरा पात्र से शरीर व मन अपने काय ॥ नहीं रहते, अनेक रोग हो जाते हैं । मांस की भी किमा मानव के लिये जरूरत नहीं है । इस में शक्ति बर्धक अन्त्र भी बहुत थोड़े हैं ।

The Taster and His Food by Sir William Earnshaw Cooper C L E नाम की पुस्तक में लिखा है कि जध बादाम आदि में १०० में ९१, मटर चने चावल में ८७, गेहूँ में ८६, जौ में ८४, धी में ८७, मलाई में ६९ अशक्त है, तब

मास में ४८, अंडे में २६ ग्राम है । बड़े २ प्रयोग डाक्टरों का मत है कि मनुष्य के लिए इसकी जरूरत नहीं ।

Dr 'Josiah Oldfield D O L M A M B O
S E C P senior physician Margaret Hospital,
Bromley कहते हैं —

Today there is the scientific fact assured that man belongs not to the flesh eater but to the fruit eaters. Flesh is unnatural food & therefore tends to create functional disturbances.

भाषार्थ—विज्ञान ने यह विश्वास आम दिला दिया है कि मनुष्य मांसाहारियों में नहीं किंतु फलहारियों में है । मनुष्य के लिये मांस अस्वाभाविक आहार है, जिससे शरीर में बहुत उत्पत्ति हो जाते हैं ।

विदेशों के बड़े २ लोग मांस नहीं खाते थे । यूनान के पैथोगोरस, प्लेटो, अरिस्टाटल, सॉक्रेटोस, पारसियों का शुब जोरस्टर, ईसाई पादरा जेम्स, मेन्यू पेटेर । अनेक विद्वान् जैसे मिल्टन, इआक, न्यूटन, वैनजार्मिन प्रैकलिन शेल्ता, पदोसन ।

अमेरिका व यूरोप में लोग दिन पर दिन मांस छोड़ते जाते हैं । कुछ लोग कहते हैं कि ठण्डे देश में मांस बिना चल नहीं सकता, सो जिनराजदास वियोसोफिस्टने सा० २ सितम्बर सन् १९१८ को सिद्ध किया है कि वे इङ्गलैंड में १२ वर्ष शाकाहार पर रहे और अमेरिका के चिकागो व कैनेडा में भी

उन्होंने साढ़े शाकाहार पर कटे हैं तथा मांसाहारियों का अपेक्षा भले प्रकार जीवन बिताया है।

जो मदिरा-मांस छोड़ देगा, वह धीरे-धीरे और भा-आतों को धार लेगा। पहिल भा जैसा कहा जा चुका है कि फिर उसकी 'मिन्न-छ' बातों का अभ्यास करना चाहिये —

(१) देवपूजा (२) गुरुसेवा (३) शास्त्र-पढ़ना (४) इन्द्रिय दमन या सयम (५) तप या ध्यान (६) दान। —

यदि किसी दश में किमा समय किमा ओवररक को न पाल सके तो भाजना भावे। जितना भा पालना, वैसा हा फल मिलेगा। प्रयोजन यह है कि इन कामों में प्रेम, दक्षिण यथा शक्ति अभ्यास करे।

वास्तव में जो राजा जैनधर्मी होगा, वह कमा चन्दारा व निर्णयी न होगा। वह अपनी प्रजा को सुना बनाव की कट्टा धरेगा। यदि प्रजा जैनधर्मी होगी तो एक दूसरे का सेवा कर कोई काम न करेगी। वह नर नरती बाहो आदि अकर्म बन धुप भी परस्पर नोति व दया व उपकार से सुख शांत का वर्तन रख सकेंगी है। इस लिये हर एक दम्पती का रक्षित है कि इस धर्म को धारण कर आत्मकल्याण करे।

ॐ इति समाप्तम् ॐ

परिपट् पाब्लिशिंग हाउस विजनौर के कुछ अपूर्व हिन्दी ग्रन्थ

- १—जैन लॉ (हिन्दी)—ले० वैरिष्टर चम्पतराय जी ।
१७५ पृष्ठ, बडा साइज मू० ३)
- २—जैनधर्म सिद्धांत—जे० एक अजैन सिद्धान्त । पृष्ठ ९२ मू० १)
- ३—सत्यमाग—ले० बा० कामताप्रसाद जी । पृष्ठ ४४० " ॥)
- ४—सरयार्थ यज्ञ—चतुर्विंशति जिन पूजन
ले०—श्री मनरग लात कवि । पक्का जिल्द " १)
- ५—विशाल जैन सध—ले० बा० कामताप्रसाद जा ।
पृष्ठ सरया ८० " १)
- ६—श्री ऋषभदेव की उत्पत्ति असमय नहीं है । पृष्ठ ८० " १)
- ७—आत्मिक मनो विज्ञान—वैरिष्टर साहब की प्रख्यात्
Jain Iouance का हिन्दी अनुवाद " ॥)
- ८—"अज्ञा, ज्ञान और चरित्र"—प्रख्यात् Faith,
Knowledge & Conduct का हिन्दी अनुवाद " ॥)
- ९—दिगम्बररव और दिगम्बर मुनि—जे० बा० कामता
प्रसाद जी मचित्र । पृष्ठ ३२० " १)
- १०—जैन बीराङ्गनायें—तिरङ्गा हृदयप्राप्ती कवर,
बहुत उपयोगी पुस्तक है । " ॥)
- ११—नित्य नियम पूजा " १)
- १२—जीवन चरित्र श्री शान्ती सागर जी " १)
- १३—प्राचीन जैन स्मारक " ॥)
- १४—बाल चरिता बली " १)

अपूर्व अंग्रेजी ग्रन्थ

1	The Key of Knowledge 8rd Edn	Rs	10 0 0
2	The Confluence of Opposites 2nd Edn	Rs	2 8 0
3	The Jain Law, annotated	Rs	7 8 0
4	What is Jainism ?	Rs	2 0 0
5	The Practical Dharma 2nd Edn	Rs	1 8 0
6	The Sanyas Dharma	Rs	1 8 0
7	The House Holder's Dharma	As	0 12 0
8	Jain Psychology	Rs	1 8 0
9	Faith, Knowledge & Conduct	Rs	1 8 0
10	The Jain Paja (with Hindi & Sanskrit Padya)	As	0 8 0
11	Rishabh Deo—The Founder of Jainism		4 8 0
12	" (Ordinary Binding)	Rs	8 0 0
13	Jainism, Christianity and Science	Rs	8 6 0
14	Jain Penance	Rs	2 0 0
15	Lifting of the Veil	Rs	8 6 0
16	" (Ordinary Binding)	Rs	2 0 0
17	Jain Logic or Nyaya	As	0 4 0
18	Where The Shoe Pinches	As	0 8 0
19	Jain Culture	Rs	1 0 0
20	Omniscience	As	0 8 0
21	Christianity Rediscovered	Rs	1 0 0
22	Right Solution	As	0 4 0
23	Glimpses of a Hidden Science	Rs	1 0 0
24	The Mystery of Revelation	Rs	1 0 0
25	Christianity from Hindu Eyes	Rs	1 0 0
26	Atma Dharma	As	0 8 0

Some Sacred Books of the Jainas.

- 1 Gomatsara [Jiva Kanda] translated
by late Mr J L Jain, M A Rs 5 8 0
- 2 Gomatsara [Karma Kanda] translated
by late Mr J L Jain, M A Rs 4 8 0
- 3 Samayasara, translated
by late Mr J L Jain, M A Rs 8 0 0
- 4 Jainism not Atheism, by Mr H Warren 0 8 0
- 5 Parmatma Prakash,
by Shri Yogindra Acharya Rs 2 0 0
- 6 Dravya Sangrah, Edited by Mr Sarat
Chandra Ghoshal, M A B L Rs 5 8 0
- 7 Panchastikaya,
Edited by A Chakravarti Rs 4 8 0
- 8 Jain Vairagya Shatak, re translated by
B L Jain 'Chaitanya' As 0 1 6

अपूर्व उर्दू ग्रन्थ

- १—حوار اسلام و جواهرات اسلام (इस्लाम धर्म में
जैनों के उसूलों की मान्यता व समानता) भाग १
- २—حوارات اسلام " " "
- ३—اتحاد المذاهب
ence of opposi

Some Sacred Books of the Jainas

- 1 Gomatsara [Jiva Kanda] translated
by late Mr I L Jain, M A Rs 6 8 0
- 2 Gomatsara [Karma Kanda] translated
by late Mr J L Jain, M A Rs 4 8 0
- 3 Samayasara, translated
by late Mr J L Jain, M A Rs 3 0 0
- 4 Jainism not Atheism, by Mr H Warren 0 8 0
- 5 Parmatma Prakash,
by Shri Yogindra Acharya Rs 2 0 0
- 6 Dravya Sangrah, Edited by Mr Sarat,
Chandra Ghoshal, M A B L Rs 6 8 0
- 7 Panchastikaya,
Edited by A Chakravarti Rs 4 8 0
- 8 Jain Vairagya Shatak, re translated by
B L Jain 'Chaitanya' As 0 1 6

अपूर्व उर्दू ग्रन्थ

- १—حوار اب اسلام जवाहरात इस्लाम (इस्लाम धर्म में
जैनों के उसूलों की मायता व समानता) भाग १ ' मू० ॥१
- २—حوارات اسلام " " भाग २ " ॥२
- ३—اتحاد المذاهب المتعددة इत्तहादुलमुद्दालाहीन (Conflu-
'ence of opposites का उर्दू अनुवाद) । " ॥३

मिलान का पता —

मन्त्री—परिपद् पब्लिशिंग हाउस,
मिन्नौर [यू० पी०]

